बाबा कृष्णदास जी

❀ श्रीश्रीमहाप्रभुगौरांगदेवो जयति ❀

卐 अष्टयाम 卐

श्रीश्रीवृन्दावनचन्द्रदासजिविरचित

सम्वत् २०१७
शीर्ष कृष्णा चतुर्दशी
न्योछावर—१।)

प्रकाशक—
कृष्णदास बाबाजी
(कुसुमसरोवर वाले)
मथुरा।

भूमिका
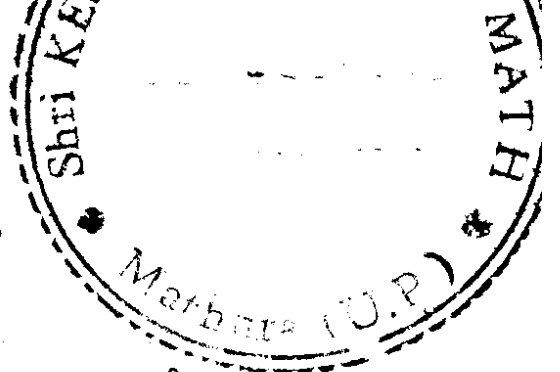
महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव प्रवर्तित गौड़ीय-सम्प्रदाय के अन्तर्गत अनेक वैष्णवों ने समय समय पर अनेक सुन्दर ग्रन्थों का प्रणयन किया है। विद्वानों की अब तक धारणा थी कि इस सम्प्रदाय से सम्बन्धित ब्रजभाषा-काव्य निधि अत्यल्प या नगण्य है। क्योंकि उनके मत से इस सम्प्रदाय का अधिकांश साहित्य संस्कृत या बंगला भाषाओं तक ही सीमित रहा आया, उन्होंने ब्रजभाषा साहित्य को प्रभावित भी नहीं किया। परिणामत: हिन्दी साहित्य के मूर्द्धन्य लेखकों से भक्तिकाल का विवरण-विवेचन प्रस्तुत करते समय उक्त सम्प्रदाय की उपेक्षा ही होती रही है। किन्तु इधर चैतन्य सम्प्रदाय के हिन्दी कवियों का अनुसंधान करते समय मुझे शताधिक कवियों की रचनाएं मिली हैं। कुसुमसरोवर निवासी विरक्त बंगाली महात्मा बाबा कृष्णदासजी के अथक परिश्रम से अनेक भाषा-काव्य प्रकाश में भी आए हैं। प्रस्तुत ग्रंथ उनको स्वर्गीय गोस्वामी राधाचरणजी के पुस्तकालय से गो. अद्वैतचरण (बच्चाजी) के द्वारा उपलब्ध हुआ था। नीचे संक्षेप में इस ग्रंथ के रचियता और ग्रंथ का परिचय प्रस्तुत किया जाता है।

इस ग्रंथ के रचियता श्री वृन्दावनचंद्रदास है। ये श्रीराधादामोदर के शिष्य एवं गोविंदभाष्यकार श्रीबलदेव विद्याभूषणजी के गुरु भ्राता थे। ग्रंथ में आए अनेक दोहों सवैयों और कवित्तों में 'वृन्दावनचंद्र' की छाप भी मिलती है। संस्कृत में ब्रह्माण्ड पुराणोक्त 'श्रीकृष्णाष्टोत्तरशतनाम' तथा गोतमीय तंत्र के "गोपालस्तवराज" के ऊपर श्रीवृन्दावनदासजी के नाम भाष्य मिलता है। सम्प्रति इन दोनों भाष्यों को बाबा कृष्णदासजी ने 'ग्रंथरत्नत्रयम्' नाम से प्रकाशित कराया है। मेरा अनुमान है कि उक्त संस्कृत ग्रंथ-भाष्यों के रचियता श्री वृन्दावनदास तथा प्रस्तुत 'अष्टयाम' (ब्रजभाषा-काव्य) के रचियता श्री वृन्दावनचंद एक ही व्यक्ति हैं। संस्कृत निष्ठ भाषा शैली-सुष्ठु और प्राञ्जल शब्दों की नियोजना— से यह बात और पुष्ट होती है। गोपालस्तवराज का एक ब्रजभाषानुवाद बाबाजी ने पहले प्रकाशित भी कराया था, जो इन्ही वृन्दावनदासजी कृत है।

गौडीय वैष्णव समाज राधाकृष्ण की दैनंदिनो लीला का मानसिक स्मरण

करते हैं। इस स्मरण का आधार पद्मपुराण पाताल खण्ड के वृन्दावन माहात्म्य का एक अध्याय है। चैतन्य-सम्प्रदाय के प्रकाण्ड पण्डित, रागमार्ग के 'यूप' श्री रूप गोस्वामि पाद के "स्मरण मंगल" नामक स्तोत्र ग्रंथ के आधार पर 'चैतन्यचरितामृत' के प्रणेता कविराज कृष्णदास गोस्वामी ने 'गोविंदलीलामृत', आनन्दवृन्दावनचम्पूकार कविकर्णपूर ने 'कृष्णाह्निककौमुदी' और श्री विश्वनाथ चक्रवर्तीजी ने 'कृष्णभावनामृत' का सृजन किया है। इस 'अष्टयाम' का प्रधान आधार श्रीगोविंदलीलामृत ही है—

सिरी रूप रसकूप राग मार्ग के है यूप,
सुमरन मंगल नाम सौं रचि ग्रंथ हैं।
जुगल विलास केलि नित्य महा रस बेली,
रसिक जनन सुमरन महा पंथ है।
कृष्णदास करुना वरुनालय रस वस भये,
कविराज ख्याति अरु महा रसवंत हैं।
श्री गोविंद लीलामृत मथि रस के वारिधि,
लीला "अष्टजाम" वर्नी जानें भाग्यवंत हैं॥

ग्रंथ के नाम तथा उसकी विषय वस्तु का उल्लेख उक्त छंद में किया है। राधामोहन की घड़ी घड़ी रसभीनी लीला -नित्य महारसकेलि- का रसिक समाज के आस्वादन के निमित्त ही इस ग्रंथ में आख्यान किया गया है। इसमें दोहा, छप्पय, सवैया और कवित्त आदि छंदों का प्रयोग किया गया है। इन छन्दों की कुल संख्या ६२० है।

ग्रंथ के आदि में गौरांगमहाप्रभु का इस प्रकार मंगल स्तवन किया गया है—

गौर चंद्र नव द्वीप चंद्र लोक चंद्र अरु,
राधा भाव चंद्र धारि कृष्ण चंद्र राजे हैं।
प्रेम सुधा वर्षण करिबे को चंद्र महा,
पारषद तारा माझ दिव्य चंद्र गाजे हैं।
जग तम नासिवे को अदभुत चंद सदा,
सुरधुनी तट भूमि नृत्यन में भ्राजे हैं।

कोटि कोटि अजामिल तारिबे को व्रत जाको,
धारि के सुन्यासि वेश श्री क्षेत्र विराजे हैं।।

आपने गुरू सम्प्रदाय का स्मरण प्रथम प्रकाश में किया है। संतों को कवि ने श्रद्धा संयुक्त प्रणाम निवेदन किया है। चैतन्य सम्प्रदायानुयायी मनोहरदास (मनहरण) जी के प्रियशिष्य, भक्तिरसबोधिनी (भक्तमाल टिप्पणी) के प्रणेता श्री प्रियादास जी के बारे में कवि का निम्नलिखित कवित्त भाषा और भाव दोनों ही दृष्टि से अत्यन्त सरस है–

घर ते भये उदास बाहर भये उदास,
भयौ है उदास मन कुटुम्ब समाज तैं।
देह हू न भावै देह स्वाद न सुहावै,
कुल देव बिसरावै परलोक हूँ से बाज तैं।
याही लोक वृंदावन याही समै याही वेर,
याहीं छवि पीवै नैन जीवै दुति साज तैं।
प्रियादास जु के मिलें भावत न आन कछु,
भई पहिचान हरि रूप रस राज तैं।।

इससे ज्ञात होता है कि ये प्रियादासजी के समकालीन थे। प्रियादास जी का समय लगभग अठारवी शताब्दी माना जाता है।

इस 'अष्टयाम' के अन्तर्गत ब्रजवर्णन में कवि ने नंदगाँव के 'पशु, पंछी जन्तु' के 'चारु चोप' का विवर्धन करने वाली 'चाहना' और उनकी नित नवीनता का उल्लेख किया है—

'नयो लग्यो फिरे रूप जैसे जैसें आँखैं फिरैं,
घिरे आवैं कृष्ण छवि नेह झर लायौ है।'

कृष्ण के सच्चिकण रूप लावण्य से 'पुतरीन में रंग भरता' है, और कृष्ण रूप और भाव के अतिरिक्त रसिक को कुछ और नहीं सूझता। "फिर लाइन ललित उन आंखिन सों लगी रहे जगी रहे नेह की दीवारी" नेह की दीवारी का जगना कैसा सुन्दर मुहावरा है। 'नेह झर लाना' पुतरीन में रंग भरना, 'ह्रास लास मुख फूल से झरना', 'उधारी मुसिक्यान की लहर उठाना', 'आनन की चांदनी वरसना', 'सुधा सौं स्रवत जात बड़ी बड़ी

आंखिन सौं' कपोलन से चिलकि चिलकि फुही झरना जैसे अनेक कला रंग प्रयोग मिलते हैं।

नंदगांव के चारों ओर स्थिति रूप सरोवरों का उल्लेख है। वे सरोवर हैं यशोदा कुंड, ललिता कुंड, मधुसूदन कुंड और कृष्ण कुंड। इन शोभा रूप कुंडों के बाद जावकवट, कदमखंडी, गोवरधन, विपिनस्थलियों आदि का भी उल्लेख है। तत्पश्चात् कवि ने सहस्रदल कमल रूप से ब्रज की संरचना तथा योगपीठ और यमुनाजी का चित्रण किया है। वृंदाविपिन की स्वच्छ सुभगता अति सुरम्य और मनः प्रसादक है—

कुंदन मृदुल सु फैंन जटित नभ धरन परस्पर।
प्रतिविंवै सुत माल लता प्रतिकुंज सघन वर।
फूलन संकुल ललित जहां भरी रहत एक रस।
खग कुहकत कल बोल केलि के मंत्र वेस वस।
त्रिविध समीर वहै जहाँ वृंदाविपिन सुछंद।
विहरत लाडिली लाल जहाँ बँधें प्रेम रसकंद॥

श्रीराधाकृष्ण के रूप माधुर्य्य का पान करने वाले विपिनस्थली में स्थित खग-द्रुमों की दशा का चित्रण निम्नलिखित सवैया में बड़ा ही मनमोहक है—

केंसे तमाल सु स्याम ही स्याम हैं देखें वनें घनस्याम सू आऐ।
मानौं घटा अवनी उतरी व फूल मनौं चपला चमकाऐं
गंध उड़ै मानौं पौन चलैं भए बावरे भौंर फिरे भरमाऐं।
दंपति दौरि धसैं वन में मानौं राधिका के मुख चंद सुहाऐं॥

चारदिव्य सरोवरों— रूप सरोवर, दान सरोवर, प्रेम सरोवर और मान सरोवर— का वर्णन कवि ने किया है, वह उसकी मौलिक सूझ और प्रतिमा का नमूना है। रूप सरोवर के चित्र भाव और कलागत सौन्दर्य से पूर्ण काव्यात्मकता की सृष्टि करते हैं। देखिए—

रूप के सरोवर में रूप ही मिलत न्हायै,
जाकैं आगे दामिनी यों जामिनी में छिपियै।
खंजन कमल मीन 'मृगराज जानी आज,

याकी छवि आगैं उपमान ह्वै कै जि पियै ।
हंसकुल मानसर मोती यौं चुगन लाये,
ह्वै कै पुष्ट स्वछ चलैं करी मति लिपियै ।
कहत प्रिया सों पिय सखी या क्षुसुछंद आइ,
जाके सुर कोकिलान बोलै दुति दिपियै ।।

× × ×

बड़ी हांत आखैं औ ढरारी अनियारी स्वेत,
बीच बीच कारी जाकी अनी चूभि जात है ।
कानन लौं दोरे झांई झलकै कपोलन में,
चीकनी सचौ ही वरसौ ही खुभि जात है ।।

उक्त चार सरोवरों में स्नान करने के लिए सखी रूप होकर अनुसरण करना आवश्यक है। ये चारों ही सरोवर 'रति रस की खानि' हैं इनमें 'सात जराव की पैरी' हैं जिनमें—

लै चुभकी जब तोय में भोइ जुगल रति रूप ।
आनंद कला विलास जे परै न ते भव कूप ।।

इन चारों सरोवरों पर पारिजात, मन्दार, अशोक और हरिचंदन के वृक्ष स्थित हैं। इन सरोवरों का मानसी-स्नान (भावना) करने पर ही पिय प्यारी के निकट जा सकने वाला रूप प्राप्त होता है। इसके उपरान्त सखी रूप गुरु विग्रह का बड़ा ही विशद वर्णन कवि ने किया है। प्रस्तुत काव्य में कवि की दृष्टि रूप-शोभा के चित्रण की ओर विशेषतः रही है और उसमें उसे पूरी सफलता भी मिली है। अष्ट सखियों और उनकी आठ आठ सखियों का चित्रण इनकी भाषा प्रौढ़ता का प्रमाण है। इन सभी सखियों का वर्णन बृहत् गौतमीतंत्र' पर समाधारित है, जैसा स्वयं कवि ने उल्लेख किया है—

श्री गौतम अवरीष कौ ललित संवाद बखान ।
वृहद् गौतमी तंत्र जिहि वर्णन सखी सुजान ।।

इसके बाद अष्टकाल लीला का व्याख्यान किया गया है। जगावन, मंजन, शृंगार, बिहार, भोजन, शयन, आदि दैनंदिनी लीला के अन्तर्गत आते हैं। राधा कृष्ण की छवि माधुरी के चित्र और रूपसिंहासन पर विराजमान सखियों द्वारा सेवित उनकी कांति का पान कवि ने बड़ी ही कलात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। राधा के रूप-चित्र बड़े ही सटीक हैं। इन चित्रों में प्राय गत्यात्मक सौन्दर्य्य का (Dyramic Beauty) उत्कर्ष मिलेगा। इनकी समर्थ शब्द संघटना सौन्दर्यबोध करानेमें पूर्ण सक्षम है। संस्कृत गर्भित पदावली की प्रचुलता होते हुए भी इन्होंने भाव गत सौन्दर्य की प्रायःरक्षा की है। जहां कवि ने देशज शब्दों का आश्रय लिया है वहां इसकी कविता का लालित्य और मार्दव बढ़ाहै। उससे भाव प्रेषणीयता बढ़ी है और शैली में चारुता आई है। रसिकों के आस्वाद के निमित्त ऐसे ही कुछ चित्र नीचे दिए जाते हैं—

पग के धरत ही धरनि छबि भर जाय,
भरजाय आनन की चांदनी बरसती।
जाही कुंज जाय सोई कुंज यों प्रदीपत ह्वै,
ससि के महल धस्यौ चंद ज्यौ दरसती।
रूप की किरन ज्यौं किरन रंध्रननि फैली,
मैली जा सौंदामिनी लगत हैं परसती।
वृंदावन चंद श्री गोविंद जाहि पायहि दै,
पावडे बिछावै छावै हसतों सरसती॥

× × ×

चिलकि चिलकि फुहीं परत कपोलन तैं,
किलकि किलकि लटैं धुरवा घुमड़ि कैं।
चमकि चमकि रवि मान तै मरीचैं बूँद,
रमकि रमकि कोप पौन तैं रमंडि कैं,
दमकि दमकि अनखत बिजुरी ज्यौ घोर,
जोरि जोरि भौंहै मौरी बादर घुमडि कैं।

लहरि लहरि तेरौ रूप बरसै हैं आली
बनमाली भाजौ चलि भेवैं क्यों न मडि कैं ।।

राधा के मान भंग के लिए साम, दाम, दण्ड और भेद रूप उपायों का आश्रय लिया गया है। हरि राधा का रास करते हुए प्रसार, नृत्य मध्य उल्लास रूपी धुनि का विकीर्ण होना और गौर श्याम के प्रेम सिंधु में पड़ने वाले आवर्त्त बड़े ही अगम्य हैं। महा तेज स्वरूप उनका रूप हैं, जिससे द्रष्टा की दृष्टि प्रवेश नहीं कर सकती। यदि कदाचित् प्रवेश कर भी जाय, तो गात गल जाता है। रूप की उष्णता असह्य है। श्याम और गौर, गौर और श्याम एकमएक हो जाते हैं, और फिर "जानै न परै भाव वृत्ति जानैं सीर हैं।"

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रंथ ब्रजभाषा काव्य ग्रंथों में भाषा और भाव प्रकाशन दोनों ही दृष्टियों से अपना विशिष्ट स्थान रखता है। कहीं कहीं तो भाषा रीतिकाल के प्रेमोन्मत्त गायक घनानन्द के अधिक समकक्ष व आजाती है। आशा है, हिन्दी काव्य जगत में इसका उपयुक्त आदर होगा और विद्वत् समाज गौडीय सम्प्रदाय के ग्रन्थों के प्रकाशन और अनुशीलन की ओर अग्रसर होगा।

अन्त में मैं पुनः कुसुमसरोवर निवासी बाबा कृष्णदासजी को श्रद्धा से नमन करता हूँ कि उन्होंने इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि प्राप्त करने के लिए लगभग एक माह तक देहातीत कठोर परिश्रम किया था। प्राचीन हस्तलिखित पोथियों को वृन्दावन के ग्रंथागारों से उबारना बड़ा ही दुस्तर कार्य है, इसकी पीड़ा अनुसंधाता ही जानता है। किन्तु श्रीअद्वैत चरण गोस्वामी (बच्चाजी) की कृपा और सहयोग से अपूर्व उपकार हुआ है, उन्हें भी मैं अपना प्रणाम निवेदन करता हूँ।

निवेदक—

नरेश बंसल

श्री रजनी पारेख आर्ट्स कॉलिज
खंभात (गुजरात)

प्रकाशितग्रंथसंख्या—१३५.

756

॥ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ॥

शुक्लयजुर्वेदीय-वाजसनेयसंहितोपनिषत्

अथवा—

❀ ईशोपनिषत् ❀

श्रीमद्बलदेवविद्याभूषणविरचित-
भाष्यसहिता

बाबाकृष्णदासकृतानुवादयुता

च

प्रकाशक—

कृष्णदासबाबा
कुसुमसरोवर,
राधाकुण्ड
(मथुरा)

सम्वत् २०२२
[फ]ाल्गुनी शुक्ला द्वितीया
[श्री]रमणचरणदासदेव (वड़े बाबाजी)
[मह]राज की तिरोधान तिथि

[गौ]रहरिप्रेस, कुसुमसरोवर, राधाकुण्ड, [मथुरा]

* परिशिष्ट *

इस उपनिषद् के स्वायम्भुव मनु ऋषि हैं, उन के दौहित्र आकूति-रुचि प्रजापति के कुमार यज्ञ नामक विष्णु देवता हैं। स्वायम्भुव मनु ने अपने दौहित्र यज्ञ भगवान् को भगवान् रूप से जानकर उनकी प्रीति के लिये तथा अपनी मुक्ति के लिये "ईशावास्यादि" मन्त्रों से स्तुति की। ऐसा देखकर राक्षस गण विष्णु-स्तुति में असहमान होकर स्वायम्भुव मनु को खाने के लिये दौड़े। उस समय यज्ञनामक वे विष्णु भगवान् स्वायम्भुवमनु कृत-वैदिक-स्तुति का श्रवण कर प्रसन्न हुए, एवं रुद्रादि वरों से अवध्य उन राक्षसों का वध कर उनके भय से स्वायम्भुवमनु का मोचन करने लगे इस प्रकार कथा भागवत के अष्टम में मौजूद है। अतः भागवत के अष्टमादि में स्वायम्भुवमनु कृत यज्ञस्तुति को ईशावास्योपनिषद् का साररूप जानना चाहिये।

ईशावास्य का सारतत्व यह है कि—इस जगत् में परिदृश्यमान् यावतीय वस्तु भगवत्सेवोपभोग का उपकरण रूप है, अतः उसमें अपनी भोगबुद्धि नहीं करनी चाहिये क्यों कि उसमें लोभ करने से अपराध होता है। केवल दासकी भाँति भगवत्सेवा के लिये जीवन धारण कर उन के भोगावशेष का ग्रहण करना कर्त्तव्य है। यदि मानव इस प्रकार शतवर्ष पर्य्यन्त अर्थात् अपने परमायु तक जीवन धारण करता है तो वह कर्म करता हुआ भी उस कर्म्मचक्कर में नहीं आता है। जो अन्यथा करता है अर्थात् भगवान् के साथ सम्बन्ध स्थापन न कर जगत् का भोग करता है वह आत्मघाती माना जाता है तथा मरने के बाद आसुरियोनि प्राप्त करता है। परमात्मा निश्चल हैं वे स्वरूप गत इच्छा तथा क्रियाशक्ति के द्वारा क्रियावान होते हैं। जीवात्मा निश्चल होने पर भी उसके द्वारा स्वीकृत माया-शक्ति की वृत्ति रूप से वायु अर्थात् प्राणरूप वायु के द्वारा किया-शील होता है। भगवान् में सचलत्व, अचलत्व, दूरत्व, निकटत्व,

अन्तर्गतत्व-वहिर्गतत्वादिक विरुद्धधर्म्म युगपत् सामञ्जस्य लाभ करते हैं क्यों कि उनमें अविचिन्त्यशक्तिमौजूद है। जो परमात्मा में समस्तभूत एवं सर्वभूत में परमात्मा का दर्शन करता है वह प्रीति सम्पत्ति का लाभ करता है। उस को किसी भी प्रकार शोक व मोह नहीं रहता है। भगवान् अपनी चिच्छक्ति के द्वारा समस्त कार्य्य का समाधान करते हैं उनमें देह-देही भेद नहीं हैं। उन का शरीर अप्राकृत तथा नित्य है। जो अविद्या रूप कर्मकाण्ड का आश्रय करता है उसको अन्धकारमय लोक की प्राप्ति होती है और जो विद्या रूप निर्भेदज्ञान में रत है वह उससे अधिकतर अन्धकारमय स्थान में प्रवेश करता है। परमात्मा कर्मकाण्ड व ज्ञानकाण्ड से प्राप्त नहीं होते हैं मायान्तर्गत विद्या एवं अविद्या की विकृति का नाश होने पर चिच्छक्तिगत विशेष धर्म का अनुभव होता है। निर्विशेष अनुसन्धान कारी असम्भूति के उपासक हैं वे अन्धकार में प्रवेश करते हैं। और जो सम्भूति अर्थात् जड़-सत्ता में निरत हैं वे घोर अन्धकार में रहते हैं। आत्मतत्त्व निर्विशेषचिन्तन तथा जड़ रूप सविशेषचिन्तन दोनों से पृथक् है। जड़संग से मुक्त होकर चित्तत्व में सम्भूतिलाभ करने पर अमृत प्राप्त होता है। भगवान् की कल्याणतम द्विभुज मुरलीधर श्यामसुन्दर मूर्त्ति हिरण्मयज्योति के द्वारा आवृत होकर विराजमान है। उस ज्योति का भेद करने पर सर्वकल्याणमय उन का दर्शनलाभ होता है। उस समय जीव अपने अणु सच्चिदानन्द स्वरूप को अवगत कर परिपूर्ण सच्चिदानन्द भगवान् की सेवा में रत हो जाता है। ज्ञानमिश्रा भक्ति के अधिकारी जड़मुक्ति की प्रार्थना करते हैं एवं अग्नि अन्तर्य्यामी विष्णु का इस प्रकार स्तव करते हैं कि—हम सब को सुपथ से परमार्थ में ले जाईये, हमारे अविद्या कापट्य रूप पाप का विनाश कीजिये, आप को हम नमस्कार करते हैं॥

अस्तु श्रीपादबलदेव ने ईशावास्यादि से लेकर कठकैबल्योपनिषद् पर्य्यन्त बारह उपनिषदों का भाष्य किया है परन्तु अभी वे सव अप्राप्य हैं, कहीं छिपे भी हों उनका पता नहीं मिल रहा है। हम उनके अनुसन्धान में हैं। सम्प्रति केवल "ईशावास्य" का बलदेव कृतभाष्य के साथ देवाक्षर में प्रकाशन हुआ है, आगे श्रुतिदेवी की अनुकम्पा ही सम्बल है। "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः" यह श्रुतिवाक्य ही हमारा आधार है। वहुत अच्छा हुआ कि—श्रीयुक्त केदारनाथभक्तिविनोद-महोदय ने इस भाष्य का बंगानुवाद के साथ बंगाक्षर में सम्पादन कर प्रकाशक्षेत्र में लाया जिससे वैष्णवसमाज का महान उपकार हुआ। वहुदिनों से देबाक्षर में इसका प्रकाशन के लिये प्रबल ईच्छा थी कि गुरु-गौराङ्गदेव की कृपा से वह आज पूर्त्ति हुइ।

प्रस्तानत्रयी में ब्रह्मसूत्र, उपनिषद्, गीता तथा विष्णुसहस्रनाम का महान स्थान है। इसीलिये प्रायतः समस्त सम्प्रदाय के आचार्यों ने उन सव पर भाष्य व विस्तृतव्याख्या की। श्रीचेतन्यसम्प्रदाय में ब्रह्मसूत्र के साथ श्रीमद्‌भागवतका विशेष महत्व है। यहाँ तक कि श्री-मन्महाप्रभु ने श्रीमद्‌भागवत को अप्राकृत भाष्य रूप माना है। श्री-जीवगोस्वामि आदि ने शास्त्र युक्ति प्रमाणों से उसका पुष्ट किया। बलदेवविद्याभूषण समय तक ऐसा ही रहा अर्थात् श्रीमद्‌भागवत रहते किसी अन्य भाष्य का आवश्यक नहीं पड़ा। परन्तु सम्प्रदाय-मर्य्यादा रखने के लिये बलदेवजी को इन सव पर भाष्य करना हुआ। अन्य-सम्प्रदायों के साथ विच्छेद न हो जावे इसी लिये उन्होंने उन सवका भाष्य किया। सम्प्रदाय-अनुरोध से यह सब होना उचित भी था। गौड़ीय-सम्प्रदाय की धारावाहिक परम्परा मध्वसम्प्रदाय से है। मध्वाचार्य्यचरण ने भी उन सब पर भाष्य किया। बलदेवजी ने उसका अनुसरण कर श्रीचैतन्यसम्प्रदायकी महती उपकृति की तथा सम्प्रदायगौरव की बृद्धि की। (कृष्णदासबाबा)

❀ महाभगवते श्रीगौरचन्द्राय नमः ❀

❀ श्रीउद्धवसन्देशः ❀

[श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितः]

प्रथमावृत्तिः १०००
श्रीरामनवमी
संवत् २०१४

प्रकाशकः
कृष्णदास,
(कुसुमसरोवर वाले)
(मथुरा)

भज--निताइ गौर राधेश्याम।
जप--हरे कृष्ण हरे राम॥

परमाराध्य, संकीर्त्तन प्रचारक, प्रेममयविग्रह, श्रीराधारमणचरणदासदेव (बड़े बाबाजी) के अनुगत, नित्यधामगत, श्रीगुरुदेव बाबाजिमहाराज १०८ श्री बाबा (रामदासजी) के पुनीत स्मरण में यह ग्रन्थ समर्पित है।

❀ सूचना ❀

(क) उद्धवसन्देशस्येयं टीका श्रीमद्राधाचरणगोस्वामिन पुस्तकालयतः प्राप्ता। तत्परिशिष्टे लिखितमिदम्—"सम्वत् १८८ मार्गशिरमासे शुक्ले पक्षे तिथौ नवम्यां चन्द्रवासरे श्रीमथुरा लिखितं साधुचरणेन" इति। (ख) अस्य दूतकाव्यस्यानुवादसंशोधन "लक्ष्मीपुरस्थितयुवराजदत्तकालेजस्थ" संस्कृताध्यापकमहोदयेन प्रचुरपरिश्रमः कृतः।

❀ प्रस्तावना ❀

देवाचार्य्यं यं विदुः सत्कवित्वे पाराशर्य्यं तत्त्ववादे महान्तम् ।
शृङ्गारार्थव्यञ्जने व्याससूनुं स श्रीरूपः पातु नो भृत्यवर्गान् ॥
(बलदेवः)

उद्धवसन्देशाख्यदूतकाव्यमिदं महाभगवतः राधागोविन्दमिलित-विग्रहस्य, कलिपावनावतारस्य, प्रेमपदानायावतीर्णस्य श्रीकृष्णचैतन्य-देवस्य पार्षदप्रवरेण, कविमुकुटमणिना श्रीमद्रूपगोस्वामिचरणमहोदयेन प्रणीतमिति गाथा रसिकहृदयक्षेत्रेषु जीवनतना नरीनर्त्ति । श्रीमद्रूपगोस्वामिपादः विक्रमाब्दस्य पञ्चदशशतके वंगदेशान्तर्गतमुर्शिदावादखण्डे 'रामकेलि' नाम्नि ग्रामे दाक्षिणात्यब्राह्मणवंशे आविर्बभूव । अस्य महोदयस्य पूर्वजानां वंशवृक्षः क्रमत इत्थभूतः—(१) कर्णाटभूमिपतिः श्रीसर्वज्ञः, (२) सकलयजुर्वेदस्योपदेष्टा अनिरुद्धदेवः (३) तस्यानिरुद्धस्य द्वयोर्महिष्योः सकाशात् रूपेश्वरहरिहरौ, (४) शिखरदेशराज्यनिवासिनः श्रीरूपेश्वरस्य समस्त—यजुर्वेद-उपनिषद्विद्याविलसितजिह्वः पद्मनाभ आसीत्, (५) नैहाटिनिवासिनः, गुणसमुद्रस्य, यशस्विनः पद्मनाभमहोदयस्य अष्टादश कन्याः पुरुषोत्तम-जगन्नाथ-नारायण-मुरारि-मुकुन्ददेवनामानः पञ्च पुत्राश्च आसन्, (६) सर्वकनिष्ठमुकुन्दस्य श्रीमान् कुमारदेव आसीत्, (७) वंगदेशनिवासिनः तस्य कुमारदेवस्य त्रयः पुत्रा बभूवुः । तेषु श्रीसनातनो ज्येष्ठः श्रीरूपो मध्यमः श्रीअनुपमश्च कनिष्ठ आसीत् ।

श्रीमद्रूपसनातनौ तदानीन्तनवंगदेशाधिपस्य नृपतेः हुसेनशाहस्यामात्यपदमलचक्रतुः । महाप्रभोः श्रीचैतन्यदेवस्य महानुकम्पया तत्पदं गार्हस्थ्यं च तृणवत् परित्यज्य तदादेशतो झटिति वृन्दावनं गत्वा करंग-कौपीनधारिणौ वृक्षतलनिवासिनौ च भूत्वा विरेजतुः । श्रीमद्रूपगोस्वामिपादः कृष्णभक्तिरसभूषितान् बहु ग्रन्थान् समये रचयाञ्चकार । तेषु रसपरिपाटीवर्णने सिन्धुरिव "श्रीभक्तिरसामृतसिंधुः" जगन्मण्डले रसिकजनहृदयक्षेत्रान् सरसीकृत्य सर्वोपरि वरीवर्त्ति । भगवद् राधागोविन्दयोरप्राकृतशृङ्गाररसवर्णने "उज्ज्वलनीलमणि" रेव अद्वितीय-

महोच्चतमो ग्रन्थराजः साहित्यभण्डारेऽपि वरीवर्त्ति। अपरे तु व्रजलीलाविषयवर्णनापरकं 'विदग्धमाधवनाटकम्' द्वारकालीलाविषयकवर्णनपरं 'ललितमाधवनाटकञ्च' जगद्विख्याते। पुनश्च ग्रन्थकारेण "दानकेलिकौमुदी" नाम्नी राधागोविन्दयोः दानलीलाविस्तारवर्णनकारिणी भाणिकाऽपि व्यरचि। भरतमुनिनिर्म्मितं "नाट्यशास्त्रं" रससुधाकरादिकं च दृष्ट्वा श्रीरूपपादेन "नाटकचन्द्रिका" नाम्नी नाट्यलक्षणमयी अपूर्व्वा पुस्तिका विरचिता। तन्निर्म्मिता "स्तवमाला" पि राधागोविन्दयोः स्तवादिवर्णने अत्यद्भुता भवति। भगवद्स्वरूपतत्वनिर्णये परमदक्षतरं ग्रन्थरत्नं 'लघुभागवतामृतं' कोऽपि न जानाति? श्रीराधागणोद्देशदीपिकाऽपि सगण-श्रीराधागोविन्दयोः सेवापरिपाटी-व्यवहार्यद्रव्य-स्थानादीनां वंशावल्यादीनां च परिचये महती प्रसिद्धा।

मथुरामण्डलान्तर्गत—वनोपवनादीनां संक्षेपतः वर्णनपरकं "मथुरामाहात्म्य" मपि सर्वोत्तमं भवति। "श्रीकृष्णजन्मतिथिविधि" रपि जन्माभिषेकादौ परमावश्यकः स्यात्। तद्विरचिता "प्रयुक्ताख्यचन्द्रिका"पि व्याकरणशास्त्रसम्बन्धी संक्षिप्तग्रन्थो दृश्यते। तन्निर्म्मितं "हंसदूताख्यं" दूतकाव्यं सहृदयरसिकहृदयेषु महत्कौतूहलं चमत्कारदिव्यविप्रयोगरसपोषणं च निर्बाधं ददाति अस्मिन् न सन्देहता। उद्धवसन्देशाख्यनामा प्रस्तुतप्रबन्धोऽयमपि न केषुचित् आश्चर्य्यसारवत्तां विरहरसवैचित्रीं च दधाति?

अस्मिन् उद्धवसन्देशाख्ये दूतकाव्ये नायकचूडामणिना श्रीकृष्णेन मथुरातः द्वारकातः वा उद्धवद्वारा विरहविधुराणां गोपाङ्गनानां सर्वेषां व्रजवासिनां वा सान्त्वनाय दौत्यं प्रेष्यते। श्रीमद्भागवते "गच्छोद्धव! व्रजं सौम्य! पित्रोर्नः प्रीतिमावह। गोपीनां मद्वियोगाधिं मत्सन्देशैर्विमोचय", सान्त्वयामास 'सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः' इत्यादि श्लोकानवलम्ब्य अत्र ग्रन्थकारस्य रसिकजनहृदयपरिपोषिणी महती चेष्टा संदृश्यते। तत्र केन रूपेण किं सन्देशं नीत्वा केन मार्गेण मया मथुरातः वृन्दावनं गन्तव्यं कुत्र वा केन रूपेणावस्थेयं किं कर्त्तव्यं

का वा दशा वर्णनीया इत्यादिकं उद्धवं प्रति स्पष्टतः वर्णनं नास्ति । अतः तान् स्पष्टयितुं श्रीरूपगोस्वामिपादैरिदं उद्धवसन्देशाख्यं दूतकाव्यं व्यरचि । अत्र श्रीकृष्णेन स्वयं उद्धवाय गमनमार्गं वर्ण्यते । तद्यथा—प्राक् गोकर्णाख्यशिवस्थलं (१) तदनु—यमुनासरस्वतीसङ्गमः, (२) ततः कालीयह्रदपरिसरं, (३) तस्माद्ब्रह्महृदः, (४) ततः यज्ञस्थलं, तदनु—कोटिकाख्यस्थलं (६) ततः सटीकराख्यगरुडगोविन्दस्थलं, (७) तदनन्तरं बहुलावनं (८) ततः गोकुलं, (९) शाल्मलवनं च, (१०) तदनु—साहाराख्यं, (११) ततः रहेलाख्यं, (१२) ततः सौयाश्रिकस्थलं, (१३) तदनु-गोष्ठाङ्गनवर्णनं, (१४) तदनन्तरं पूर-प्रवेशनमित्यादिकम् ।

अस्मिन् देशे बहूनि दूतकाव्यानि दृश्यन्ते श्रूयन्ते च । तानि काक-दूत-पादपदूत-मनोदूत-पवनदूत-उद्धवदूत-कोकिलसन्देश - चकोरसन्देश-मेघसन्देश-हंससंदेश-कोकसन्देशादीनि । तेषु विष्णुदासेन विरचितं मनो-दूत,धोयीकविना विरचितं पवनदूतं,वादिचन्द्रेण विरचितं पवनदूतकाव्यं, माधवकवीन्द्रविरचितं उद्धवदूतं, वेदान्ताचार्यकृतः हंससन्देशः विष्णु-त्रातविरचितः काकसन्देशः एतानि दूतकाव्यानि प्रसिद्धानि ।

गौडीयग्रन्थरत्नकोषागारेऽपि श्रीमद्रूपचरणैर्विरचिते हंसदूत उद्ध-वसन्देशाख्ये इमे द्वौ दूतकाव्ये एवं श्रीकृष्णदेवसार्वभौमेन विरचितं 'पदाङ्कदूतं' श्रीनन्दकिशोरगोस्वामिना विरचितं 'शुकदूताख्यं' बिशाल-दूतकाव्यं च समष्टितः चत्वारि दूतकाव्यानि विराजन्ते । इमानि सर्वाणि श्रीकृष्णरसपोषकाणि भवन्ति । एषु प्राकृतरसस्यावकाशो नास्ति ।

यद्यपि कविश्रेष्ठेन कालिदासेन विरचितं प्राकृतरसवैभववर्णनपरकं 'मेघदूताख्यं' दूतकाव्यं प्राचीनतया लोकोत्तरचमत्कारकतया च रसिकैः प्रशंसितं तदपि 'प्राकृते ये रसं मन्यन्ते ते भ्रान्ता एव तत्र विभावादीनां वैरूप्यात्', ''साधुकाव्यनिवेशात्'', 'न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जग-त्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् । तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा

निरमन्त्यु शिक्षया', 'तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन् प्रतिश्लोक-मबद्धवत्यपि । नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः", श्रीरुक्मिणीदेवीवाक्येऽपि—त्वक् श्मश्रु रोमनख-केशपिनद्धमन्तर्मांसास्थिरक्तकृमिविट् कफपित्तवातम् । जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढ़ा या ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती स्त्रीति' नाना प्रमाण-बलात् तत्र प्राकृते रसं निषिध्य पुनः"रसो वै सः""रसो ह्येवायं लब्ध्वा-नन्दी भवति" "सैषानन्दस्य मीमांसा भवती"त्यारभ्य मानुषानन्दतः प्राजापत्यानन्दपर्य्यन्तं दशकृत्वा शतगुणिततया क्रमेण तेषामानन्दोत्कर्ष-परिमाणं प्रदर्श्य पुनश्च ततोऽपि शतगुणत्वेन परब्रह्मानन्दं प्रदर्श्याप्य-परितोषात् यतो वाचो निवर्त्तन्ते इत्यादिश्लोकेन तदानन्दस्यानन्त्यमेव स्थापितम्", 'नित्यरसः', 'सर्वरसः', 'अखण्डरसबोधः','सर्वरसकदम्बः', 'अखिलरसामृतमूर्त्तिः' इत्यादिनानावचनबलेन अप्राकृते भगवद्वस्तुनि एव रसत्वमन्यत्र रसाभासत्वं निश्चितम् । अतः अस्य उद्धवसन्देश-हंसदूताख्यदूतकाव्यद्वयस्य निर्माणेन रसिकान् महाविप्रलम्भमयानन्द-स्वरूपेण रसेन नित्यभगवद्रसे निमज्जयितुं ग्रन्थकारस्य महान् प्रयत्नः । तस्मात् प्राकृतनायकादिवर्णनपरात् मेघदूतात् अनयोः हंसदूतोद्धव-सन्देशयोः महद् वैशिष्ट्यम् । रसस्य 'ब्रह्मास्वादसहोदर' गर्भात् तत्तु मोक्षे पर्य्यवसानात् तस्मादनन्तगुणिते आनन्दस्वरूपे भगवद्वस्तुनि एव रसचरमत्वं न तु मेघदूतादिवर्णिततुच्छनायक-नायिकाद्यनुभ-वस्मरणकीर्त्तनादेः, प्रत्युत तत्तु पापावहत्वमेव । न तु प्राकृतनायक-नायिकाविषयमवलम्ब्य केषाञ्चित् मोक्षं स्यात् । जीवस्याणुरूपतया तमालम्ब्यानन्दास्याणुरूपेण पर्य्यवसानात्, आनन्दसागरस्य भगवतः आश्रयात् तस्य अखण्डरसास्वादनमवश्यमेव स्वीकार्य्यम् । अस्तु अस्मिन् दूतकाव्ये ब्रजधाम्निनां विप्रलम्भमयचरममहारसवैभवविलासं दर्शयित्वा श्रीरूपपादः काव्यास्वादनचतुरान् सहृदयरसिकान् किञ्चित् किञ्चित् परिवेषयित्वा आस्वादयामास । यं प्राप्य सर्वे कृतार्था अभवन् इति अलमतिविस्तरेण ।

कृष्णदास.

❀ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ❀

कहानी-रहसि

तथा

कुंवरिकेलि

श्रीश्रीललितसखीजी कृत

श्रीलाड़िलीदासजी कृत
श्रीश्रीनारायणभट्टमंगल सहित

सम्वत् २०१७
झूलनतीज
न्योंछावर १)

प्रकाशक—
कृष्णदास बाबा
(कुसुमसरोवर वाले)

दो शब्द !

प्रस्तुत "कहानीरहसि" एवं "कुंवरिकेलि" इन दोनों के रचयिता गोस्वामी "ललितसखी"जी हैं। सम्भवतः यह ग्रन्थकार का उपनाम है जिसका प्रयोग अपनी बानी में किया गया है और भी आपने अपने नाम के साथ अपने गुरु श्रीमुरलीधरभट्टजी का सर्वत्र प्रयोग किया है। जो कि श्री नारायणभट्टजी की वंश परम्परा में नवम पीढ़ी में मौजूद थे। ग्रन्थकार ने "कुंवरिकेलि" की समाप्ति में सम्वत् १८३६ में उसकी रचना का समय दिया है। श्रीलाड़िलीजू को बेटी एवं अपने को मातृस्थानीया मानकर श्रीलाड़िलीजी को कहानी सुनाना कहानीरहसि का तत्व है। रागानुगा वात्सल्य भाव को रसिक समाज में अर्पित कराना यह अद्भुत प्रयास है। वात्सल्यरस में रागानुगा की उपासना किस प्रकार होती है उसे कवि ने कहानी रहसि में अद्भुत रूप से दिखलाया है। दोनों ग्रन्थ के प्रारम्भ में श्रीनारायणभट्ट की बन्दना की गई है, जो श्रीभट्टजी, महाप्रभु गौरांगदेव के परिकर गदाधरपण्डित गोस्वामिजी के शिष्य कृष्णदास ब्रह्मचारी के शिष्य थे। आपने व्रज के लुप्त तीर्थों का उद्धार, रासलीलानुकरण का प्रारम्भ में प्रचार व प्रवर्त्तन, एवं वनयात्रा व व्रजयात्रा का सांगोपांग प्रवर्त्तन किया है। बरसाने में श्रीलाड़िलीजू के प्राकट्य कराने का श्रेय आपको ही है। ये दोनों ग्रन्थ हमें बरसाने निवासी गो० कुंजीलाल के पुस्तकालय से उनके सुयोग्य पुत्रों के द्वारा नकल करने को मिले थे।

दोनों ग्रन्थ के साथ श्रीलाड़िलीदासजी के द्वारा विरचित "श्रीनारायणभट्टमंगल" भी इस संस्करण में संलग्न कर दिया गया। यह मंगल बरसाने में श्रीजी के मन्दिर में उत्सवादिक के समय समाज के प्रारम्भ में गाया जाता है। लाड़िलीदासजी श्रीलाड़िलीजू के परम सेवक तथा व्रजभाषा के परम कवि थे। उन्होंने बहुत पदों की रचना की है। उनके कविता रचना का समय सम्वत् १८५४ पहले है। हम उनके पदों के संग्रह में हैं।

॥ इति ॥ कृष्णदास बाबाजी

❁ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ❁

प्रकाशितग्रन्थसंख्या—१४४

सानुवादं

श्रीकृष्णकौतुकम्

रचयिता—

श्रीश्रीपरमानन्दपादमहोदयः

सम्वत्—२०२५
मूल्य—१) रुपया

प्रकाशक—
कृष्णदासबाबा

कवरपृष्ठ मुद्रक—श्रीप्रिन्टिगप्रेस, मथुरा।

भज—निताई गौर राधेश्याम ।
जप—हरे कृष्ण हरे राम ॥

प्रस्तुत कृष्णकौतुक ग्रन्थ के रचयिता परमानन्दपाद महाशय हैं। महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवजी के मतावलम्बी अनेक परमानन्द नाम से विभूषित महानुभाव आचार्य्य हुए उनमें से एक श्रीरूपसनातन जी के भक्तिशास्त्र के अध्यापक परमानन्दभट्टाचार्य, दूसरे महाप्रभु के सतीर्थ परमानन्द पण्डित, तीसरे महाप्रभु के साथी परमानन्दपुरी, चौथे श्रीरसिकानन्द प्रभुके शिष्य एक परमानन्दजी, पांचवें श्रीनित्यानन्दप्रभु की शाखा में परमानन्द-अवधूत, छठे नित्यानन्दप्रभु के भृत्यवर परमानन्द उपाध्याय, सातवें नित्यानन्दप्रभु की शाखा में परमानन्दगुरु, आठवें महाप्रभु के समसामयिक परमानन्दजीकीर्त्तनीया, नवें जगदानन्दपण्डित के पितामह परमानन्दवैद्य, दसवें उपेन्द्रमिश्र के पुत्र परमानन्द-मिश्र, ग्यारहवें परमेश्वरमोदक, बारहवें श्रीजगन्नाथ जी के कर्मचारी उत्कलवासी परमानन्दमहापात्र, तेरहवें आनन्द-वृन्दावनचम्पू आदि ग्रंथ के रचयिता कविकर्णपूर के नाम से विभूषित परमानन्दसेन जी प्रसिद्ध हैं। इस ग्रन्थ के परिशिष्ट में केवल "परमानन्द" ऐसा दिया है, विशेष परिचय नहीं है। 'परमानन्दसेन' जी (कविकर्णपूर) ही इसके रचयिता हैं ऐसा अनुमानबल से सिद्ध होता है। जो भी हो, ग्रन्थकार श्रीचैतन्य-देव मतावलम्बी हैं यह निश्चित है। इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतिलिपि हमारे पास है जो लगभग ४०० वर्ष प्राचीन है। पूर्व प्रकाशित मूल को सम्प्रति सानुवाद प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है रसिक विद्वान् इस का रसानुभव कर कृतार्थ करेंगे।

—कृष्णदासबाबा

❀ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ❀

क्षणदागीतिचिंतामणि

कविवर—

श्रीमनोहरदासजी कृत (संकलित)

卐

सम्वत् २०१७
गौरपूर्णिमा
(फाल्गुनी)

प्रकाशक—
बाबा कृष्णदास,
गवालियर मन्दिर, कुसुमसरोवर
पो० राधाकुंड (मथुरा)

❀ उत्सर्ग-पत्र ❀

परम माननीय, परमविरक्त, श्रीगौरगोविन्दचरणै-कनिष्ठ, भजनपरायण, गिरिराज तरहटी पूँछड़ी निवासी श्री बाबा गौरगोविन्ददासजी के पुनीत स्मरण में उन्हीं के प्रिय शिष्य श्री छगन-लालजी चौपड़या वाला, गोघाट, मथुरा निवासी की अर्थसहायता से यह ग्रन्थरत्न प्रस्तुत होकर समर्पित हुआ है।

—बाबा कृष्णदास

गौरपूर्णिमा (सं० २०१७)

दो शब्द !

प्रस्तुत ग्रंथ के रचयिता भक्तमाल के टीकाकार श्रीप्रिया-दासजी के गुरु कविवर मनोहरदासजी हैं। आप ने अपने इस संकलन ग्रंथ में लगभग ब्रजलीला के ४७ महानुभाव यों के पदों का संग्रह रख कर अपने हार्द ब्रजलीला का महत्व दिखलाया है। श्रील विश्वनाथचक्रवर्तीजी ने भी अपने पूर्वाचार्य्य महानुभावों के पदों का संग्रह कर वंग-भाषा के पदों को महत्व दिया। दोनों ग्रंथ ही क्षणदागीतिचिंतामणि नाम से प्रसिद्ध हुए। चक्रवर्त्ती जी का संग्रह पश्चिम विभाग नाम से ख्यात है। रात्रिकाल में लीलास्मरण करने के लिये ये दो ग्रंथ लीलास्मरणकारी गौड़ीय व अन्य वैष्णवों के जीवन रूप माने जाते हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में निकुंज विहार को क्रोड़ीकृत करते हुए राधागोविन्द के श्रृंगार सम्बन्धी ब्रजलीला का सरस वर्णन है। यह ब्रजलीला ही सर्वोपरि तथा निकुञ्ज विहार व नित्य-विहार का प्राण रूप है इसे सुदृढ़ बनाने के लिये ग्रंथकार ने नाना कवियों के पदों का उद्धरण देकर अपने ग्रंथ को सरस बनाया है। कवि ने हर क्षणदा के पहले अपने उपास्यदेव भगवान् श्रीगौरचन्द्र महाप्रभु के वन्दना रूप मंगलाचरण किया है जो कि गौड़ीय सम्प्रदाय की परिपाटी है जिसे 'गौरचन्द्र" कहा जाता है।

पूर्वविभाग की क्षणदा में—

कृष्णा प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा पर्य्यन्त तीस क्षणदा हैं जो कि श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती जी के द्वारा संकलित है। इस में क्रमशः (१) संक्षिप्तसम्भोग, (२) वयः सन्धि, (३) मुग्धा-नायिका, (४) रूप-विरह, अभिसार, (५) संक्षिप्त-सम्पूर्ण सन्धि,

मुग्धता मध्यता सन्धि, (६) मुग्धा, (७) मध्या, (८) मध्या, (९) मध्या के संकीर्णसम्भोग, (१०) मध्या के सम्पूर्ण सम्भोग, (११) विरह-मिलन, (१२) मिलन, (१३) मिलन, (१४) विरह-मिलन (१५) विरह-मिलन, (१६) पूर्वराग-रूपादिवर्णन, (१७) प्रगल्भा, (१८) विरह, (१९) वासकसज्जा, (२०) मान, (२१) सखी के द्वारा भाव दशा पूछने पर नायिका के द्वारा उसका वर्णन, (२२) प्रगल्भा, (२३) सखी द्वारा कृष्णाग्रे राधा-विरहदशा तथा राधाग्रे श्रीकृष्णदशा वर्णन, (२४) मान, (२५) प्रगल्भा, (२६) मिलन, (२७) मिलन, (२८) सखीद्वारा अभिसार, (२९) अभिसार, मिलन, रास, निकुञ्जविलासादि, (३०) रास, इन विषयों का क्रमशः वर्णन है।

प्रस्तुत इस पश्चिम विभाग की लशादा में—

क्रमशः (१) अभिसार, रास-विहार, (२) रास, (३) अनुराग-सखीप्रेरणा, कुञ्जविहार, (४) अभिसार-कुञ्ज में मिलन, (५) श्रीकृष्ण के साथ मिलने के लिये सखी प्रेरणा-मिलन, (६) श्रीकृष्णरूपवर्णन, सखीप्रेरणा, मिलन, (७) मिलन, (८) मान, श्रीकृष्ण के द्वारा मान-मनावनी, कुञ्जविलास, (९) श्रीरूपवर्णन, सखीप्रेरणा, कुञ्जविलास, (१०) कृष्णरूपवर्णन, अभिसार, शय्याविहार, (११) कृष्णानुराग, सखी प्रेरणा, अभिसार, मिलन, शय्याविहार, (१२) सखी के द्वारा भाव-पृच्छा, अभिसार के लिये प्रेरणा, मिलन, (१३) कृष्णभाववर्णन, (१४) कृष्णरूप, सघन निकुञ्ज में विलास, (१५) मान, श्रीकृष्ण के द्वारा मनावनी, सुरतसमर, (१६) श्रीकृष्णानुराग, राधाभिसार, कुंजविलास, (१७) श्रीकृष्णभाववर्णन, सखी के द्वारा प्रेरणा, शरदविहार, (१८) व्रजरस-राधाभिसार, गह्वरवन में विलास, (१९) श्रीकृष्णरूप, सखीप्रेरणा, वनक्रीड़ा, (२०) अपने मनोगत भाव

वर्णन, अभिसार, मिलन, (२१) श्रीकृष्णरूप-सखीप्रेरणा, अभिसार, कुंजविहार, शय्याविहार (पुष्प) (२२) श्रीकृष्णरूप, सखी प्रेरणा, अभिसार, गह्वरवन में निकुंजविलास, (२३) नायिका के द्वारा मनोगत भाववर्णन, मिलन, रास, कुंजविहार, (२४) कुंजविलास, (२५) वंशीध्वनि, अभिसार, मिलन-रास (व्रज-युवतियों के साथ) (२६) पुलिनविहार, रास, ललिता के द्वारा लताभवन में दोनों का शृंगारादि, (२७) सखीप्रेरणा, नृत्य-विलास-रास, (२८) रासक्रीड़ा, (२९) रात-नृत्य-मण्डलीनृत्य, (३०) शरद्रास।

इस पश्चिमविभाग की तणादा में—

मनोहरदासजी के २१, चतुर्भुजदासजी के १०, कृष्णदास के १५, हरिवल्लभ के ६, गोपाल के १, नन्ददास के १४, विहारिणीदास के ४, गोविन्दप्रभु के १३, श्यामसखी के १, नागरीदास के २, सूरदास के ६, सूरदास मदनमोहन के १७, मुरारीदास के ६, दामोदरहित के ४, हितहरिवंशजी के २४, कुंभनदास के ५, स्वामी हरिदास के ५, सदानन्द प्रभु के २, हितमोहन के १, परमानन्द के ७, व्यासजी के ३, चतुरबिहारीजी के १, वल्लभजी के ६, विद्यापति श्रीगोपाल के २, गिरिधर के १, जादोप्रभु के १, विठलविपुल के ३, गदाधरप्रभु के ४, श्रीरामरायजी के ४, हरिनारायण श्यामदास के १, गोवर्द्धनेश के १, जगन्नाथ कविराय के ४, वनवारी के २, नरवाहन के १, सीलचन्द्र के १, कविमण्डन के १, हितभगवान के १, किशोरदासजी के २, नवलसखी के २, मथुराहित के १, नामदेव के २, हित-अनूप के १, जनहरिया के १, हितव्रजलाल के १, इस प्रकार कुल पद २२३ हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में ग्रन्थकार ने यह दिखलाया है कि-ब्रजरस ही राधा के साथ श्रीकृष्ण-विहार का महान हृदय है। यह ग्रन्थ ब्रज-लीला को लेकर चला है। सब ही आचार्य्य ब्रजलीला के उपासक हैं इस बात को सुदृढ़ एवं अपने इस ब्रज उपासना को परिपुष्ट के लिये ही ग्रन्थकार ने बहुत महानुभावों के पदों का उद्धरण किया है। इस में अभिसार, खण्डिता आदि नाना भावों का वर्णन है जोकि नित्य-विहार के महान् पोषक हैं। **प्रथम** क्षणदा में-मनोहरजी के पद में "करत सिंगार चली बर भामिनी कौन गनै काहू की बरजनि" "मति कबहूँ लखि पावे गुरजनि" (दूसरा पद) कृष्णदास जी के पद में-"रास रंग लाल संग नृत्यत ब्रजभामिनी" (चौथा पद) "नृत्यत रास में गोपाल संग मुदित घोष नारी" (पांचमा पद)। द्वितीयक्षणदा में-नन्ददास के पद में-"इन बाँसुरी माई सबै चुरायो हरि तो चुराये होते एक ले चीर। असन बसन अरु श्रवण नैन मन लोक लाज कुल धरम धीर" (दूसरा पद)।

तृतीय क्षणदा-दूसरे पद में "तूतौ बार बार नन्द घर उझ-कत कत आवत जात। संध्या समय फिरि फिरि पाँव धरत जानो न जात यह भेद बात" (चतुर्भुज प्रभु), तीसरे पद में-"काछनि काछि गायनि पाछें मध्य मंडली आवै"। (गोविंददास)

चौथा पद में अभिसार वर्णन है "निसि के शत्रु सब तेरेरी भामिनी मुखर नूपुर लेउ उतारी" (कृष्णदास प्रभु), 'आठमाँ पद में—"नदनन्दन वृषभानुनन्दिनी नेकु न चाह छुटी" (सूरदास जी)।

चतुर्थी क्षणदा में- "लाल वैठ मग जोवत" "तातें छाडि दै निठुराई" यहाँ मान है। (तीसरे पद)। चौथे एवं पंचम पद

में मान वर्णन है। पंचमी क्षणदा में-तीसरे पद में-"मोपै हिलग हिये में हेली कहा करे कुलकानि" (सूरदासजी)।

पांचमा पद में-"तो विनु कुंवरि कोटि वनिता युत मथत मदन की पीर" (हरिवंशजी)

षष्ठी क्षणदा-चौथा पद में-"कान्ह बोलावति सुन मृगनैनी राधा ब्रजभामिनी" (कृष्णदासजी)।

सप्तमी क्षणदा दूसरे पद में पूर्वराग वर्णन है। "जा दिनतें देखें इन नैननि ता दिनतें मोहि अधिक चटपटी"(परमानंदजी)। चतुर्थ पद में-"अति विह्वल ह्वै परे धरणि धुकि तरुण तमाल पवन के जोर। कहुँ मुरली कहुँ लकुट मनोहर कहुँ पट कहुँ चन्द्रिका मोर (सूरदासजी)। पाँचमा पद में-"आकुल भई सुनि पिय की पीर"(वल्लभजी)। इन पदों में विरह का वर्णन है।

अष्टमी क्षणदा-छठा पद में—"जदपि बहु नायक कहु न मन अटके तेरे गुण रूप मोहै तोही सों री भाँवरि" (गोविंद प्रभु)। दशमी क्षणदा—दूसरा पद है-"जद्यपि मात पिता मोहे त्रासत महरी भवन में हूँ त्रण हूँ ते हरई" (सूरदास) यहाँ परकीया स्पष्ट है। पांचमा पद में-"जो तु अंग दुराय चलो संग मेरे। मुख मौन व्रत ले अधर ओट करि दसन दामिनी प्रकट तेरे" (चतुर्भुजजी)। ग्यारहवीं क्षणदा में-तृतीय पद में-"निलज भई कुल लाज गंवाई तिनसों कहा वसाई"(सूरदासजी)। चौथे पद में-"चल सखि मदनगोपाल बुलावे" (परमानंदजी)। तेरहवीं क्षणदा-प्रथम पद में-'निसि दिन तोहे जपत प्राणपति' 'छांडि दियो सब कुंजविलास विहार विहारी' (गोविंदप्रभु)। चौथे पद में-'वृन्दावन बैठे मग जोवत वनवारी (सूरदास मदनमोहनजी) पन्द्रहवीं क्षणदा—चारों दों में मान वर्णनहै।

(शुक्लाक्षणदा)—

प्रथम क्षणदा—तीसरे पद में-'जिनकैं लिये लोक निंद्रा सब मैं ले दूरि धरी" यहाँ परकीया स्पष्ट है (सूरदासजी)। चौथे पद में--'हों तो अपने ते नहि टरि हों जग उपहास करो बहुतेरो' (सूरदासजी)

छटमाँ पद में-राधा अभिसार वर्णन है (मनोहरजी)।

तृतीय क्षणदा—पहला पद में--"ब्रज की खोरि सांकरी"। "जित जित हौं मग राकत टोकत डगर तजति पग गढ़त कांकरी (सूरदासमदनमोहनजी)। दूसरे पद में—"आजु मिलें पिय सांकरो गली" (गोविन्दप्रभु)। चतुर्थ पद में—'राधा अभिसार' (वल्लभ)। पांचमा पद में-'गहवर गिरि साँकरी गली' (नागरी दासजी), पंचमी क्षणदा—'घर घर यही चवावो ब्रज में मोही सो वैर सुनि सुनि श्रवणनि दुख दहिये' पहला पद में (सूरदासजी), षष्ठी क्षणदा—पाँचमा पद में—राधिका अभिसार वर्णन है। सप्तमी क्षणदा—चौथा पद में--'राधिका अभिसरति विपिन कुंजे'। "सतत गुरुलोक डर चकित आंकों भरत पथ विपथ देखत न सखिन संगे"। यहाँ परकीया स्पष्ट है।

अष्टमी क्षणदा—पहला पद में--"हौं तौ भई बाङरी मन-मोहन वेगि मिलावरी" (सदानन्दप्रभु)।

अष्टम क्षणदा से पन्द्रहवीं क्षणदा पर्य्यन्त रास का वर्णन है। राधावल्लभी सम्प्रदाय के आचार्य्य हितहरिवंशजी विशुद्ध व्रज-रस के उपासक हैं यह दिखाने के लिये ग्रन्थकार ने उनके पदों का उद्धरण अधिक संख्या में दिया है। इस ग्रंथ में जिन महानुभावों के पदों का उद्धरण दिया गया है उन में अधिक संख्या गौड़ीय आचार्यों की है।

कविवर मनोहरदासजी श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीजी की शिष्य परम्परा में श्रीराधारमण जी के सेवक हुए, जोकि वृन्दाबन में उस समय परम रसिक शिरोमणि करके माने जाते थे। ऐसा है कि बड़े बड़े महानुभाव आकर उनके संसर्ग से रसिक बन जाते थे। इनके विषय में प्रियादास जी ने अपने भक्तमाल-टीका के परिशिष्ट में कहा है-"रसिकाई कविताई जाहि दीनी तिन पाई" "रसिक समाज में विराज रसराज कहै" (क०६२७) श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी जी के शिष्य श्रीनिवासाचार्य्यजी, उनके श्रीरामचरण चक्रवर्त्तीजी, उनके रामसरणचट्टराजजी, उनके ग्रन्थकार कविवर मनोहरजी हैं। इनके बनाये हुए राधारमण-रससागर, सम्प्रदाय बोधिनी, रसिक जीवनि, प्रस्तुत क्षणदा-गीतिचिंतामणि ये चारि प्राप्त हैं। राधारमण रससागर का रचना काल सम्वत् १७५७ है। इससे कवि का समय स्पष्ट हो जाता है। श्रीराधारमण रससागर सम्वत् २००८ में हमारे द्वारा प्रकाशित हो चुका है। हाल में सम्प्रदाय बोधिनी भी प्रकाशित हो गई है। क्षणदागीतिचिंतामणि की हस्तलिखित प्राचीन प्रति वहु स्थानों पर मौजूद हैं। उन सब प्रतियों को मिला कर यथा साध्य प्रकाशन किया गया है। आशा है रसिक समाज इसका अनुशीलन व कंठहार कर हमारे परिश्रम का सार्थक्य करेंगे।

इति।

कृष्णदास

卐

मोहिनी

वाणी

श्री श्री गदाधरभट्टजी की

श्रीश्रीनित्यानन्द गौरचन्द्रौ

जयतः

हरि मोहन प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर।

सम्बत् २०००
बसन्त पंचमी

मूल्य ।।)

प्रकाशक:—
कृष्णदास
कुसुमसरोवर (गोवर्द्धन)

दो शब्द

श्री श्री गदाधरभट्टजी का स्थान ब्रजरसमाधुरी में छके हुए अनन्य रसिक भक्तों तथा कवियों में बहुत ऊँचा है । आप परोपकार की मूर्ति और श्रीमद्भागवतग्रथ के अनूपम रंगीले रसीले वक्ता थे । आप श्री गौड़ेश्वरसम्प्रदायानुयायी थे । आपका परिचय, भक्तमाल ग्रथकर्ता श्री नाभाजी ने इस प्रकार दिया है ।

गुन निकर "गदाधरभट्ट" अति सबहिन को लागे सुखद ॥
सज्जन, सुहृद, सुशील, बचन आरज प्रति पालय ।
निर्मत्सर, निहकाम, कृपा करुणाको आलय ॥
अनन्य भजन दृढ़ करनि धर्यो बपु भक्तनि काजै ।
परम धरम को सेतु, विदित वृन्दावन गाजै ॥
भागौत सुधा बरषे बदन काहू को नाहिन दुखद ।
गुन निकर "गदाधर भट्ट" अति सबहिनको लागे सुखद ॥

तथा भक्तमाल के टीकाकार प्रियादासजीने कवित्त छन्दोंमें विस्तार पूर्वक श्रीभट्टजूकी रहनी गहनी पर इस प्रकार प्रकाश डाला है ।
कवित्त-"श्याम रंग रंगी" पद सुनि के गुसाईजीव पत्र दे पठाये दोउ साधु वेगि धाये हैं, रैनि बिन रंग कैसे चढ्यो अति सोच बढ्यो कागद में प्रेम मढ्यो तहाँलेके आये हैं ।

पुर ढिग कूप तहाँ बैठेरस रूप लगे पूछवेको, तिन्हीं सों नाम ले बताये हैं. रहो कौन ठौर सिरमोर वृन्दावन, नाम सुनि, मुरछाह्वे गिरे प्रान पाये हैं ॥ काहू कही "भट्ट श्रीगदाधरजू" यई जानौ मानौ वही पाती चाह फेरि कै जिवाये हैं । दियो पत्र हाथ लियो,

सीस सौं लगाय चाय, बाँचत ही चले वेगि वृन्दावन आये हैं। मिले श्री गुसाईं जू सों, आँखें भरि आईं नीर सुधि न शरीर धरि धीर वहीं गाये हैं। पढ़े सब ग्रन्थ संग नाना कृष्ण कथा रंग रस की उमंग, अंग अंग भाव छाये हैं ॥

आपने प्रथम अपने घर में ही 'सखी हो श्याम रंग रंगी। देख विकाय गई यह मूरत सूरत माहि पगी" यह पद बनाया। श्री वृन्दावन में इसको किसी साधुमुख से सुनकर श्री श्रीजीव गोस्वामीपाद एसे चकित और मोहित हुए कि आपने एक पत्र लिखा अनाराध्य राधापदाम्भोजरेणु मनाश्रित्य वृन्दाटवीं तत्पदांकाम्। असम्भाष्य तद्भावगम्भीरचित्तान् कुतः श्यामसिन्धो रसस्यावगाहः

भाव यह है कि जिसने श्री राधिका के चरण कमल रज की आराधना नहीं की, तथा श्री राधाचरणकमलांकित श्री वृन्दावन के आश्रित नहीं हुआ और राधाभावरस जानने वाले रसिकों का संग नहीं किया तो वह कैसे श्री श्यामरस रूप समुद्र में गोता लगा सकता है। इस पत्र को लेकर दो साधू श्री भट्टजी महाराज के पास आए जो एक कूप के ऊपर बैठे दाँतुन कर रहे वे श्री भट्टजी से पूछने लगे कि गदाधर भट्टजी कहाँ पर रहते हैं। श्री भट्टजी महाराज ने पूछा कि "आप कहां रहते हैं ?" सन्तों ने उत्तर दिया "शिरमोर वृन्दाबन धाम में" श्री वृन्दाबनधाम का नाम सुनते ही भट्टजी प्रेम से मूर्छित हो गिर पड़े। आपकी दशा देख उन सन्तों से किसी ने कहा कि आपही गदाधरभट्ट हैं। तब उन सन्तों ने कहा कि हम आपके लिये पत्र लेकर आये

हैं। यह सुनकर वे उठे। पत्र ले शीश और नेत्रों से लगाया। प्रेमानन्द से पढ़ा और सीधे श्रीवृन्दावन को चल दिये। श्रीजीव गोस्वामीजी के साथ मिलकर आपने श्री भागवतरसका आस्वादन किया। आपके मधुर भाषण का श्रोताओं पर बड़ा प्रभाव पड़ता था। बहुत लोग संसारी सुख को तुच्छ समझ कर भागवत रंग में रंग जाते थे और सहज में ही मूर्छादिक अष्ट सात्विक भाव उदय हो जाता था एक बार आपके यहाँ एक चोर आया, घर की सब संपत्ति लेकर एक बहुत बड़ी गठरी बांधी, जिसको उठाने में वह असमर्थ हुआ। भट्टजी महाराज जो यह सब लीला देख रहे थे चोर के पास आये और चुपचाप गठरी उठादी। चोर पर आपकी दया का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा चरणों में लोट गया और आपका शिष्य हो गया। सच है महानुभावों के चरित्र लोकोत्तर होते हैं। आज उनहीं श्री भट्टजी महाराज की परम रसीली मोहिनीबाणी रसिक महानुभावों के आस्वादनार्थ मुद्रित हो गई है। जिसका श्रेय श्री कुसुम सरोवर निवासी श्रीबाबजी महाराज श्रीकृष्णदासजी को है आपका दुष्प्राप्य ग्रंथों को खोज निकालना और उनका प्रकाश करना और कराना मुख्य काम है। भिंड (ग्वालियर) निवासी भक्त शिरोमणि मुंशी गोपालसहाय आत्मज गौरनिष्ठप्राण बाबु जगमोहन लालजी जज हाई कोर्ट को अनंत कोटि धन्यवाद है कि जिन की परम उदार आर्थिक सहायता से इस ग्रंथ का मुद्रण एसे समय में हो सका जब "महँगाई" का पूर्ण साम्राज्य है। इस उदारता के लिये वैष्णव

जगत आपका आभारी रहेगा। भगवान ऐसे उदार चरित्र प्रेमी सज्जनों को अपनी अनुपम कृपा का भाजन बनाये रक्खें।

विनीत:—

गोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव
प्रोफेसर, महाराजा कालेज (जयपुर)

❋ शुद्धि पत्रम् ❋

अशुद्धि	शुद्धि	पृ०	प०
फाग	फाग	१८	१०
स्तुत्तु	समस्त	१३	४
हंसा	हंस	१८	१०
जलक	झलक	२३	१२
नाप	ताप	२३	२
बार	बर	२३	२०
कंटकि	कण्ठकी	२६	७
बत्र	बर	३७	११
रास	रस	३६	३
मिटया	मिटयो	४८	११
बिंगी	बिरंगी	५५	१
गुन	गन	२१	३
गाविन्द	गोविन्द	१२	१६

निवेदन

यह शुष्कायित सुकण्टकित ज्ञानकर्मादिरहित शुद्ध भक्ति विवर्त्त महाप्रेमरसमदिरापानोन्मत्त, शुद्धसत्व, बलरामतत्व, श्री श्री नित्यानन्दप्रभुजीके कृपासे- कलिपावनावतार करुणावरुणालय ब्रह्मरुद्रादिसुदुर्ल्लभ प्रेमभक्ति महाधनप्रदानासक्तचित्त, महाभाव रसराज स्वरुप श्री राधा राधाकान्त मिलिततत्व, " कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं सांगोपांगास्त्रपार्षदम्। यज्ञैः संकीर्त्तन प्रायैर्यजन्तिहि सुमेधसः।" इति भागवतीय पद्य से तथा आगमनिगमकृतप्रमाणितअवतारतत्व, श्रीब्रजेश्वरी ब्रजेश्वर अवताररुप श्रीशचीदेवी जगन्नाथमिश्र पुत्र, कलिकाल कवलित सर्व साधन रहित जीवों के उद्धारार्थ सर्वसाधन तिरस्कृत प्रकाशित नाममहासत्र, लक्ष्मीकान्त, श्रीमन्महाप्रभु गौरचन्द्रजू के-कृपापात्र तथा परम पार्षदख्यात, तन्मतप्रचार परमोद्भट श्रीरघुनाथ भट्टजू के कृपापात्र श्रीगदाधर भट्टजू के हृदय सरोवर में भाव रूपी सूर्य्य किरण से प्रफुल्लित वाणी रुपी कमलों का शतशत मकरन्दधारा रसिकभ्रमर परिपोषणार्थ प्रकाशित है। अतः परम भावुक प्रेमी रसिकजन जिह्वारुपी चषकपात्र में रख कर सदा आस्वादित करे। भावार्थ यह है आज श्रीगदाधरभट्टजी का रचित सरस सानुप्रास युक्त वाणीयां प्रकाशित हुई है। भट्टजू के जो कुछ फुटकरपद यहाँ तहाँ हस्त लिखित पुस्तकों से मिले वे सब एकत्र संचय करके धारानुयायी रक्खे गये है। हृदय में

आशा यह है कि भट्टजी का विशाल जीवनचरित्र भी समयान्तर में प्रकाशित हो। इस अभिलाषा को श्रीभट्टजी के स्थान या गद्दी पर (वृन्दावन पुराणेशहर अटखम्भा श्रीराधावल्लभजी मन्दिर के पास) विराजित श्रीगौरचन्द्रनिष्ठ श्रीगोवर्द्धन भट्टजी उपनाम छोट्टनलालजू के कृपा से पूर्ती होगी। यहाँ पर गदाधरभट्टजी के प्रकाशित तथा आराधित सर्वस्व श्री श्री मदनमोहन जू को श्री मुर्त्ति विराजित हैं। उनके श्री चरण कमल में शत २ कुसुमाञ्जलि अर्पण पूर्वक प्रार्थना यह है कि आप अपने कृपा पात्र भट्टजू के सरस वाणी रूपी सुधा जो कि हृदयाकाश में रखे हुए है उसको भक्त रसिक हृदय क्षेत्र में सदा के लिये अखण्डित भाव से सरस बरसावें।

इति:—

वैष्णव दासानुदास

कृष्णदास

श्रीश्रीगौरांगविधुर्जयति

श्री गीतगोविन्दपद

(ब्रजभाषा में)

प्रकाशक—

कृष्णदास

पुस्तक मिलने का पता--

(१) श्रीरामनिवास खेतान की दूकान,

सवामण सालिग्राम मन्दिर के नीचे,

लोई बाज़ार, वृन्दाबन।

(ज़ि० मथुरा)

(२) लाला चेतरामजी, कोसीकलाँ, मथुरा।

(३) बाबा कृष्णदास,

क्या०-बाबा आनन्ददासजी,

कृष्णगंगाआस्थान,

मथुरा।

❀ श्री श्री गौरांगविधुर्जयति ❀

श्री गीतगोविन्द पद

श्री श्री जयदेववंशोद्भव

श्री रामरायजी कृत

श्री कृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द
हरेकृष्ण हरेराम राधे गोविन्द
भज—निताई गौर राधेश्याम
जप—हरेकृष्ण हरेराम ।

परम रसिक पूज्य श्री गौरांगदासजी के कृपापात्र कोसी (बरसाना) निवासी लाला चतुर्भुज (हरिसम्बन्धिनाम चैतन्यदास तथा उपनाम चेतरामजी) के संपूर्ण आर्थिक सहाय से प्रकाशित ।

दूसरा भाग
गौरपूर्णिमा
मूल्य ।)
प्रथमावृत्ति १०००

प्रकाशक—
बाबा—कृष्णदास
कुसुमसरोवर
पो० राधाकुण्ड
जिला मथुरा ।

भूमिका

विक्रमीय दशवीं शताब्दि में कौशल्यगोत्र पंचप्रवर यजुर्वेद माध्यन्दिनी शाखाध्यायी मोहले सारस्वत द्विजवर एवं खत्रियों के पुरोहित पं० गिरिधारीजी लाहोर में निवास करते थे। उनके मन्दिर में श्रीठाकुर जी की जगह श्रीमद्भागवत की पुस्तक का ही पूजन होता था। उन्हों ने तीनवार भागवत की सप्ताहों का अष्टोत्तर शत पारायण किया। उसी का फल स्वरूप आपके घर में श्रीशुकदेव मुनि ने स्वयं अवतार ग्रहण किया। इनका जन्म लगभग ग्यारहवीं शताब्दी में है। इनको लोग हरदेव भी कहते थे। आपके यथा समय विवाह हुआ। आपसे सं० ११२१ के कार्त्तिक पर शुक्लाष्टमी को श्रीभोजदेव जी प्रघट हुए। आपने बड़े होकर श्रीमाध्वमतावलम्वी श्रीमदाचार्य्य गद्दीस्थ श्रीजयतीर्थजी से वैष्णव दीक्षा प्राप्त की और मुलतान के प्रसिद्ध सारस्वत भूषण पं० वंशीलालजी की पुत्री श्रीराधाजी से विवाह किया इन्हीं श्रीराधादेवी जी से रसिक चूड़ामणि श्रीजयदेव जी का प्रादुर्भाव हुआ था। वैसे तो संसार में श्रीगीतगोविन्द तथा कविनृप श्रीजयदेव जी से सभी परिचित हैं। भक्तमाल में इनके सम्बन्ध में विशेष वर्णन है। श्रीरामराय जो लिखते हैं कि—

रसिकवर श्रीजयदेव उदार।
होते जो न मही में तौ को गातौ कुंजविहार।
महारस सागर पूरन चन्द।
कोमल ललित पदावलि विलसित उदयो गीतगोविन्द॥
कृष्ण निजु कर कमल न पूर्यौ।
अपुनौ रूप दिखावत कारन जग संशय चूर्यौ॥
जुगल रसकौ यह प्रथम प्रकाश।
जा पाछे सब कोऊ वरन्यौ लै लघु गुरू आभास॥

इत्यादि।

अब हम इस गीतगोविन्द पद के रचयिता श्रीरामराय जी के सम्बन्ध में कुछ कहते हैं। श्रीमद्गीतगोविन्द काव्यकर्त्ता सारस्वत द्विज कुलाब्धिकौस्तुभ कविनृपचक्रवर्ति श्रीजयदेव गो० प्रभु से ११ वीं पीढ़ी में एवं कलियुगपावनावतार श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु जी के कृपापात्र परमहंसावतंस दार्शनिक सार्वभौम श्रीरामराय गोस्वामी जी वि० सं० १५४० शाके १४०५ वैशाख शुक्ला ११ को प्रघट हुये थे। श्रीनाभा जी ने श्रीभक्तमाल में लिखा है।

विप्र सारस्वत घर जनम श्रीरामराय हरि रतिकरी।
भक्ति ज्ञान वैराग्य योग अन्तर गति पागे।
काम क्रोध मद लोभ मोह मत्सर सब त्यागे।
कथा कीर्तन मगन सदा आनन्द रस झूले।
सन्त निरखि मन मुदित उदित रवि पंकज फूले।
वैर भाव जिन द्रोह किय तासु पगि खिसो भूवि परी।
विप्र सारस्वत घर जन्म श्रीरामराय हरि रतिकरी।

इसी प्रकार अष्टछापन में श्रीनाथजी के अधिकारी श्रीकृष्णदास जी लिखते हैं—

परम रसिक जन मंगल छाये।
पुन्य अपूरव प्रघट भये श्रीरामराथ गोस्वामि सिधाये।
महाप्रभु श्रीवल्लभ सुत श्रीविट्ठलजू कौं दै उपदेश सिहाये।
श्री हित हरिवंश हंस संमत अति आचारजजू मित्र मिलाये।
श्रीनित्यानंद महाप्रभु पद रज शिष्य प्रसिद्ध जगत हितु आये।
गोकुल गाम वर्ष द्वै वसि पुनि तीरथ सन्त अनन्त बनाये
भज श्रीकृष्णदास लखि परम हंस गति बहुत समैं वपु दृगन जुड़ाये

(आदिवाणी भूमिका)

श्रीमद्गोस्वामी श्रीप्रियतमलालजी महाराज प्रणीत श्रीरसिकाचार्य चरितावली से श्रीरामरायजी के सम्बन्ध में कुछ पद उद्धृत करते हैं।—यथा

दो०—सरस गोपिका गीत जो लिखित ताड़के पत्र।
निज कर श्री चैतन्य ने दियो गाउ सर्वत्र॥
जाय गोपिका गीत है सोय गीतगोविन्द।
दोनों हो आल्हादमय दोनों परमानन्द॥

स०—गौर प्रहर्षित होय कहे हरिनाम के संग कथा कों प्रचारो।
श्रीजयदेव महाकविराज कृपा तिनकी निज ऊपर धारो॥
सर्व जितेन्द्रिय ऊरधरेता श्रीरामगुसांई तुम्हें निरधारो।
गावहु गोपिकागीत गोविन्द अमन्द जिही उपदेश हमारो॥

आये आज्ञा पायकें श्रीवृन्दावन धाम।
आशुधीर जू के सहित रामराय निष्काम॥

क०—भागवत पत्र ताहि छाती में लगाये रहें,
जहाँ जामें गामें ताहि व्याख्या को बढ़ाय के।
गोपीगीत अद्‌भुत अपूर्व सुनि श्रोता छकें,
आपहु निमग्न होंय सबकों सुनाय के॥
केशीघाट वंशीवट कालिह्रद होत कथा,
तासों ठाम तेहि तेहि कुटिया बनायकें।
राखे सन्त वृन्दावन शोभा है अनोखो लखी,
रामराय जीवन बितायो हरि गायकें॥

दो०—श्रीरावल गोकुल निकट कछुक वर्ष सुख राश।
कथा भागवत की कहत जमुना पुलिन निवास॥

(रसिकाचार्य्यचरितावली।)

आपके कथा कीर्त्तन जगत में प्रसिद्ध होने लगे। आमेर के राजा भगवान्दास जी आपके प्रधान शिष्य हुए, उन राजा भगवानदासजी ने गोवर्द्धन में हरिदेवजी का मन्दिर तथा मानसी गंगा का घाट बनवाया था। जिनके पुत्र राजा मानसिंहजी ने अपने गुरु श्री रघुनाथ भट्ट गो० जी के प्रीत्पर्थ श्री रूप गोस्वामीजी द्वारा प्रगटित श्री गोविन्द देव विग्रह के स्थापनार्थ वृन्दावन में लाल पत्थर का वृहत मन्दिर बनवाया था। और भी श्री रामरायजी के एकादश प्रसिद्ध

शिष्य हुए। यथा गरीवदास, बाँकेदास, विष्णुदास, जुगलदास, राधादास, किशोरदास, केशवदास, मनोहरदास, लाखादास, मधुजी, तथा हरिदास हैं। इनके द्वारा रचित गौरविनोदिनो वृत्ति (ब्रह्म-सूत्र की चतुः सूत्री पर) अति प्रसिद्ध है। आप संस्कृत के वड़े विद्वान होते हुए भो ब्रजभाषा के वड़े ममेज्ञ थे। आप के द्वारा रचित श्री आदिवाणी तथा प्रस्तुत गीतगोविन्द देखने से इस बात का पता लगाता है। रामरायजी के पद समूह वल्लभ कुल में नित्य गाया जाता है। पता चला है कि उन के द्वारा रचित ४००० पद हैं। आदि वाणी ब्रजभाषा में वास्तव में सर्व प्रथम है। उस में से वृन्दावन वर्णन का एक पद हम उद्धृत करते हैं यथा—

श्री राधेजू को श्री वृन्दावन वन राजू।
रतन जटित भूमण्डल शोभित कनक वल्लरि साजू॥
अष्ट सिद्धि नव निद्धि वुहारन वीथिन रोपि समाजू।
श्री रामराय प्यारे रखवारी हिय हितु पोखन काजू॥

इनकी अनन्य निष्ठा भी वड़ी श्लाघनीय है। यथा—और कोऊ समझे सो समझो इतनो हमको समझ भलो। ठाकुर नंदकिशोर हमारे ठकुरायणि वृषभानुलली इत्यादि पदों में। प्रस्तुत गीतगोविन्दपद में ग्रन्थकार ने निज संप्रदाय आचार्य्य रसिक मुकुट मणि कविराज श्री जयदेव गोस्वामिजी के द्वारा संस्कृत भाषा में विरचित श्री गीत गोविन्द पदावली का मनोहर विविध छन्दों में मार्मिक प्रदर्शन किया है। आशा है कि पाठक वृन्द मूल पदावली के साथ ब्रज भाषा में उसका रसास्वादन करेंगे। श्री जयदेव वंशोद्भव वृन्दावन निवासी गो० जमुनावल्लभजी द्वारा हस्तलिपि प्राप्त होने पर हम इस ग्रंथ को प्रकाश करने में समर्थ हुए हैं। वरसाना (कोसी) निवासी लाला बनखण्डि के सुपुत्र तथा रसिक प्रवर बाबा गौरांगदासजी के कृपापात्र लाला चतुर्भुजजी (चैतन्यदास हरिसम्वन्धी नाम प्रसिद्धनाम घेतराम) के संपूर्ण आर्थिक सहाय से इस समय यह ग्रंथ प्रकाशित हो रहा है। इति—

विनीत—कृष्णदास, कुसुम सरोवर

श्री रामराय जी की वंश और गुरुपरम्परा

आमेरके राजा भगवानदासजी के पद में—

जय जय श्री जयदेव ब्रह्ममत (माध्वमत) मण्डना।
सारस्वत द्विज मुकुट भोजकुल चन्द्रमा।
कृत कन्दविल्व उद्यान शोभा सहज सरस सुहावनी।
शुभ माघ सित श्री पंचमी संक्रान्त मकर जु पावनी॥
अनुपम मही मण्डल महोत्सव भाग्य निधि वंगावनी।

आगे परम्परा—

जयदेव सुत श्रीकृष्ण तिन के पुत्र गोविन्द जू भये।
तिन के मुकुन्द अनन्य तिन माधव सुवन प्रद्युम्नये।
तिन वाल मोहनलाल नन्दगोपाल तिन आत्मज लये।
तिन तनुज गुरु गोपाल तिनके रामराय सुचन्द्र ये।
भगवानदास विनीत मंगल गावत करि वन्दना॥
जय जय श्रीजयदेव ब्रह्ममतमण्डना॥

श्री राधामाधवो देवस्तच्छिष्योऽथ चतुर्मुखः।
श्री नारदस्ततो व्यासो मध्वाचार्य्यस्ततः पुनः॥
तस्य श्री पद्मनाभस्तच्छिष्योऽक्षोभ्यमुनिस्ततः।
जयतीर्थस्ततो मिश्रभोजदेवः प्रसन्नधीः॥
श्रीभोजदेवारभ्यशिष्यसुतयोरैक्यम्॥

टिपन्याम्

श्रीजयतीर्थसे—

श्री भोजदेवमिश्र जन्म सं० ११२१

,, जयदेवगोस्वामी ,, सं० ११७५

,, कृष्णदेवगोस्वामी,, सं० १२२०

मार्गशीर्षपूर्णिमा

,, गोविन्दगोस्वामी ,, सं० १२५५

पौषकृष्णा नवमी

,, मुकुन्ददेवगोस्वामी,, सं० १२६१

कार्त्तिक

,, अनन्यदेवगोस्वामी,, सं० १३२४

भाद्रकृष्णाष्टमी

,, माधवलालगोस्वामी,, सं० १३६१

वैशाख शुक्ला सप्तमी

,, प्रद्युम्नगोस्वामी ,, सं० १३६५

आश्विन शुक्ला दशमी

,, हरिमोहनगोस्वामी ,, सं० १४३१

आश्विन पूर्णिमा

,, नन्दगोपालगोस्वामी,, सं० १४७०

मार्गशीर्षकृष्णाष्टमी

,, गौरगोपालगोस्वामी,, सं० १५१०

मार्गशीर्ष कृ० पञ्चमी

श्रीजयतीर्थ—

श्रीज्ञानसिन्धु

,, दयानिधि

,, विद्यानिधि

,, राजेन्द्र

,, जयधर्म्म

,,

,, पुरुषोत्तम

,, ब्रह्मण्य

,, व्यासतीर्थ

,, लक्ष्मीपति

श्रीनाथजीप्रकटकारी प्रेमबीज

,, माधवेन्द्रपुरी

,, नित्यानन्दप्रभु के शिष्य श्रीईश्वरपुरी, श्रीनित्यानन्द, श्रीअद्वैत

प्रभु प्रभु

,, रामरामगोस्वामीसं०१५४० श्रीमन्महाप्रभु श्रीरामराय

वैशाख शुक्ला द्वादशी

,, प्रभुचन्द्रगोपाल सं० १५५२ चैत्र सुदी नवमी राधिकानाथ

,, रामचन्द्रप्रभु

मुद्रक राज नारायन अग्रवाल, मॉडर्न प्रेस नमक की मन्डी, आगरा।

समर्पणपत्र

श्रीश्रीराधारमणचरणदासदेवस्यानुचरप्रवरस्य, सकलदेशप्रसिद्ध-
कीर्त्तिराशेः, प्रेममात्रसर्वस्वकृतस्य, निरन्तरसात्विकभावा-
वल्याविभूषितस्य, दीनतासागरस्य, मधुरस्वरालापैः
सर्वदागौरकीर्त्तनकर्त्तुः, श्रीरामदासेतिमधुर-
नाम्ना प्रसिद्धस्य, मदीयआराध्यदेवस्य,
श्रीगुरुदेवस्य, बाबाजिमहाराजस्य
प्रीत्यर्थे

समर्पितेयंवाणी

मॉडर्न प्रेस, आगरा में छपी।

ोविन्दलीलामृत भाषा

एवं

पद्यावली भाषा

★

रचयिता क्रमतः

ी शीतलदासजी (प्रेमसखी)

एवं

"शिवपद" जी
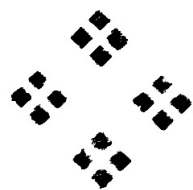
प्रकाशकः—

कृष्णदास बाबा

कुसुमसरोवर

[२०२०]

[न्योछावर ।)

भज-निताइ गौर राधे श्याम ।
जप-हरे कृष्ण हरे राम ॥

प्रस्तुत पहिला ग्रन्थ के रचयिता श्रीशीतलदास जी महाराज हैं आप का उपनाम (सिद्धनाम) "प्रेम सखी" है । पदों की अधिक संख्या में उन्होंने "प्रेमसखी" एवं कहीं कहीं "शीतलदास" इस नाम का प्रयोग किया है । शीतलदास के नाम से कई कवि सुनने में आते हैं परन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ स्थित पदों के रचयिता शीतलदास जी गौडेश्वर सम्प्रदाय के वैष्णव माने जाते हैं । इस सम्प्रदाय में वैष्णवी नाम करण में "शीतलदास" इस नाम का प्रयोग है, भगवान् का एक नाम शीतल भी है । यह पुस्तिका गोविन्दलीलामृत के आधार पर लिखी गई है । कवि ने हृदय में भावमय महान् उच्छ्वास रख कर थोड़े से पदों में उस विशाल गोविन्द लीलामृत ग्रन्थ का मनोहर जो चित्रण किया,वह एक अलौकिक शक्ति का परिचायक है । जिसकी भित्ति परकीया भावमयी है, जिससे रस का चरम आस्वादन होता है एवं जो श्रीराधागोबिन्द का हृदय के सर्वोपरि निगूढ़ तत्व वस्तु है । स्थूल हृदय वाले इस की गहीडी अंत तरंगो में गोता लगाने में असमर्थ होकर नाना प्रकार की कष्ट कल्पना कर डारते हैं । राधा गोविन्द के यह भावमय विहार ब्रज में नित्य रूप से विराजमान है । इस परकीया विहार में नित्य विहार की स्थिति किस रूप से है इसका सिद्धान्त गौड़ीय आचार्य्यों ने अद्भुत युक्ति के साथ अपने अपने ग्रन्थों में चित्रण किया हैं । ग्रंथकार का पूरा परिचय अज्ञात है । पाटना गुलजारवाग गोस्वामि श्रीकृष्ण चैतन्य महाराज की लाईब्रेरी में से यह पुस्तक हमें मिला था । आशा है रसिक सज्जन इसका सरस आस्वादन करेंगे ।

दूसरी पुस्तक के रचयिता शिवपद जी हैं, आपने पदों की भणिता में "शिवपद" "शिवांघ्रि" इस प्रकार प्रयोग किया है तथा स्वयं अपने को गौड़ीय सम्प्रदाय अनुगत बतलाया है। ग्रन्थ के प्रारंभ में आपने "श्रीहरि देव" जी को अपने गुरु एवं "राधा-कृष्ण" जी को पिता रूप से कहा है।

"गौडेश्वरकुलाम्भोजे श्रीमच्छयामल विग्रहः।
परमानन्दरसिको हरिदेवमहाप्रभुः ॥
तत्पदेऽसौ दासमतिः"।
शेष में भी "जय जय जय श्रीगुरुहरिदेव ॥"

इसकी पुरानी हस्त लिखित कापी हमारे पास मौजूद है। पत्र संख्या डबल १० है। कापी की लम्बाई ९ इंच एवं चौड़ाई ६ इंच है। किसी पृष्ठ में २१ किसी में २२ व किसी में २३ लाईन मौजूद हैं कागज देसी सांगानिर है। काला स्याही न अति घना न अति रूखा है। डबल पत्र के पहिला पृष्ठ में ऊपर भाग पर "श्री जी" पृष्ठ के ऊपर जहाँ संख्या दी गई है वहाँ पास में "श्रीजी" एवं दूसरे पृष्ठ में ऊपरि भाग में "श्री" यह शब्द लिखा गया है। प्रथम पृष्ठ में "ओं नमो नमः तथा उसके नीचे लाल स्याही में "श्री श्री" लिखा गया है। ९ मां पत्र में जन गरीब के एक पद पश्चात् तुलसी माला धारण में विधि, न धारण में प्रत्यवाय" इसका शास्त्र प्रमाण देकर अपने वचन का सुदृढ़ किया गया। तदनन्तर "छत्र साल" नाम से एक पद, दास गोविन्द के एक पद, भक्तराज के एक पद है। शेष में "श्री चैतन्य नित्यानन्द अद्वैत परम कृपाल" "भक्तराज नाम भणिता से युक्त पद है। आशा है भावुक सज्जन इसका सरस आस्वादन करेंगे ॥

कृष्णदास

❀ श्री श्री गौरहरिर्जयति ❀

श्री श्री किशोरीदासजी की

वाणी

संवत् २०१७
मार्गशीर्ष कृष्णा चतुर्दशी
न्यौछावर ॥≈)

प्रकाशकः—
कृष्णदास बाबाजी
(कुसुमसरोवर वाले)
मथुरा।

समर्पणपत्रम्

भज–निताइ गौर राधेश्याम ।

जप–हरे कृष्ण हरे राम ॥

महामहिम, प्रेमविगलितहृदय, संकीर्तन प्रचारक,
गौरगतप्राण, गुरुदेव बाबाजी महाराज
(१०८ श्रीश्रीरामदासबाबाजी) के
नित्यधामगमनकी शुभतिथि में
यह ब्रजभाषा का वाणी ग्रन्थ
प्रस्तुत होकर उन्हीं के
पुनीतस्मरण में
समर्पित हैं ।

–कृष्णदास

* भूमिका *

प्रस्तुत वाणी के रचयिता महात्मा श्री किशोरीदासजी गौड़ीय सम्प्रदाय के थे। व्रजभाषा के वाणीकारों में किशोरीदास नाम के कई महात्मा हुए हैं जिनमें तीन की रचनायें उपलब्ध हैं। राधावल्लभ सम्प्रदाय में भी किशोरीदास जी नाम के एक महात्मा हुए जिन्होंने श्रीपाद रूप गोस्वामी कृत श्रीराधाकृष्ण-गणोद्देश दीपिका का आधार लेकर राधाकृष्ण वंसावली क रचना की है। इसी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य श्रीहितरूपलाल जी ने उसी कृष्णवंशावली में भी गणोद्देश दीपिका का नामोल्लेख किया है।

❀ श्रीराधावल्लभो विजयते ❀

वरन्यौं चाहत कछुक अब कृष्णबंश परिवार।
देहु बुद्धि मति शुद्ध अति श्री हरिवंश उदार॥
गणोद्देश जु दीपिका मध्य कही कछु रीति।
जै श्रीरूपलाल हित सो लिखत सुनहु रसिक दै प्रीति॥ १॥
श्रीगुरु श्रीगोविन्द पद मंगल हित करौं ध्यान।
मंगल श्री व्रजराजघर ज्यों पाऊँ सनमान॥
विघन हरन मंगल करन जे कहियति हैं और।
तिन हूं चरनन कौं नवौं पूजौ आसा मोर॥ २॥
श्री रूप सनातन जीव जुत कीनौ भक्ति प्रकास।
जनम जनम निज चरन कौं कीजै मोकौं दास॥ ३॥
श्रीहरिवंशच्चंद वर सुमिरि कैं मन में कियो विचार।
अपनो मति अनुमान कछु वरनौं व्रजरससार॥ ११॥
श्रीगुरु गोविन्द चरन रज वंदौं। मंगल रूप ध्यान आनन्दौं॥१७॥

पाऊँ श्रीहरिवंश सहाय । वरनौ कछु परिकर व्रजराय ॥ १८ ॥
परम हंस श्रीरूप जू परम कृपा मनधार ।''
वरन्यौ परिकर घोषपति जो व्रजराज कुँवार ॥ २२ ॥
सोई भाषा करि कहौं लहौं कृपा इन पास ।
श्रीहरिवंश प्रताप तैं कहत किशोरीदास ॥ २४ ॥
नंदराय वृषभानहि भावै । किशोरीदास दिन मंगल गावै ॥ ६६ ॥
॥ इति वंशावली ॥ संवत् सत्तर सतानुया मास पोस सुदि बीज को लिख्यौ सुन्दर ग्रन्थ बनाय ।

विभिन्न स्थलों से उद्धरित उपरोक्त कविद्वय की रचना से स्वत: सिद्ध हो जाता है कि इनका आधार गणोद्देश दीपिका है ।

इन दो कविद्वय के अतिरिक्त प्रस्तुत वाणीकर्ता ने भी उसी आधार पर एक वंशावली लिखी जो कि इस संग्रह के परिशिष्ट में संलग्न है । इस वंशावली का अन्य कई प्राचीन प्रतियों में उल्लेख आता है, जिससे निश्चय होता है कि श्रीराधाकृष्ण गणोद्देश दीपिका का प्रभाव अनेक परिवर्ती वाणीकारों के ऊपर पड़ा था । श्री गोवर्द्धनभट्टजी (छुट्टनभट्ट जी) अठखम्भा वृन्दावन के पुस्तकालय में प्राचीन हस्तलिखित एक संग्रह उपलब्ध है जो लगभग २५० वर्ष से अधिक होगा यह सम्पूर्ण सामिग्री इसी लिपि से अवतरित है।

जीवनी—

इनके जीवन के विषय में विशेष ज्ञात नहीं है । ग्वालियर और धौलपुर के बीच सौपुर नामक राज्य है । यह वहीं के राजा थे । वरषाने की श्रीजी मुसलमानों के उपद्रव के समय वहाँ पर कुछ दिन रहीं थीं । इतिहास के ज्ञाताओं से यह बात छिपी नहीं है कि औरंगजेब के समय में वृन्दावन के अनेक ठाकुर गोविन्द, गोपीनाथ मदनमोहन आदि की भी प्रतिमायें रियासतों में चली गईं थीं। जिससे इनको कोई क्षति न होने पाये । एक बार यह

व्रज यात्रा करने आये। पुनः यह लौटकर अपने राज्य को नहीं गये और जीवन का सम्पूर्ण भाग बरषाने में रह कर बिताया। बरषाने में आज तक सौपुर वाली कुञ्ज मौजूद है।

श्री किशोरीदास जी की गौरचरणारविन्द में पूर्ण निष्ठा थी। वाणी के प्रारम्भ में अपने उपास्य प्रेमावतार श्री चैतन्य देव की महिमा का वर्णन अनेक पदों में किया है।

भक्तकवियों ने भगवान के नाम, रूप, लीला, धाम का वर्णन अपनी कविताओं में किया है। अपनी अपनी भावनाओं को कविता का रूप देकर उसे गोविन्द के सन्मुख अर्पण कर देना ही इनकी नित्य दिनचर्या थी। इसी उद्देश्य से महात्माओं का समुदाय भी समय समय पर एकत्रित हुआ करता था। कालान्तर में इसी का नाम समाज पड़ गया। प्रस्तुत संग्रह में जो पद लिखे गये हैं उनकी रचना इसी विचार से की है अतएव इस में मन्दिर देवालयों में होने वाले विभिन्न उत्सवों में कीर्तन करने के पदों का संग्रह है। श्रावण, कार्तिक एवं फाल्गुन मास में उत्सव अधिक आते हैं इसीलिये इनसे सम्बन्धित पद अधिक हैं। पदों की भाष व्रजभाषा है। विभिन्न राग रागनियों में बांधकर उसे अत्यन्त सरलता के साथ प्रस्तुत किया है। इसके पद इतने मनोहर हैं कि जब मैंने इसकी पांडुलिपि देखी तो होली का एक पद आगामी मास से प्रकाशित होने वाली [व्रजमाधुरी] नामक मासिक पत्रिका में रक्खा और उसी भावना का एक चित्र भी बनवाया। इस पुस्तक के अन्त में जयपुर नरेश श्रीगोविन्दजी के सेवक, श्री सवाई प्रतापसिंह जी (व्रजनिधि) रचित सनेह संग्राम भी संकलित है।

बाबा कृष्णदास जी ने अपने अथक परिश्रम से इन पदों का संग्रह किया है। और प्रस्तुत संस्करण के पदों का संग्रह बाबा वंशीदास जी, श्रीराधाचरण जी गोस्वामी विद्यावगीश एवं श्री छुट्टनभट्टजी के पुस्तकालय की प्राचीन प्रतियों से किया गया है।

वरषाने के श्रीजी के मन्दिर में एक विस्तृत पद संग्रह है उसमें किशोरी दास जी के बहुत पद प्राप्त हैं। श्रीजी के मन्दिर में नन्दगांव के नन्दबाबा जी के मन्दिर में तथा श्री गोवर्द्धन भट्ट जी वृन्दावन के यहां होली झूलन आदि उत्सवों में किशोरीदासजी के पदों का गायन बड़े चाव से होता है। किशोरीदासजी के होली एवं धमार के पद भी अति सुहावन एवं प्रसिद्ध हैं।

अन्त में यही कहना है कि प्रस्तुत संग्रह गोड़ीय सम्प्रदाय के व्रजभाषा साहित्य की एक और कड़ी है। अत्यन्त प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों से इसकी पाँडुलिपि तैयार की गई है। अतः यत्र तत्र अनेक अशुद्धियाँ रह गई होंगी। विद्वान भक्त इसे सम्हाल कर पढ़ लेंगे। प्रकाशित करने का एकमात्र उद्देश्य यही है कि ग्रन्थ-रचना अस्तित्व में बनी रहे। सहृदय हृदय गुण पक्षपाती होते हैं। अलं पल्लवितेन।

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥

सुहृदकिंकर
देवकीनन्दन गोस्वामी

विहार पंचमी
श्रीराधामाधव मन्दिर
श्रीधाम वृन्दावन।

महामहिम-
श्रीश्रीगोवर्द्धनभट्ट-ग्रन्थावली

श्रीश्रीमन्महाप्रभुगौरांगदेवपरिकरप्रधानस्य श्रीरघुनाथ-
भट्टगोस्वामिनः शिष्यस्य, वाणीकारश्रीश्रीगदाधर-
भट्टमहोदयस्य वंशजेन महामहिम-
श्रीगोवर्द्धनभट्टेन
विरचिता ।

यस्यां

(१) मधुकेलिवल्ली (२) श्रीराधाकुण्डस्तवः
(३) श्रीरूपसनातनस्तोत्रञ्च ।

★

अर्थ सहायक :-

श्रीमुरलीधर आइदान, कलकत्ता ।

गौरपूर्णिमा (फाल्गुनी)
सं० २०१२
प्रथमावृत्ति-१०००

प्रकाशक :-
कृष्णदास
कुसुमसरोवर वाले

ग्रंथकार के वंशवृत्त—

श्रीमन्महाप्रभु के परिकर श्रीपादरघुनाथभट्टगोस्वामी के शिष्य
वाणीकार श्रीश्रीगदाधरभट्टजी –

- रसिकोत्तंसजी (प्रेमपत्तनकार)
  - श्रीकृष्णभट्टजी
    - श्रीलालजीभट्टजी
      - श्रीगोवर्द्धनभट्टजी(ग्रन्थकार)
        - मन्नुलालभट्टजी
          - श्रीमाधवलालभट्टजी
            - श्रीनंदकुमारभट्टजी
              - श्रीगिरधारीभट्टजी
                - बालमुकुन्दभट्टजी
                  - नंदनंदन
                  - देवकीनंदन
                  - गोपाललाल
                  - वल्लभरसिकजी
                    - जनार्दनजी
                    - विश्वम्भरजी
                    - नीलमणिजी
              - श्रीगोविंदलालभट्टजी
                - श्रीगोवर्द्धनभट्टजी (छुट्टनलाल)
                  - श्रीकृष्णचैतन्यजी
                    - (→ वल्लभरसिकजी)
      - श्रीब्रजपतिभट्टजी
      - श्रीगोविन्दकृष्णभट्टजी
- बल्लभरसिकजी (वाणीकार)

दो शब्द !

-:o:❀:o:-

करुणावरुणालय, रसराज-महाभाव मिलित विग्रह, प्रेमावतार, महाप्रभु श्रीगौराङ्गदेव की पुनीत कृपा से आज हम महामहिम श्रीगोवर्द्धनभट्टजी के द्वारा विरचित "श्रीरूपसनातनस्तोत्र" "श्रीराधाकुण्डस्तव" तथा "मधुकेलिवल्ली" नामक तीनों ग्रन्थ का प्रकाशन कर प्रेमी-जनता के समक्ष उपस्थित करने में समर्थ हुए। ग्रन्थकार का संक्षिप्त परिचय यह है कि–आप श्रीमन्महाप्रभु गौराङ्गदेव के पार्षदप्रवर, छैः गोस्वामियों में एकतम श्रीरघुनाथ–भट्ट गोस्वामिपाद के शिष्य वाणीकार श्रीगदाधर–भट्टजी की शिष्य-परम्परा में उन्हीं के वंश में हुए हैं। मधुकेलिवल्ली के टीकाकार श्रीरामकृष्णभट्ट ने प्रथम श्लोक की टीका में "निजगुरून्" यहाँ पर इस प्रकार की व्याख्या की कि–"पक्षे निजानां स्वकीयानां गुरवः श्रीमद्गदाधरभट्टनामानस्तेषां निजगुरुत्वात् तान् वन्दे" अर्थात् दूसरी व्याख्या यह है कि अपनी परम्परा के गुरु श्रीगदाधरभट्टजी हैं, उनकी हम वन्दना करते हैं। इस से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि वाणीकार गदाधर-भट्टजी की परम्परा में ही ग्रन्थकार श्रीगोवर्द्धनभट्टजी हुए हैं। स्वयं आपने श्रीरूपसनातनस्तोत्र के प्रारम्भ में पञ्चम श्लोक पर अपने पिता को ही शिक्षा गुरु रूप में तथा राधाकुण्डस्तव के चतुर्थ-पञ्चम-षष्ठ श्लोकों पर अपने पिता की वन्दना और तृतीय श्लोक पर अपने गुरु का उल्लेख किया है। षष्ठ श्लोक पर अपने पिता की कथा का संसर्ग से प्रियादासादिक–वैष्णवों को भावमग्न हो जाना ऐसा निर्णय है। ऐतिहासिक विचार से प्रियादासजी की स्थिति

का समय लगभग १७४० सम्वत् से कुछ पहले से लेकर १७६४ सम्वत् के कुछ उपरान्त तक है। क्योंकि उनके द्वारा विरचित भक्तमाल की भक्तिरसबोधिनी-टीका में ग्रन्थ के समाप्ति-काल १७६६ सम्वत् तथा रसिकमोहिनी-ग्रन्थ में उसके रचना-काल १७६४ सम्वत् ऐसा उल्लेख है। अतएव श्रीगोवर्द्धन-भट्टजी प्रियादासजी के समसामयिक हैं यह स्पष्ट है।

ग्रन्थकार के कुलदेव श्रीराधामदनमोहनजी ठाकुर हैं जो कि श्रीगदाधरभट्टजी के द्वारा यमुना की रेणुका से युगल स्वरूप में माघी शुक्ला पञ्चमी (बसन्तपञ्चमी) के दिवस प्रगट किये गये हैं तथा उनके हृदय के परम सेव्य धन हैं। वह विग्रह वर्त्त-मान वृन्दावन में अटखम्भा (महल्ला) पर विद्यमान है। जिन की सेवा उक्त भट्टजी के वंशज ही परम्परा से करते आ रहे हैं। अभी भी वहाँ बड़ी धूमधाम से समाज (पदों का कीर्त्तन) आदि होता रहता है। वैष्णव समाज वहाँ एकट्ठे होकर भेद-भाव से रहित हो विभोरता के साथ समाज करते सुनते हुए परम प्रसन्नता को प्राप्त होते हैं। इस समय वृन्दावन में भट्टजी के वहाँ समाज बहुत प्रसिद्ध है। भागवत की कथकता तो भट्ट-वंश की निज सम्पत्ति है। श्रीपादरघुनाथभट्ट गोस्वामी जी के समय से अब तक भट्ट-वंश में भागवत के महान्-महान् धुरन्धर पण्डित-वक्ता हो गये हैं। वर्त्तमान समय वृन्दावन में श्रीयुक्त गोवर्द्धन-भट्टजी (छुट्टनलालजी) और श्रीयुक्त श्रीनित्यानन्दभट्टजी भाग-वत के अद्वितीय वक्ता माने जाते हैं।

श्रीगदाधरभट्टजी भागवत के अद्वितीय वक्ता थे। जिनके विषय में श्रीनाभाजी ने कहा है:-

सज्जन-सुहृद-सुशील बचन आरज प्रतिपालै।
निर्मत्सर निष्काम कृपा करुणा को आलै॥

अनन्य भजन दृढ़ करन धर्‌यो वपु भक्तनि काजै ।
परम धर्म को सेतु विदित वृन्दावन गाजै ॥
भागवत सुधा वरषै वदन काहू को नाहिन सुखद ।
गुणनिकर गदाधरभट्ट अति सबहिन को लागे सुखद॥

भट्टजी के वंश में श्रीगोवर्द्धनभट्टजी की चौथी पीढ़ी पर श्रीयुक्त श्रीनन्दकुमारजी भट्ट हुए जो कि भागवत के परमवक्ता थे। उनके विषय में श्रीराधाचरण-गोस्वामी जी ने "नव-भक्त-माल" में इस प्रकार कहा है:-

"श्रीनन्दकुमार उदार मति विदित भागवत भट्ट ।
होली जन्मोत्सव रचित हीय आवत हरि झट ॥"

वृन्दाबन में भट्टजी के यहाँ श्रीराधामदनमोहनजी की सदाचार पूर्ण बड़ी भावमयी सेवा होती है। जो दर्शन योग्य है।

मधुकेलिबल्ली की एक सटीक प्राचीन हस्तलिपी उक्त श्री-युक्त गोबर्द्धनभट्ट महोदय के पास में से मिली तथा भट्टजी के वंशज मान्यवर श्रीनन्दनन्दन-भट्टजी और उनके छोटे भ्राता श्रीयुक्त गोपालभट्टजी के पास से मूलमात्र दूसरी प्रति मिली। मथुरा हाथीगली-निवासी पण्डित श्रीकेशवदेव-पाण्डे महोदय के निकट मधुकेलिवल्ली की एक सटीक प्रति खण्डित अवस्था में मौजूद है। मधुकेलिबल्ली के टीकाकार श्रीरामकृष्णभट्टजी हैं। टीका के प्रारम्भ में-

"लावण्यामृतपूर्व्व-श्रीतारकापालिपालकः ।
राधाप्रीतिकृदेकात्मा विधुः स्फुरतु मे हृदि ॥"

यह मङ्गलाचरण श्लोक विद्यमान है। टीकाकार ने इस ग्रन्थ के उपसंहार में "इति श्रीरामकृष्णभट्टेण कृता मधुकेलिव्रतती-विवृत्यां पञ्चमः पल्लवः" ऐसा निर्देश किया है। इस टीका का अवलम्बन कर मैं ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद करने में समर्थ हुआ।

टीका के आधार पर ही अनुवाद किया गया है। "श्रीराधाकुण्ड-स्तव" की प्राचीन हस्तलिपी उक्त श्रीगोबर्द्धनभट्ट महोदय के पास मूलमात्र मिली। "श्रीरूपसनातनस्तोत्र" की एक प्राचीन हस्त-लिपी उक्त श्रीगोबर्द्धनभट्ट-महोदय के पास मौजूद है। यह ग्रन्थ पहले "बराहनगर श्रीभागवताचार्य्यपाटवाड़ी" से श्रीयुक्त बाबाजी महाराज के द्वारा सानुवाद वंगाक्षर में मुद्रित हो गया है। जिस को हमारे पूज्य गुरुभ्राता, महान भावुक श्रीगोविन्द-काव्यतीर्थ महोदय ने पद्यवन्ध सुललित वंगानुवाद से अलंकृत किया है।

मधुकेलिवल्ली में ग्रन्थकार ने अपनी काव्य-प्रतिभा को चूडान्त-सीमा में दिखलाया है। निःसन्देह आनन्दवृन्दावनचम्पू के होरीविलास के प्रकरण को लेकर उसके आधार पर यह ग्रन्थ निर्माण किया गया है। ग्रन्थकार ने इस में अपनी वाणी-सुधा को अनुप्रास की घटा से छा दिया है। जब मधुमङ्गल, श्रीहरि को छोड़ कर स्वामिनी जी के पास आया तथा अपने को उनके शरण में आने की प्रार्थना करने लगा उस समय गम्भीर भाव-वती श्रीस्वामिनी कहने लगीं—

जुष्टं गुणैः सख्यरसेन पुष्टं घुष्टं यशोभिर्भुवि भावतुष्टम्।
शिष्टं हरिं वेणुधरं वरिष्ठं स्पष्टं कथं मुग्ध जहासि कष्टम्॥

अर्थात्—हाय हे मुग्ध! सर्व गुणों से युक्त, सख्यरस से पुष्ट, यश में प्रसिद्ध, भावों से सन्तुष्ट, स्वभाव में शिष्ट, वेणु बजाने में श्रेष्ठ उन श्रीहरि को स्पष्ट रूप में तुमने कैसे त्याग किया। यह बड़े दुःख की बात है। चतुर्थ पल्लव में विशाखा श्रीहरि के समक्ष श्रीराधा की विरह-दशा का वर्णन कर रही हैः—

यदा गोविन्द त्वं नहि नयनयोरध्वनि गत-
स्तदा राधा वाधाभरविवशधीराधिविधुराः।

निमेषं कल्पं सा सपदि मनुते दुःसहतरं
वरं वृन्दारण्यं विषमविषजालायितभरम् ॥४।२२

अर्थात्–हे श्रीगोविन्द ! सुनो। जब तुम उसके नयनों के सामने नहीं आते हो तब उस समय वह राधा अत्यन्त मनोवाधा से विवश होकर पीड़ा से व्याकुल हो जाती है। वह एक निमेष काल को दुःसहनीय कल्प की भाँति मानती है। सर्व श्रेष्ठ श्रीवृन्दाबन उसके लिये विषम विष–ज्वाला की भाँति प्रतीत होता है।

श्रीराधाकुण्डस्तव में ग्रन्थकार ने राधाकुण्ड को सर्वोपरि आराध्य रूप में निर्णय किया है। इसकी रचना वृन्दाबनशतक की परिपाटी से की गयी है। त्रयोविंश तथा चतुर्विंश श्लोकों में:–

धर्माधर्मविनिर्णयेषु निपुणाः कुर्वन्तु धर्म्मं नराः
केचित् संकलयन्तु योगमपरे ब्रह्मस्वरूपे मनः।
अन्ये भक्तिसुखानुभूतिजनितामोदा भवन्तु स्फुटं
नान्यद्वाञ्छति मे मनस्तु सरसीं श्रीराधिकाया बिना ॥२३

श्रीराधासरसीगुणैस्तु रसना भूयात्सदालंकृता
तामेवानिशमुद्भट-प्रणयतश्चित्तं मम ध्यायतु।
शीर्षं मे कुरुतां प्रणामवितर्तिं तस्यां सुदैन्यावृतां
कर्णौ संश्रृणुतां मम प्रतिदिनं तस्या भृशं संस्तुतिम् ॥२४

श्रीरूपगोस्वामीपाद, श्रीरघुनाथदास–गोस्वामी आदिक महानुभावों ने ब्रज में श्रीराधाकुण्ड की ही सर्वोपरि महत्त्व दिया, पद्मपुराणादिक में साक्षात् राधिका-विग्रह रूप में राधा-कुण्ड का वर्णन है। महामहिम श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्ती महोदय ने भागवत की सारार्थदर्शिनी टीका में राधाकुण्ड के प्रादुर्भाव के वारे में बीस श्लोक के द्वारा सरस वर्णन किया है। पृथिवी के समस्त तीर्थ अधिकन्तु ब्रज के समस्त तीर्थ श्रीराधाकुण्ड में विराजमान हैं।

रूपसनातनस्त्रोत्र भी "वृन्दाबन-महिमामृत" अथवा "श्री-चैतन्यचन्द्रामृत" किम्वा "श्रीराधासुधानिधि" इन ग्रन्थों की रचना परिपाटी से लिखा गया है। प्रथम श्लोक में ही ग्रन्थकार ने अपने हृदयगत यथार्थ सिद्धान्त-अनुराग-निष्ठाओं को उघाड़ कर सब को दिखला दिया है। अस्तु ग्रन्थकार के इस अनर्घ्य देन के लिये जगत् चिर ऋणी रहेगा। मधुकेलिवल्ली तथा राधा-कुण्डस्तव के अनुवाद के संशोधन में श्रीयुक्त, वन्धुवर, स्वामी प्रेमानन्दजी, वृन्दावन वासी ने यथेष्ट सहायता देकर चिरवाधित किया। अवशेष में हम उन महानुभाव (बीकानेर) निवासी सेठ श्रीमान् हनुमानदासजी राठी को धन्यवाद देते हैं कि आपने इन तीनों ग्रन्थ का प्रकाशन में सम्पूर्ण अर्थ सहायता देकर वैष्णव जगत् का महान् उपकार किया। अलमति विस्तरेण:-

विनीत—

कृष्णदास

(कुसुमसरोवर वाले)

॥ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ॥

गौड़ीयग्रन्थगौरवः—

प्रकाशक के द्वारा प्रकाशितग्रन्थ-संख्या-११७-१२०

(१) भक्तितत्वप्रकाशिका (२) गीतिविंशतिका

(३) भक्तिविवेकः

(४) अनर्पितचरीं चिरादितिश्लोकस्य व्याख्या
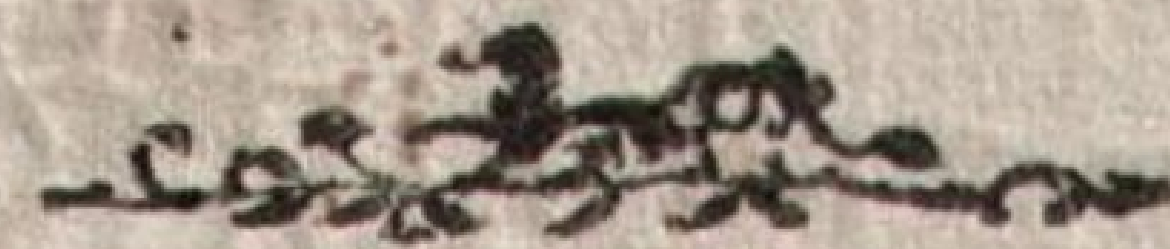
क्रमतः— रचयिताः—

(१) श्रीचैतन्यदासजी (२) गोस्वामिश्रीगोपीलालजी

(३) श्रीश्रीनारायणभट्टजी (४) श्रीपादजीवगोस्वामीजी

प्रकाशकः व मुद्रकः—

कृष्णदासबाबा

गौरहरिप्रेस, ग्वालियरमन्दिर कुसुमसरोवर,

राधाकुण्ड (मथुरा)

मूल्यम् ॥)　　　　सम्वत्—२०२०

❀ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ❀

ग्रन्थरत्नत्रयम्

श्रीवृन्दाबनदासेन विरचितं ब्रह्माण्डपुराणोक्तश्रीकृष्ण-
शताष्टोत्तरस्तोत्रस्य श्रीगौतमीयतन्त्रोक्तश्री-
गोपालस्तवराजस्य च भाष्यम् ।

श्रीश्री नारायणभट्टविरचित-
श्रीलाडिलेयाष्टकेन
समलङ्कृतम्

प्रकाशकः—

बाबा कृष्णदासः

कुसुमसरोवरनिवासी (मथुरा)

श्रीविजयादशमी
सम्वत् - २०१७

मूल्यम्
अर्द्धरूप्यकम्

॥ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ॥

अस्ति निखिलब्रह्माण्डेषु भगवच्छ्रीगोविन्ददेवस्य प्रशासयितृत्वम्। सर्वावतारकारणस्वरूपः यः समस्तसुखारामे परमधाम्नि रमोमाजभूतनाथादिवन्दितरजःकणिकासौभाग्ये गोलोकवैचित्र्ये श्रीवृन्दाबने योगपीठे स्वर्णरत्नमयसिंहासने कल्पबृक्षाणां सुशितलच्छाये इन्दिरादिमृग्यसौन्दर्य्यनखाञ्चलद्युतिभिः ब्रजकिशोरीघटाभिः नित्यतया विराजितः लीलारसास्वादं करोति स्म। सच्चिदानन्दघनः सः गोविन्दः कदाचित् वज्रनाभेण लीलया विग्रहरूपेण कदा वा श्रीरूपगोस्वामिना दर्शनानन्दप्रदानेन निजभक्तानां प्रतिपालयितुं तेनैव रूपेण प्रगटोऽभूत्। आगमनिगमकर्त्तारः महर्षयः यं गोविन्दं अष्टादशाक्षरदशाक्षरादिमन्त्रैरर्च्चयितुं विधिंपरिदर्शयन्ति स्म, तन्नाममंत्रजपादिकं तत्प्राप्तेःमहदुपायः तन्मंत्रजपान्ते तच्छताष्टोतरनामपठनं तथा तत् स्तबस्य पाठं कृत्वा जपादिसमये ध्यानमितिद्वयं परमावश्यकं द्वयमेव मंत्रांगम्। ययोर्विना मन्त्रजपं निष्फलं स्यात्। गोपालमन्त्रविधायकं मूलग्रन्थं गौतमीयतन्त्रम्। तत्रैव ध्यानादिप्रसंगे गोपालस्तवराजोऽयं विद्यते, शताष्टोत्तरनामस्तोत्रं ब्रह्माण्डपुराणे च। गौरांगमहाप्रभुवीथिपथिकवरः निगमागमज्ञातचरः छन्दःकौस्तुभग्रन्थकारः श्रीराधादामोदरशिष्यप्रवरः गोविन्दभाष्यकर्त्तृ वलदेवविद्याभूषणपादस्य गुरुभ्राता श्रीबृन्दाबनदासोऽयं द्वयोर्बोधगम्यार्थं स्वसम्प्रदायानुसारिणा भाष्यं कृतवान्। 'लुक्कायितरूपेण स्थितौ यौ' भाष्यग्रन्थौ साम्प्रतं बृन्दाबनस्थराधारमणघेरानिवासिनः श्रीनीलमणिगोस्वामिनः सकाशात् स्वर्णरत्नयोर्बृष्टिरिव प्राप्तौ अभूताम्। गोपालस्तवराजभाष्यस्य लिपीरेका श्रीयमुनावल्लभगोस्वामिनः ग्रन्थागारतः प्राप्ता। शताष्टोत्तरभाष्यस्य गोपीनाथबागनिवासिना श्रीपुरुषोत्तमदासबाबाजीमहाराजेन पाण्डुलिपिं कृत्वा प्रदत्तम्। प्रभुकृपातः द्वौ प्रकाश्यतां प्राप्तौ च। श्रीगोपालमन्त्रराजस्योपासकाः इमौ भाष्यौ परिशीलयन्तु एषा मम महती आशा।

कृष्णदासः

श्रीमाध्वगौड़ेश्वरग्रन्थमाला-२६।३३ ॥

* श्रीश्रीगौरांगमहाप्रभुर्जयति *

ग्रन्थरत्नपञ्चकम्

(१) श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका, (२) श्रीकृष्णलीलास्तवः,
(३) श्रीगौरगणोद्देशदीपिका, (४) श्रीसङ्कल्पकल्पद्रुमः,
(५) श्रीव्रजविलासस्तवः

क्रमतः
ग्रन्थरचयितारः

(१) श्रीश्रीमद्रूपगोस्वामीपादः, (२) श्रीश्रीसनातनगोस्वामीपाद,
(३) श्रीकविकर्णपूरमहोदयः, (४) श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्तिजी,
(५) श्रीमद्रघुनाथदासगोस्वामीजी

अर्थसहायकः-

श्रीमुरलीधर आइदान, कलकत्ता।

अनुवादक तथा प्रकाशकः-

कृष्णदास,
कुसुमसरोवरवाले।

प्रथमावृत्ति १०००] शुभसमय-श्रीअक्षयतृतीया सम्वत् २०११ [नौछावर १॥)

कृतज्ञतास्वीकार

★

[१] बीकानेर के सेठ, कलकत्तानिवासी, गौरगतजीवन, श्रीमान् हनुमानदास जी राठी तथा श्रीमान् गोपालदास जी। आप दोनों की हार्दिक सौहार्द्रता और परम आग्रहता से हम इस ग्रन्थ-रत्नपञ्चक के प्रकाशन में समर्थ हुए।

[२] श्रीमान् मुरलीधरआइदान जी। आप ने इन ग्रन्थों का प्रकाशन में सम्पूर्ण अर्थ सहायता देकर चिरवाधित किया।

[३] श्रीहरिदासदासजी महोदय। आप प्राचीन गोस्वामि-आचार्य्यों के द्वारा विरचित अनेक (लगभग शताधिक) ग्रन्थों के प्रकाशक हैं। आप ने "श्रीकृष्णलीलास्तव" का निजकृत टीका तथा वंगानुवाद के साथ प्रथम वार प्रकाशन किया है।

[४] श्रीयुक्त परमपूज्य गोस्वामी रासविहारी जी शास्त्री। आप ने गौरगणोद्देशदीपिका, संकल्पकल्पद्रुम तथा व्रजविलासस्तव का अनुवाद संशोधन कार्य्य में सहाय देकर परम उपकार किया।

[५] पं० श्रीनारायणदेव कौशिक जी, मथुरा गौघाट के निवासी। आप ने श्रीकृष्णलीलास्तव तथा राधाकृष्णगणोद्देशदीपिका के अनुवाद संशोधन कार्य्य में सहायता दी।

[६] श्रीगुरु-गौरांगगण—जिन की कृपाकणिका से हम इन ग्रन्थों के प्रकाशन में समर्थ हुए।

❀ ❀ ❀

मुद्रकः-रमनलाल बंसल, पुष्पराज प्रेस, मथुरा।

श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयताम्

चन्द्रावलीप्रभृति-नव्यलतावलीषु
वृन्दाबनेऽनवरतं विहरन् समन्तात् ।
राधा-सुवर्णनलिनी-गुणगन्धलेश-
मात्रोन्मना विजयतामिह कृष्णभृङ्गः ॥ १ ॥
कृष्णोत्कीर्त्तन-गान-नर्त्तनपरौ प्रेमामृताम्भोनिधी
धीराधीरजनप्रियौ प्रियकरौ निर्मत्सरौ पूजितौ ।
श्रीचैतन्यकृपाभरौ भुवि भुवो भारावहतारकौ
वन्दे रूपसनातनौ रघुयुगौ श्रीजीवगोपालकौ ॥ २ ॥
श्रीरूपेण प्रबलकरुणाशालिना दर्शितं यत्-
मादृङ्मुग्धप्रकृति-जनता-श्रेयसे रागवर्त्म ।
तस्मिन् येषां रतिरतितरां वर्त्तते सारभाजां
तेषां पादाम्बुजनतिमती कोटिशः स्याज्जनिर्मे ॥ ३ ॥

हरिदासदास बाबा,
हरिबोलकुटीर,
नवद्वीप ।

यह पुस्तक तथा प्रकाशित अन्य पुस्तकें मिलने का पता-

१—श्रीरामनिवासखेतान की दूकान, सबामनशालग्राम जी मन्दिर के नीचे (लोईबाजार) बृन्दावन ।
अनुपस्थिति में — मन्दिर के भीतर ।
२—मोतीरामगुप्ता भगवानभजनाश्रम, बल्लीगंज, वृन्दावन ।
३—राधेश्यामगुप्ता बुकसेलर, पुरानासहर, वृन्दावन ।
४—मुरारीलाल बुकसेलर, असकुंडाघाट, मथुरा ।

समर्पण-पत्र

"हा वत्स केवलचन्द"

तुम्हारी प्रेरणा का फल यह "ग्रंथरत्नपंचक" अथवा "दिव्यपंचामृत" रसिकों को आनन्द देता हुआ तुम्हारी आत्मा को प्रेम प्राप्त करावे।

–हनुमानदास राठी

श्री श्री गौरांगविधुर्जयति

श्रीगोवर्द्धनशतकम्

श्रीश्री विष्णुस्वामी संप्रदायाचार्य्य
श्रीकेशवाचार्यमहोदयेन
विरचितम्

अनुवादक -
डीगनिवासी पं० हरिकृष्ण 'कमलेश जी'

अर्थ सहायक -
श्री मान् शंकरलालजी पुरीवाला (आगरा)

प्रकाशक -
बाबा कृष्णदास
कुसुमसरोवर, मथुरा

संवत् २०२१) न्यौछावर ।).

श्री श्री गौरांगविधुर्जयति

दो शब्द

प्रस्तुत श्रीगोवर्द्धनशतक के रचयिता श्री केशवाचार्य्यजी के विषय में हमें विशेष कोई ज्ञात नहीं है। उन की संक्षेप जिवनी यह है कि आप गवालियर निवासी, सनाढ्य ब्राह्मण, श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त वैष्णवाग्रगण्य श्री मोहन मिश्र जी के पुत्र थे। आप की माता का नाम श्रीमती भगवती देवी था। आप वाल्यकाल से ही श्रीकृष्ण भक्ति परायण थे तथा बालकों के साथ श्रीकृष्णलीला विषयक विविध क्रीड़ा करते थे। कभी रोते थे कभी हँसते थे कभी उन्मत्त होकर आत्म ज्ञान शून्य हो जाते थे। अतन्तर आप के हृदय में ब्रजवास की तीव्र इच्छा हुई। आप पिता माता की आज्ञा लेकर ब्रज में आये तथा अनेक लीला स्थल दर्शन करते हुए श्रीगोवर्द्धन की तलहटी में पधारे और तत्कालीन विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के अनुयायी श्री रोहिणाचार्य्य जी से मन्त्र दीक्षाली। तब से आप एकनिष्ठ होकर गोवर्द्धन में वास करने लगे और शेष जीवन को श्रीहरिदेव जू की सेवा में लगाकर समय बिताने लगे। आप भगवान् हरिदेव जू के अनन्य भक्त तथा सेवक हुए। प्रेमावतार, प्रेम के ठाकुर भगवान् श्री गौरांगदेव जगत् जीवों को प्रेम नाट्य सिखाते हुए जिस समय वृन्दावन होकर श्रीगोवर्द्धन आये थे उस समय श्री केशवाचार्य्य भी यहाँ उपस्थित थे ऐसा कहा जाता है। राधाभाव आस्वादन में उन्मत्त प्रभु श्री गौरांग हरि ने श्रीराधाकुण्ड से गोवर्द्धन के दर्शन तत्पश्चात् हरिदेवजी के समक्ष जो प्रेममाधुर्य्य, तथा भावावेश नृत्य रंग देखाया था सो इस प्रकार है—

भ्रातृपुत्र श्रीगोस्वामी रामस्वरूपजी की प्रोत्साहन से इस मनोहर ग्रन्थ रत्न को प्रकाशित करने में समर्थ हुआ हूँ। डीग (भरतपुर रियासत) निवासी गौड़ीय पीठाधीश शृङ्गारवट गोस्वामी श्री देवकीनन्दनजी प्रभु के आश्रित, प्रिय बन्धुवर श्री हरिकृष्ण कमलेश (वैद्य) जी ने प्रचुर परिश्रम के साथ इसका अनुवाद कर मुझे प्रदान किया है। अतः मैं उक्त दोनों महानुभावों का हृदय से आभारी हूँ।

परिशेष में हरिभक्त प्रेमी श्रीमान् शंकरलालजी (चिम्मनलाल मिट्ठनलाल पूरी वाले) सुभाष बाजार आगरा निवासी को अनेक धन्यवाद देते हैं कि आपने इस ग्रन्थ प्रकाशन कार्य में यावतीय व्यय लगाकर परम उपकार किया।

गोवर्द्धनवास प्रार्थी
वैष्णवदासानुदास
कृष्णदास
कुसुम सरोवर।

श्री

* समर्पणपत्रम् *
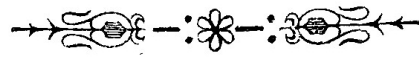
श्रीश्रीराधारमणचरणदासदेवस्यानुचरप्रवरस्य,सकलदेश-
प्रसिद्धकीर्तिराशेः,प्रेममात्रसर्वस्वकृतस्य,निरन्तरसा-
त्विकभावाबल्याबिभूषितस्य,दीनतासागरस्य,
मधुरस्वरालापैः सर्वदा गौरकीर्तनकर्तुः,
श्रीरामदासेतिनाम्ना प्रसिद्धस्य,
मदीयआराध्यदेवस्य, श्री
गुरुदेवस्य बाबाजी
महाराजस्य---
प्रीत्यर्थं
समर्पितेयं बाणी

❀ ❀ ❀ ❀
❀ ❀ ❀
❀ ❀
❀
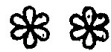
केवल टाइटिल-श्रीगौरहरि प्रेस,कुसुमसरोबर, राधाकुण्ड (मथुरा)

श्रीगौराङ्गविधुर्जयति

श्रीश्रीसनातनगोस्वामीप्रभु के श्रीचरणाश्रित

श्रीगौरगणदास-कृत

श्रीगौराङ्गभूषणमञ्जावली

प्रकाशकः-

बाबा श्रीकृष्णदासजी

कुसुमसरोवर,मथुरा

विचार ही स्थगित कर दिया और प्राचीन वस्तु लोप न हो जाय इस आशंका से शीघ्र प्रकाशित करना ही उचित समझा। अपने पूज्य बड़े गुरुभ्राता तथा ब्रज में प्रसिद्ध,श्रीबाबा गौरॉंगदासजी के मुख से कई वार इस गौरांगभूषण मंजावली के कुछ सुन्दर रसीले पद सुनने में मिले थे। जब से हम उसकी खोज में थे। दैवात् पूंछरी निवासी,नित्यधाम प्राप्त श्रीबाबा माधवदासजी के आश्रिय शिष्यवर बाबा किशोरीदासजी, कालिदह वृन्दावन निवासी के पास में से सम्पूर्णवाणी प्राप्त। हुई दूसरी कापी श्री बावा वंशीदासजी गौघाट वृन्दावन निवासी के पास से व तीसरी प्रति उक्त श्री वावा गौरॉंगदास जी से मिली, पीछे की दोनों कापी में समप्रति पद नहीं मिले। इस पुस्तक के प्रकाशन करने में समस्त व्यय मुंगेर निवासी गौरनिष्ठ राजा रघुनन्दनप्रसादसिंह जी ने उठाया है अतः हम इन सब महोदय के आभारी है॥

विनीत

कृष्णदास

कुसुमसरोवर

गोवर्धन (मथुरा)

वि० सं० २००७

❀ श्री श्री गौरांगविधुर्जयति ❀

व्रजभाषा में

श्री गीतगोविन्द

श्री श्री रसजानिवैष्णवदासजी कृत
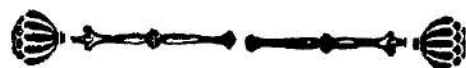
श्री कृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द
हरेकृष्ण हरेराम राधे गोविन्द
भज—निताई गौर राधेश्याम
जप—हरेकृष्ण हरेराम ।

रसिक प्रवर पूज्य श्री बाबा श्री गौरांगदासजी के कृपा पात्र बरसाना (कोसी) निवासी, लाला वनखण्डि के आत्मज, गौरीनष्ठ लाला चतुर्भुज (चेतराम) जी के संपूर्ण सहाय से मुद्रित ।

प्रथम भाग
गौरपूर्णिमा
मूल्य ।)
प्रथमावृत्ति १०००

प्रकाशक—
बाबा—कृष्णदास
कुसुमसरोवर
पो० राधाकुण्ड
ज़िला मथुरा ।

दो शब्द

ग्रंथकार का सूक्ष्म परिचय यह है कि आप श्री निवास आचार्य्य प्रभु के शिष्य श्री मनोहरदासजी के सयय से कुछ काल पश्चात हुए है। आप के गुरु का नाम श्रीहरिजीवन था तथा आप भक्तमाल के प्रसिद्ध टीकाकार श्री प्रियादास जी के पौत्र थे। इस विषय में आप स्वयं अपने ग्रन्थ में लिखते हैं कि—

श्री प्रियादास रस रासि को पौत्र वैष्णवदास।
ताही कौ रसजानि तिन कीनौं नाम प्रकाश।
श्रीहरिजीवन गुरु कृपा पाय सोई रसजानि।
श्रीभागवत महात्म की भाषा करी वखानि॥
(भागवत माहात्म्य के परिशिष्ट)

श्री प्रियादास रसरास की पाय कृपा रस जानि।
अगम कियौ निपटै तृतीय स्कन्ध वखान॥
(इसी प्रकार समस्त स्कन्धों के अन्त में दिया है॥)
श्रीरूप सनातन रसिक रस इकठां कियौ निचोय।
तिन विन चांसत छूछकों तिनें न पूँछ विगोय॥
रसिक वरनि मनोहर के प्रियादास जस वास।
तासु हिये रस रासि कौ कृपा विलास प्रकाश।
श्री हरि की जीवनि सदा हरि ही जीबन नित्त।
र स राधा रूप कों हरि हि जिवावत मित्त॥
(द्वादसस्कन्ध के अन्त में)

श्री प्रियादासजी महाराज को इस संसार में कोंन नहीं जानता। आप श्री मनोहरदासजी के शिष्य तथा आचार्य्य प्रभु के प्रशिष्य थे। आप निःसन्देह माध्वगौडेश्वर सम्प्रदाय में परम रसिक धुरन्धर विद्वान हुए। आप की वाणी मन्दाकिनी में किसने गोता नहीं लगाया। आपकी भक्ति भावना तथा रसिकता से प्रसन्न होकर हीं श्रीनाभाजी ने भक्तमाल की टीका रचने की आज्ञा दी थी।

इस प्रकार सार गर्भ कवित्त तथा उसकी रचना शैली अन्त्र साहित्य भण्डार में कहीं देखने में नहीं मिलती है। यह तो प्रेमपुरुषोत्तम कलिपावनावतार भगवान श्री गौरांगदेव जू की असीम कृपा का ही परिचय तथा उन प्रेमावतार प्रभु के मनोहर चरण कमल का ध्यान का फल है। "फलेन फल कारण मनुमीयते" यह उक्ति सचमच ही यहाँ देखने में आती हैं। उन श्रीप्रियादास जी के सम्पर्क में उनकी कृपा द्वारा परम रसिक होकर श्रीवैष्णवदासजी जगत विख्यात तथा एतादृश मनोहर काव्य रचना में समर्थ हुए। आप का उपनाम रसजानी था। आप अपने रचित ग्रंथों के मंगलाचरण में निज इष्ट तथा उपास्यदेव श्री राधाकृष्ण मिलित विग्रह भगवान् श्री कृष्णचैतन्यदेवजू का मंगल इस प्रकार पाठ करते हैं।

यथा—रसिक भूप हरि रूप पुनि श्रीचैतन्यस्वरूप।
हृदै कूप अनुरूप रस उफल्यौ वहै अनूप॥
(भागवत महात्म्य तथा प्रत्येक स्कन्ध के आदि में)
वन्दि कृष्ण चैतन्य दुति करै आनन्द जो।
कहौं गीत गोविन्द सुने होय महानन्द सों॥
(प्रस्तुत गीत गोविन्द में)

आपके द्वारा रचित समस्त श्रीमद्भागवत का भाषानुवाद है। यह विशुद्ध ब्रजभाषा में चौपाई छन्दों में लिखा गया है। प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में दोहा छन्द से अध्याय का संक्षेप मनोहर दिग्दर्शन किया गया है। मूलश्लोक के शब्दों को लेकर ज्यों के त्यों सरल सरस ब्रजभाषा में कहना यह एक अलौकिक शक्ति का परिचयायक है। ग्रंथकार की विशाल विद्वत्ता का द्योतक यह ग्रन्थरत्न है। ग्रन्थ की कुछ प्राचीन प्रतियां देहली नगर में उपस्थित है। समय पाकर इस विशाल ग्रन्थरत्न को भी प्रकाशित करने की इच्छा है। प्रस्तुत गीतगोविन्द में ग्रन्थकार ने अपनी जिस विशाल कवित्व शक्ति का परिचय दिया है यह साहित्य जगत में अद्वितीय तथा अतुलनीय है। आपने अपने संप्रदाय के प्राचीन आचार्य्य श्री

जयदेव गोस्वामी जी के द्वारा रचित श्री गीत गोविन्द जैसे महान काव्य को सन्मुख रख कर उस के शब्दों से सरल तथा सरसता के साथ ब्रजभाषा में सर्व साधारण के बोधार्थ लिखा है। इस ग्रन्थ का रचना काल सं० १७७७ है। निःसन्देह श्री भाषा भागवत का रचना काल उस के पश्चात है। भागवत का रचना काल सं० १८२२ से लेकर १८३१ सं० पर्य्यन्त है यह श्रीभागवत के समस्त स्कन्धों के अन्त में निर्देश किया है। लग भग १५००० चौपाई से यह ग्रन्थ बना हुआ है। प्रस्तुत भाषा गीत गोविन्द रसिक समुदाय के सन्मुख है आशा है कि रसिक मंडली श्री जयदेव जी द्वारा रचित मूल गीत गोबिन्द के समकक्ष रख कर इस सरल सानुगत मनोहर ब्रजभाषा पदावली से युक्त श्री रसजानी वैष्णबदासजी द्वारा विरचित भाषा गीत गोविन्द का रसास्वादन करेंगे। श्री वृन्दावनस्थ कालीदह निवासी, ब्रजभाषा के मर्मज्ञ रसिक प्रवर, अनेक वाणीयों के संग्रह कर्त्ता बाबा श्रीवंशीदास जी के पाश सर्व प्रथम इस पुस्तक की प्राचीन लिपी देखने तथा प्रतिलिपी करने का सौभाग्य मिला। दूसरी प्रती श्री नन्दकिशोर जी मुकुटवाले लोई बाजार वृन्दावन निवासी से प्राप्त हुई। इसलिये में तथा रसिक समुदाय उन दोन महानुभाव से ऋणी है। बरसाना (कोसी) निवासी लाला बनखण्डि के आत्मज, ब्रज के प्रसिद्ध मान्य गन्य परम प्रेमी रसिक वर पूज्य श्री गौरांगदास जी के कृपापात्र, लाला चतुर्भुज (हरि सम्बन्धिनाम श्री चैतन्यदास, प्रसिद्ध नाम चेतराम) जी के सम्पूर्ण आर्थिक सहाय से इस समय यह ग्रन्थ प्रकाश करने का समर्थ हुआ हूँ। महाप्रभु श्री गौरांगदेब जू आप का मंगल करें। इति।

विनीत

कृष्णदास

कुसुमसरोवर

समर्पणपत्र

श्रीश्रीराधारमणचरणदासदेवस्यानुचरप्रवरस्य, सकलदेशप्रसिद्ध-
कीर्त्तिराशेः, प्रेममात्रसर्वस्वकृतस्य, निरन्तरसात्विकभावा-
वल्याविभूषितस्य, दीनतासागरस्य, मधुरस्वरालापैः
सर्वदागौरकीर्त्तनकर्त्तुः, श्रीरामदासेतिमधुर-
नाम्ना प्रसिद्धस्य, मदीयआराध्यदेवस्य,
श्रीगुरुदेवस्य, बाबाजिमहाराजस्य
प्रीत्यर्थे

समर्पितेयंवाणी

मॉडर्न प्रेस, आगरा में छपी।

❀ श्रीश्री गौरांगमहाप्रभुर्जयति ❀

सानुवादम्

"ग्रन्थरत्नत्रिकम्"

श्रीपादविश्वनाथचक्रवर्त्तीजी विरचितम्

(चन्द्रिका, किरण, कणिका)

(१) रागवर्त्मचन्द्रिका, (२) उज्वलनीलमणि-किरणः (३) भागवतामृतकणिका

प्रकाशक—

कृष्णदास बाबा

कुसुमसरोवर (गवालियर मन्दिर)

पो० राधाकुण्ड (मथुरा)

सम्वत् २०१६

न्यौछावर ॥)

❀ समर्पणपत्रम् ❀

भज–निताइ गौर राधेश्याम ।

जप–हरे कृष्ण हरे राम ॥

श्रीश्रीद्वारकेन्द्र-उपासक, साधुगुरुपरायण, जयपुर-राज्यान्तर्गत "गीजगढ़" स्थान निवासी, नित्य-धाम प्राप्त भक्तवर श्री कुशलसिंहजी के पुनीत स्मरण में यह ग्रन्थत्रय प्रकाशित होकर समर्पित है ?

भूमिका

प्रस्तुत रागवर्त्मचन्द्रिका, उज्वलनीलमणिकिरण तथा भागवतामृतकण इन तीनों ग्रन्थों के रचयिता महामहोपाध्याय श्री विश्वनाथचक्रवर्त्ती जी का जन्म १६०६ शाक मतान्तर १६८६ शाक में बंगदेश स्थित मूर्शिदाबाद जिला सागरदीघि थाना के अधीन देवग्राम नामक ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम श्रीनारायणचक्रवर्त्तीजी है। श्री विश्वनाथ जी बाल्यकाल से ही प्राथमिक पाठ का शेष कर सैदावाद में जाकर भक्तिशास्त्र संस्कृत का साथ ही का अध्ययन करने लगे थे। संकल्पकल्पद्रुम नामक ग्रंथ में स्वयं आप श्री नरोत्तमठाकुर महाशय की शाखा परम्परा में श्रीकृष्णचरणचक्रवर्त्ती जी को अपने परमगुरु तथा उनके पुत्र श्रीराधारमणचक्रवर्त्तीजी को गुरु करके बतलाया है। श्रीकृष्णचरणजी सैदावाद निवासी श्रीरामकृष्ण आचार्य्य के पुत्र एवं बालुचरनिवासी गंगानारायण चक्रवर्त्तीजी के दत्त पुत्र थे जोकि सैदावाद में रह कर भक्तिशास्त्र का अध्यापना कराते थे। विश्वनाथजी ने उन्हीं के पास भागवतादि भक्तिशास्त्र का अध्ययन किया था, विश्वनाथजी यद्यपि ज्ञातिपरिजन के अनुरोध से अल्पवयस में दारपरिग्रहित हुए थे तो भी उस में विन्दुमात्र आकर्षित नहीं हुए। शेष में समस्त परित्याग कर बृन्दाबन में आ गये एवं वहाँ उस समय के वैष्णव समाज के कर्णधार रूप बन गये। उन्होंने अनेकानेक वैष्णव ग्रन्थ का तथा गौड़ीय-गोस्वामियों के द्वारा बिरचित अनेक भक्ति ग्रंथों की टीका का निर्माण कर वैष्णव समाज का महान् कल्याण साधन किया। उन के वेशाश्रय का नाम "हरिबल्लभ" था। बंगभाषा में तथा संस्कृतभाषा में अनेकानेक पद "हरिवल्लभ" नाम से प्राप्त है। श्रीयुक्तविश्वनाथ जी प्रगाढ़ पण्डित, महान् दार्शनिक, परम भक्त, श्रेष्ठ रसवेत्ता, उत्तम कवि, वैष्णव चूड़ामणि, तात्कालीन गौड़ीय वैष्णवों के अध्यक्ष रूप माने जाते हैं। उस समय उनके नाम से यह श्लोक प्रसिद्ध हुआ कि-

विश्वस्य नाथरूपोऽसौ भक्तिवर्त्मप्रदर्शनात् ।
भक्तचक्रे वर्त्तितत्वात् चक्रवर्त्याख्ययाऽभवत् ॥

अर्थात्-भक्तिमार्ग दिखलाने के कारण विश्व का नाथ रूप तथा भक्त चक्र में (भक्त समाज में) उत्कर्ष रूप विद्यमान रहने के कारण "चक्रवर्त्ती" यह नाम उनका पड़ा है। वे जहाँ बैठ कर ग्रन्थ लिखते थे वहाँ वर्षा जल नहीं पड़ता था अर्थात् वे सब ग्रंथ जल लिप्त नहीं होते थे। ऐसा कहा जाता है कि-उनके उत्तर काल में गोवर्द्धन के सिद्ध कृष्णदास बाबाजी महाराज ने मानसीगंगा में डूब कर तीन-चार दिवस के उपरान्त उनकी लिखित पुस्तकों का संग्रह किया था। श्रीचक्रवर्त्तीजी गौड़ीय समाज में श्रीपादरूपगोस्वामिजी का अवतार माने जाते हैं।

इन के द्वारा स्थापितविग्रह "श्रीगोकुलानन्द जी" बृन्दाबन में बिराजमान हैं। माघी शुक्ला पञ्चमी के दिवस श्रीराधाकुन्ड में श्रीचक्रवर्त्तीजी अन्तर्हित हुए हैं। बृन्दाबन पत्थरपुरा में इन की समाधि थी जो कि वर्त्तमान गोकुलानन्द जी में अपसारित हुई है। बालुचर में इन के वंशधर अभी भी मौजूद हैं। चक्रवर्त्ती जी ने वैष्णव समाज का बड़ा भारी उपकार किया है। जीव गोस्वामीजी के बाद गौड़ीय सम्प्रदाय का जो पतनारम्भ हो उठा था उस का पुनरुद्धार चक्रवर्त्तीजी ने ही किया है। गौड़ीय वैष्णव समाज में राधा गोविन्द की परकीया भावकी उपासना पद्धति श्रीमन्महाप्रभु जी से लेकर अब तक चल आ रही है। पद्मपुराण के पातालखंडीय वृन्दाबनमाहात्म्य के ४ मां अध्याय, सनत्कुमार संहिता के छत्तीसमाँ पटल, भागवतादि शास्त्र, रसाचार्य्य जयदेवादि महानुभावों के साहित्य, चण्डीदास विद्यापति आदि प्राचीन रसिकों की वाणियों से यह उपासना सुसिद्ध है। महाप्रभु ने इसी उपासना को परम महत्व दिया तथा श्रीरूपसनातनादि गोस्वामियों के द्वारा उस का उद्घाटन करवाया।

श्रीजीवगोस्वामी तक यह उपासना सुस्थिर रही। उन के बाद वह कुछ शिथिल सी हो गई। श्रीचक्रवर्त्तीजी ने निज अकाट्य युक्ति व शास्त्र

प्रमाणों से उसको ऐसा सुदृढ़ कर दिया कि जिस की भी भित्ति कभी टूट नहीं सकती । गौड़ीय समाज में ऐसी प्रसिद्धि है कि-चक्रवर्त्तीजी की विद्यमानता से कुछ पण्डितों ने परकियाभाव उपासना के विषय को लेकर नाना वाद वितण्डा किया था, परन्तु चक्रवर्त्तीजी ने निज प्रगाढ़ विद्वत्ता तथा अकाट्य युक्ति प्रमाणों के द्वारा विपक्षियों को परास्त कर उस मत को सुदृढ़ कर दिया। वे सब पण्डित मात्सर्य्य में आकर एकान्त भ्रमणशील चक्रवर्त्ती के प्राणनाशार्थ उद्यत हुए। पण्डितों ने चक्रवर्त्ती जी को न देख कर दो तीन सहचरी के साथ पुष्प विनती हुई एक ब्रजबालिका देखी। पण्डितों ने ब्रजबालिका रूप धारी चक्रवर्त्तीजी से पूछा। लाली! महात्मा चक्रवर्त्ती को तुमने देखा क्या? बालिका ने कहा—देखा तो था परन्तु कहाँ चल दिये होंगे। बालिका का कटाक्षपात–भावभङ्गि–मन्दहास्य–सौन्दर्य्य-लावण्यादि से पण्डित गण मुग्ध होकर मत्सर्य्यता को भूलकर पुनः परिचय पूछने लगे। उत्तर में बालिका ने कहा मैं स्वामिनी श्री राधिका की सहचरी हूं। इस समय आप निज श्वसुरालय जावट में विराजमान । कुछ गृह कार्य्य में निबद्धा है अतः प्रियतम श्रीकृष्णार्थ फूल लेने के लिये मुझे भेजी है । ऐसी कहती हुई वह अन्तर्द्धान हो गई। पण्डितों ने चक्रवर्त्तीजी को देखा तथा उनके चरणों में गिर कर क्षमा प्रार्थना की चक्रवर्त्ती जी के विषय में इस प्रकार अनेक अलौकिक बातें सुनने में आती हैं। गोविन्दभाष्य के रचयिता, प्रसिद्ध बलदेव-वद्याभूषणजी आपके भक्ति साधना के शिष्य थे । उन्हीं की शक्ति सञ्चार से विद्याभूषण जी विद्वत् शिरोमणि होकर जयपुर में विरोधी पण्डित समाज में विजय पताका फहरायी। उस समय समस्त ब्रजमण्डल में चक्रवर्त्तीजी की यश: प्रबल पताका उड़ रही थी तथा समस्त ब्रजमण्डल गौड़ीयों का अड्डा बन गया था। उधर जयपुर भी गौड़ीयों का एक केन्द्रीय स्थान बन चला क्यों कि ब्रज के गौड़ीय आचार्य्यो के स्थापित समस्त विग्रह प्रायः वहाँ पहुँच गये थे। श्रीरूप के गोविन्द, श्रीमधुपण्डित के गोपीनाथ, श्रीसनातन के मदनमोहन (ये तीन पहले बज्रनाभजीके द्वारा स्थापित हैं) श्रीजीवके राधादामोदर, जय-

देवजी के ठाकुर श्रीराधामाधवजी,श्रीलोकनाथ के राधाविनोदजी,श्रीगोकुलानन्द जी यवनों के अत्याचार से व्रज छोड़कर जैपुर में चले गये थे। अतः जयपुर में गौड़ीयों का अड्डा बन जाना स्वाभाविक था। उस समय गौड़ीयों के प्रभाव से असहनीय होकर कुछ पण्डित विपक्षी बन गये तथा गौड़ीयों के विरुद्ध नाना प्रकार के बात-वितण्डा उठाने लगे। शेष में बलदेवजी विद्याभूषण वहाँ जाकर विरोधियों को पराजित कर अपनी विजय पताका फहरायी। उसी समय गोविन्दजी की आज्ञा से ग वन्दभाष्य की रचना हुई। विरोधियों के द्वारा निष्कासित श्रीजी विग्रह पुनः गोविन्दजी के वातभाग में विराजमान हुई। विरोधी पण्डितों ने जयपुर महाराज को कुयुक्ति देकर यह समझाया था कि "श्रीराधिका तो ग्वालिनी है अतः गोबिन्दजी के बामभाग में रहना अवैदिक है"। महाराज ने उनके इस युक्ति में आकर श्रीजी को वहाँ से हटा कर अन्यत्र विराजमान करवाया था वह बात चक्रवर्त्तीजी के पास पहुँची। वे सुनकर हंसने लगे एव कहने लगे कि श्रीजी गोविन्दजी से मानिनी हो कर अन्यत्र रूठ गयीं। मान टूट जाने पर पुनः आजावेगी। विश्वनाथजी उस समय राधाकुंड में निवास करते थे, उन्होंने व्रज से बाहिर न जाने की प्रतिज्ञा ले ली थी।

जयपुर के गौड़ीय वैष्णवों के द्वारा विचार कराने के लिये आहुवाहित होने पर भी वार्द्धक्यता के कारण नही जा सके, परन्तु उन्होंने अपने छात्र बलदेव विद्याभूषणजी को शक्ति संचार कर विचारार्थ भेजा। उसी समय गलता स्थान में माध्वगौडेश्वर सम्प्रदाय का अन्य तीनों सम्प्रदाय के साथ आचार्य्य खम्भ गढ़ा। जो कि विरोधियों के द्वारा कुछ काल के लिये छिन्न भिन्न कर दिया गया था।

गीताश्रम गोरखपुर से प्रकाशित कल्याण पत्रिका वेदान्ताक पृ० ६६७ में (जिसके सम्पादक हनुमान प्रसाद पोद्दारजी हैं) विश्वनाथ चक्रवर्त्ती जी को निम्बार्क सम्प्रदाय अन्तर्गत होना बतलाया गया है। शायद सम्पादक की

अ वधानतासे यह हुआ है। हमने इस विषय में सम्पादक महोदयको एक पत्र दियाथा, उत्तरमें ५-१०-४६केपत्रमें उन्होंने बतलायाकि आगे जबकभी वेदान्तांक निकलेगा तब इसका संशोधन होगा। किसी अंक में किसी से संशोधन किया भी गया परन्तु उसमें अधिक अनवधानता दिखलायी गयी। दो चक्रवर्त्तीजी की सृष्टि हो गई। जिससे अत्यन्त कष्ट कल्पना हुई। हाल में—बलदेव अधिकारी राधाकान्त मन्दिर मथुरा ने श्रीयमुनास्तोत्रं नाम से एक पुस्तक का प्रकाशन किया है। उसके ५५ पृष्ठ पर विश्वनाथ चक्रवर्त्ती जी को निम्बार्की बतलाया गया है, जिसका लेखक बलदेव दास अधिकारी है। विषय "सम्प्रदाय के कुछ एक प्रसिद्ध आचार्य्य" है। जिसमें ७ महापुरुषों का उल्लेख है। ७ संख्या में विश्वनाथ चक्रबर्त्ती जी का उल्लेख है। यह एक अधिक भूल है। अगर भ्रम वशः लिखा गया तो लेखक तुरन्त ही अपना भ्रम का संशोधन कर दें। 'आपने भागवत पर टीका लिखी है" यह भी परिचय में कहा गया है।

श्रीमद्भागवत के टीकाकार विश्वनाथचक्रवर्त्तीजी महाप्रभुचैतन्यदेव के उपासक, गौड़ीय सम्प्रदाय के एक निष्ठ आचार्य्य, परकीयावादी, रागमार्ग के पथिक, शुद्ध ब्रज उपासक हैं। उधर निम्बार्कीय आचार्य्यगण द्वारिका ब्रज दोनों के उपासक, स्वकीयावादी, विधिमार्ग के पथिक, मिश्रित ब्रज उपासक हैं। गौड़ीयों का दार्शनिक सिद्धान्त "अचिन्त्य भेदाभेद" तथा निम्बार्कीयों का "स्वाभाविक भेदाभेद" वाद है। विद्वत्वर बलदेव उपाध्याय ने भारतीय दर्शनमें केवल "भेदाभेद" इस शब्द मात्रको देखकर गौड़ीयोंका भेदाभेद निम्बार्कीयों का आधार पर ऐसा लिख दिया है। परन्तु उन्होंने स्वाभाविक तथा अचिन्त्य शब्द का विरोधत्व अर्थात् दोनों मे आकाश पाताल भेद है उसे देखा नहीं। श्रीजीव ने स्वाभाविक भेदाभेद बाद का सर्ब सम्बादिनी में खण्डन किया है। गौड़ीय सम्प्रदाय के दार्शनिक भित्ति का स्थापक श्रेष्ठतम आचार्य्य श्रीजीव गोस्वामी जी हैं। खण्डित बचन कभी आधार रूप नहीं माना जाता है। आपने सर्ब सम्वादिनी में कहा है—"भेदाभेदवादे तु ब्रह्मण्येवोपाधि-संसर्गात्तत्प्रयुक्ता जीवगतदोषा ब्रह्मण्येव प्रादुःष्युरिति निर्दोषकल्याणगुणब्रह्मो-

पदेशाविरोधादेव परित्यक्ताः स्युः । स्वाभाविकभेदाभेदवादे तु ब्रह्मणः स्वत एव जीवभावाभ्युपगमात् दोषाश्च स्वाभाविका भवेयुरिति पूर्ववदेव दोषाः'' ॥

उपासना विषय पर प्रस्तुत रागवर्त्म चन्द्रिका में चक्रवर्त्ती जी कहते हैं कि

"तानि चार्च्चनभक्तावहंग्रहोपासनामुद्रा-न्यास-द्वारकाध्यान—रुक्मिण्यादि पूजादीन् आगमशास्त्रविहितान्यपि नैव कार्य्याणि'' पृष्ठ—१०

स्वयं रूपगोस्वामिजी ने भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थ में कहा है—

"रिरंसां सुष्ठु कुर्व्वन् यो विधिमार्गेण सेवते ।
केवलेनैव स तदा महिषीत्वमियात् पुरे'' ॥

"अहंग्रहोपासना—न्यास—मुद्रा—द्वारकाध्यान—महिष्यर्च्चनादीन्यप्यङ्गाणि न कर्त्तव्यानि'' । पृष्ठ—१६

"तत्र विधिमार्गेण राधाकृष्णयोर्भजने महावैकुण्ठगोलोके खलत्वविविक्त स्वकीयापरकीयाभावमैश्वर्यज्ञानं प्राप्नोति । मधुरभावलोभित्वे सति विधिमार्गेण भजने द्वारकायां श्रीराधासत्यभामयोरैक्यात् सत्यभामापरिकरत्वेन स्वकीयाभावमैश्वर्यज्ञानमिश्रमाधुर्य्यज्ञानं प्राप्नोति । रागमार्गेण भजने व्रजभूमौ श्रीराधापरिकरत्वेन परकीयाभावं शुद्धमाधुर्य्यज्ञानं प्राप्नोति'' । पृष्ठ—१६

गौड़ीय सम्प्रदाय की उपासनाभक्ति रागमार्ग को लेकर चलती है, जिसको स्वारसिकी उपासना कहते हैं । यह राग मन का धर्म्म है जो मानसिक सेवा रूप से केवल विशुद्ध सत्वमय मन में संचालित होता है ।

मन्त्रमयी उपासना तो विधिको लेकर चलती है । श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहा है—

"मने निज सिद्ध देह करिया भावन ।

वेदान्तस्यमन्तक में बलदेवजी ने कहा है—

"स च पुरुषोत्तमः क्वचिद्द्विभुजः क्वचिच्चतुर्भुजः क्वचिदष्टभुजश्च पठ्यते ।'' आनन्दाख्यसंहितायान्तु रूपत्रयमुक्तं "स्थूलमष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं चैव चतुर्भुजं । परन्तु द्विभुजं प्रोक्तं तस्मादेतत्त्रयं यजेत्'' । "तेषु चारुताधिक्यात् कृत्स्नव्यक्तेश्च द्विभुजस्य परत्वमुक्तं''

निम्बार्की आचार्यों ने द्वारका उपासना को ही प्राधान्यता दी है जो कि गौड़ीयों के रागमार्ग में अपकारक रूप माना जाता है ।

जैसा कि—प्राचार्य्य धुरन्धर पुरुषोत्तमाचार्य्य नें "अंगे तु बामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगां"

इस दशश्लोकी पद्य भाष्य में निर्णय दिया कि—

"तथा च रुक्मिणीसत्यभामाव्रजस्त्रीविशिष्टः श्री भगवान् पुरुषोत्तमो बासुदेवः साम्प्रदायिभिर्वैष्णवैः सदोपासनीयः। द्विभुजश्चतुर्भुजश्च स्वप्रीत्यनुरूपेणोभयबिधत्वात् तस्य नात्र तारतम्यभावः'।

आगे—"उभयविधस्यापि ध्यानस्य मोक्षहेतुत्वश्रवणादुभयस्य तुल्यफलत्वाद् ध्येयत्वाऽविशेष इति सांप्रदायराद्धान्तः"

इस प्रकार उपासनामार्ग में गौड़ीय-निम्बार्कीयों का आकाश पाताल भेद है। अतः उपाध्यायजी को गौड़ीय सम्प्रदाय को निम्बार्क सम्प्रदाय के आधारीभूत मान लेना निराधार ठहरता है।

अस्तु प्रस्तुत प्रकाशन में रागवर्त्म चन्द्रिका, उज्वलनीलमणिकिरण, वृहद्भागवतामृतकण ये चक्रवर्त्तीजी के तीनों ग्रन्थ एकही साथ मुद्रित किये जाते हैं। रागबर्त्म चन्द्रिका रागमार्ग का एक महान् उपादेय ग्रन्थ है, इसमें संक्षेपतः रागमार्ग का अद्भुत चित्रण किया गया है। इससे राग तत्व का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो जाता है। वृन्दाबन चारि सम्प्रदाय आश्रम से श्रीमान् बन्धुवर रामदास शास्त्री जी द्वारा चक्रवर्त्तीजी के भक्तिरसामृतसिन्धु, वृहद्भागवतामृतकण, माधुर्य्यकादम्बिनी ये तीन ग्रंथ एक ही साथ सानुबाद देवनागरीलिपी में पहले प्रकाशित हो चुके हैं। उसी उमय हमारी प्रवल इच्छा हुई थी कि रागमार्गचन्द्रिका सा अद्भुत ग्रन्थ का अवश्य देवाक्षरों में प्रकाशन होना चाहिये। अतः मैंने तुरन्त ही उसका अनुबाद कर लिया था। परन्तु जब कि उसका प्रकाशन समय नहीं आने पाया था। जयपुर गोजगढ़ निवासी, भक्त प्रबर, महात्प्रेमी श्रीमान् कुशलसिंहजी उस अनुवाद को प्रकाशित कराने के लिये जयपुर ले गये मैं भी वहुत आग्रह के साथ उनको मूल ग्रंथ का देवाक्षर में लिख कर उसके साथ वह अनुवाद दे दिया। उनकी अस्वस्थता के कारण उस कार्य्य से कुछ विलम्ब हो गया एवं मेरा भी उन दिनों में जयपुर नहीं

जाना हुआ। उधर उन महान् आत्मा का तिरोधान हो गया। आप नित्यधाम में पहुँच गये। अतः ग्रन्थ प्रकाशन में महान् वाधा पहुँच गयी। यह प्रभु की इच्छा मान कर चुप-चाप रहा। अब उसका समय आ गया। उक्त महान् आत्मा के सुयोग्य पुत्र, श्रीमान् मानधातासिंहजी ने उस अनुवाद सहित मूल ग्रंथ को हमारे पास भेज दिया साथ ही प्रकाशनार्थ धन की सहायता भी दे दी। जब कि ग्रंथ प्रेस में छप गया तब मेरा विचार हुआ कि इसके साथ उज्वलनीलमणि किरण का प्रकाशन हो जाना चाहिये जो कि भक्तभारत पत्रिका के सम्पादक रामदासशास्त्री के द्वारा प्रकाशित में वह कार्य्य बाकी रह गया। इसका अनुवाद करने में प्रवृत्त हुआ, परन्तु मैंने सोचा जब कि पूर्वाचार्य्य रसिकदासजी के द्वारा किये हुए उज्वलनीलमणिकिरण एवं बृहद्-भागबतामृतकण के पद्यवन्ध प्राचीन अनुबाद हमारे पास मौजूद है तो मैं स्वतन्त्र रूप से इसका अनुवाद क्यों करूँ। अतः अनुवाद करने में निवृत्त हुआ एवं रसिक दासजी के द्वारा किये हुए दोनों ग्रन्थोंके अनुवाद का प्रकाशनार्थ तत्पर हुआ। रसिकदासजी के दोनों अनुवाद बहुत सुन्दर एवं सरल है। आप ने बड़ी चाह के साथ सम्प्रदाय भेद भाव भूल कर दोनों का अनुवाद किया है। यह एक महाप्रभु की कृपा व उस समय रसिक शिरोमणि रसाचार्य्य महान् विद्वान महाप्रभु के परिकररूप में प्रकट श्री चक्रवर्त्तीजी की कृपा का अद्भुत परिचायक है। उन्होंने स्वयं ऐसा लिखा है। श्रीयुत रसिकदासजी श्रीलगोस्वामी हरिवंशजी के अनुगत व्रजभाषा के एक महान कवि माने जाते हैं। उन्होंने दोनों ग्रन्थों के प्रारम्भ में अपने उपजीव्य चरण श्री हरिवंश गोस्वामी जी का वन्दना रूप मंगलाचरण किया है। इधर चक्रवर्त्ती जी के ऊपर उन की अटूट श्रद्धा थी। उन्ही की कृपा-स्फूर्त्ति लेकर आपने इन दोनों ग्रन्थों का अनुवाद किया है। अस्तु रसिकसमाज इन ग्रन्थों का सरस आस्वादन करेगा।

———

॥ इति ॥

❀ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ❀

ग्रन्थरत्नत्रयम्

श्रीवृन्दाबनदासेन विरचितं ब्रह्माण्डपुराणोक्तश्रीकृष्ण-
शताष्टोत्तरस्तोत्रस्य श्रीगौतमीयतन्त्रोक्तश्री-
गोपालस्तवराजस्य च भाष्यम् ।

श्रीश्री नारायणभट्टविरचित-
श्रीलाडिलेयाष्टकेन
समलङ्कृतम्

प्रकाशकः—

बाबा कृष्णदासः

कुसुमसरोवरनिवासी (मथुरा)

श्रीविजयादशमी
सम्वत् २०१७

मूल्यम्
अर्द्धरूप्यकम्

॥ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ॥

अस्ति निखिलब्रह्माण्डेषु भगवच्छ्रीगोविन्ददेवस्य प्रशासयितृत्वम्। सर्वावतारकारणस्वरूपः यः समस्तसुखारामे परमधाम्नि रमोमाजभूतनाथादिवन्दितरजःकणिकासौभाग्ये गोलोकवैचित्र्ये श्रीवृन्दाबने योगपीठे स्वर्णरत्नमयसिंहासने कल्पबृक्षाणां सुशितलच्छाये इन्दिरादिमृग्यसौन्दर्य्यनखाञ्चलद्युतिभिः ब्रजकिशोरीघटाभिः नित्यतया विराजितः लीलारसास्वादं करोति स्म। सच्चिदानन्दघनः सः गोविन्दः कदाचित् वज्रनाभेण लीलया विग्रहरूपेण कदा वा श्रीरूपगोस्वामिना दर्शनानन्दप्रदानेन निजभक्तानां प्रतिपालयितुं तेनैव रूपेण प्रगटोऽभूत्। आगमनिगमकर्त्तारः महर्षयः यं गोविन्दं अष्टादशाक्षरदशाक्षरादिमन्त्रैरर्च्चयितुं विधिपरिदर्शयन्ति स्म, तन्नाममंत्रजपादिकं तत्प्राप्तेःमहदुपायः तन्मंत्रजपान्ते तच्छताष्टोतरनामपठनं तथा तत् स्तबस्य पाठं कृत्वा जपादिसमये ध्यानमितिद्वयं परमावश्यकं द्वयमेव मंत्रांगम्। ययोर्विना मन्त्रजपं निष्फलं स्यात्। गोपालमन्त्रविधायकं मूलग्रन्थं गौतमीयतन्त्रम्। तत्रैव ध्यानादिप्रसंगे गोपालस्तवराजोऽयं विद्यते, शताष्टोत्तरनामस्तोत्रं ब्रह्माण्डपुराणे च। गौरांगमहाप्रभुवीथिपथिकवरः निगमागमज्ञातचरः छन्दःकौस्तुभग्रन्थकारः श्रीराधादामोदरशिष्यप्रवरः गोविन्दभाष्यकर्त्तृ बलदेवविद्याभूषणपादस्य गुरुभ्राता श्रीबृन्दाबनदासोऽयं द्वयोर्बोधगम्यार्थं स्वसम्प्रदायानुसारिणा भाष्यं कृतवान्। 'लुक्कायितरूपेण स्थितौ यौ' भाष्यग्रन्थौ साम्प्रतं बृन्दाबनस्थराधारमणघेरानिवासिनः श्रीनीलमणिगोस्वामिनः सकाशात् स्वर्णरत्नयोर्बृष्टिरिव प्राप्तौ अभूताम्। गोपालस्तवराजभाष्यस्य लिपीरेका श्रीयमुनावल्लभगोस्वामिनः ग्रन्थागारतः प्राप्ता। शताष्टोत्तरभाष्यस्य गोपीनाथबागनिवासिना श्रीपुरुषोत्तमदासबाबाजीमहाराजेन पाण्डुलिपि कृत्वा प्रदत्तम्। प्रभुकृपातः द्वौ प्रकाश्यतां प्राप्तौ च। श्रीगोपालमन्त्रराजस्योपासकाः इमौ भाष्यौ परिशीलयन्तु एषा मम महती आशा।

कृष्णदासः

※ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ※

श्रीचैतन्यचन्द्रोदयभाषा

☆

कृष्णदास

(कुसुमसरोवरवाले)

※ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ※

प्रकाशितग्रन्थसंख्या–१४५

चैतन्यचन्द्रोदयभाषा

(हिन्दीभाषामें अनुदित)

कुसुमसरोवरनिवासी

कृष्णदास–कृता

अनुवादक

कृष्णदास

(कुसुमसरोवरवाले)

वर्त्तमाननिवास

(वृन्दावन)

सम्वत् २०२५

गौरपूर्णिमा

न्यौछावर २)५०

समर्पण-पत्र

परमाराध्य, उपजीव्यचरण श्रीश्रीराधारमणचरणदास (बड़े बाबाजी) महाशय के कृपापात्र, संकीर्त्तनरस-विह्वल, निरन्तर अष्टसात्त्विक भावावली से विभूषित, नित्यधामप्राप्त, श्रीश्रीगौरगुणावली से जगजन हितकारी, हमारे गुरुदेव, (श्रीश्रीरामदास बाबाजी महाराज) के पुनीत स्मरण में समर्पित ।

प्रकाशक—कृष्णदास, कुसुमसरोवरवाले, वर्तमान निवास-वृन्दावन उ० प्र०

मुद्रक—ब्रज विहारीलाल, शर्मा, बी. एस-सी., एल-एल बी. विद्यालय प्रेस, वृन्दावन ।

विशिष्ट-वक्तव्य

"चैतन्यचन्द्रोदय" नामक नाटक महाकवि कर्णपूर कृत संस्कृत का सुप्रसिद्ध नाटक है । संस्कृत के प्रेमियों तथा विशेष कृष्णभक्त जनता की यह चिराभिलषित आकांक्षा थी कि इस अनुपलब्ध अथवा दुष्प्राप्य ग्रन्थ की जन-जन के लिए सुन्दर-तया उपलब्धि हो, किन्तु यह अभिलाषा दुरूह थी, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से सटीक-मूल देवाक्षर में प्रकाशित होने के बाद इसका प्रकाशन बन्द हो गया ।

कृष्णानुरागी जनता कर्णपूर कृत महाप्रभु चैतन्य लीला का वर्णन पढ़ने को आतुर थी, इस अभाव की पूर्ति चैतन्य-महाप्रभु पादपद्म सेवापरायण, कृष्णभक्ति रस संलुप्त, हृद्यायन पूज्य श्रीबाबा कृष्णदास जी ने स्वास्थ्य की बाजी लगाकर की है । प्रसन्नता की बात यह है कि आपने उसका हिन्दी-अनुवाद सरल भाषा में कर दिया है जिससे इस ग्रन्थ की उपयोगिता और भी बढ़ गई है तथा हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि इस अनुवाद से इस नाटक का प्रचार और भी अधिक शीघ्रता के साथ होगा तथा श्रीचैतन्यमहाप्रभु के स्वरूप का वास्तविक, पारमार्थिक रूप सर्व सुलभ हो जायगा । कविवर कर्णपूर की संस्कृत-भाषा सम्बन्धी मधुरिमा का आस्वादन भी होगा । ऐसे सुन्दर प्रयास के लिए संस्कृत जगत् चिरकृतज्ञ रहेगा । आनन्दकन्द कृष्णाभिन्न गौरचन्द्र की भक्ति मन्दाकिनी में गोता लगाने वाली भक्त जनता आनन्द विभोर हो उठेगी ।

शुभेच्छु—

फाल्गुन शुक्ला एकादशी

हरिदत्तशास्त्री

सुघ्नोपघ्नाभिजनः वेदान्ताचार्य, काव्यमार्तण्ड, एकादस तीर्थ

दीनशरण जी का स्थान

(पत्थरपुरा, वृन्दाबन पर)

सम्मति :—

मैंने "श्रीचैतन्यचन्द्रोदयनाटक" का हिन्दीअनुवाद पढ़ा। इसके रचयिता श्रीकविकर्णपूर गोस्वामी अपने समय के जाज्वल्यमान भक्त-कवि रत्नों में थे। आपकी रचना से सर्व-साधारण भक्तवृन्द लाभान्वित नहीं हो सकता था इस विचार से व्रजभूमिवास-रसिक, वैष्णव-समाज के कण्ठहार, षड् गोस्वामि-कृत तथा अन्य आचार्यकृत अप्रकाशित-प्रकाशित अलब्ध रचना उद्धार में तत्पर श्रीकृष्णदास बाबा जी कृत हिन्दी-अनुवाद सर्वजन गम्य होने के कारण साहित्य मर्मज्ञ भक्तवृन्दों को लाभान्वित करेगा वहाँ हिन्दी साहित्य की अपूर्व सेवा द्वारा हिन्दी जगत के गौरव वृद्धि में सहायक होगा।

"चैतन्यचन्द्रोदय" १० अङ्कों में पूर्ण हुआ है यह उस कवि की कृति है जिसकी आद्यवाणी —

"श्रवसोः कुवलयमक्ष्णोरञ्जनमुरसि महेन्द्रमणिदाम।
वृन्दाबनरमणीनामखिलमण्डनं हरिर्जयति"॥
रूप में प्रस्फुटित हुई थी।

गौराङ्गस्वरूप एवं भक्ति का मुक्ति से श्रेष्ठत्व वर्णन आदि प्रसंगों को पढ़कर पाठक आत्मविभोर हो उठता है। अङ्कों के नाम-स्वानन्दावेश,सवावतारप्रदर्शन,दानविनोद,संन्यासपरिग्रह अद्वैतगृहविलास, सार्वभौम अनुग्रह, तीर्थाटन, प्रतापरुद्रअनुग्रह, मथुरागमन, महामहोत्सव हैं जो कथा भाग से सम्बन्धित हैं।

यह नाटक अपने में अद्वितीय है क्योंकि जहाँ नाटकीय तत्वों का सहज आनन्द उपलब्ध होता है वहाँ साथ ही साथ आध्यात्मिक तत्व का परिशीलन भी उपलब्ध होता है। ऐसी कृति के निःस्वार्थ प्रकाशन से बाबाजी की साहित्य-निष्ठा एवं साहित्यचिन्तनधारा दोनों की महनीयता सुस्पष्ट है।

श्रीबाबा जी के द्वारा शीघ्र ही अलङ्कारकौस्तुभ सटीक हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित हो रहा है। यह ग्रन्थ भी अलङ्कार सम्प्रदाय का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। रासरसेश्वरी श्रीराधा-रानी से विनीति प्रार्थना है कि बाबाजी को आरोग्य प्रदान करें जिससे वे उत्तरोतर हिन्दी साहित्य की सेवा में लगे रहें।

आशा है विद्वान तथा भक्तवृन्द इन कृतियों से अवश्य लाभान्वित होंगे।

डा० वासुदेवकृष्णचतुर्वेदी
नव्य व्याकरण-साहित्य-धर्मस्मारक, पुराणेतिहास-सांख्य-योग-वल्लभवेदान्ताचार्य एम. ए. सा. रत्न।
अध्यक्ष
संस्कृत विभाग
इन्स्टीट्यूट आफ ओरियण्टल फिलासफी
वृन्दावन।

गौरः कृष्ण इति स्वयं प्रतिफलन् पुण्यात्मनां मानसे
नीलाद्रौ नटतीह संप्रथयते वृन्दावनीयं रसम्।
आद्यः कोऽपि पुमान् नवोत्सुकवधूकृष्णानुरागे व्यथा
स्वादी चित्रमहो विचित्रमहहो चैतन्यलीलायितम्॥
(अंक १०।४२)

———

श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयताम्

श्री श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक की अवतरणिका

श्रीश्रीराधारमणदेवो जयति

"चैतन्यचन्द्रोदयस्य कविकर्णपूरकृतेः ।
हिन्दीभाषाख्या प्राग्भवा कृष्णदासप्रकाशिका ।।"

करुणावरुणालय प्रेमावतार भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य-महाप्रभु की असीम अनुकम्पा से तदीय लीलावर्णनात्मक "श्रीचैतन्यचन्द्रोदयनाटक" नामक अनुपम ग्रन्थ का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित होकर प्रेमी-जनता के समक्ष उपस्थित हो रहा है। मूल-ग्रन्थ संस्कृतभाषा में है तथा वंगाक्षर में वंगभाषानुवाद के साथ इस का प्रकाशन भी हो चुका है। हिन्दी-भाषा में अनुदित होकर प्रकाशित होना इसका यह प्रथम अवसर है।

मूल-ग्रन्थकार श्रीपाद कविकर्णपुर हैं आपका प्रकृत नाम परमानन्दसेन था। पुरी में जन्म होने के कारण महाप्रभु ने आपका नाम पुरीदास रखा था। आपके पिता शिवानन्दसेन जी महाप्रभु के अनन्य भक्त थे। वंगदेश काँचन-पल्ली में आपका निवास-स्थान रहा। १४०७ शकाब्द में श्रीमन् महाप्रभु का आविर्भाव है। पुरीदासजी का जन्मसमय १४४८ शकाब्द है। आपने १४९४ शकाब्द में इस नाटक की रचना की थी। इसके अतिरिक्त आप का रचित-श्रीगौरगणोद्देशदीपिका, आनन्दवृन्दाबनचम्पू, श्रीचैतन्यचरितामृतमहाकाव्य, कृष्णाह्निककौमुदी, आर्याशतक, अलङ्कारकौस्तुभ, चैतन्यसहस्रनामस्तोत्र, चैतन्यामृतव्याकरण, दशमस्कन्धस्य टीका आदि ग्रन्थ सुप्रसिद्ध है। हाल में द्वारभंगा-संस्कृत विश्व-

विद्यालय ने कविकर्णपूर के नाम से "पारिजातहरण" नामक महाकाव्य का प्रकाशन किया है। कर्णपूर जब ५ पांच वर्ष के थे तब उनके माता पिता उनको साथ लेकर श्रीनीलाचल में रथयात्रा उपलक्ष में पधारे थे। वहाँ पर जाकर महाप्रभु के श्रीचरणों में उन्हें लिटा दिया गया अर्थात् प्रभु के शरणापन्न कर दिये गये। तब प्रभु ने उस बालक से "हरि बोलो हरि बोलो" करके कहा परन्तु वह कुछ नहीं बोला। अनन्तर महाप्रभु श्रीस्वरूपगोस्वामी से कहने लगे—

स्वरूप ! हरिनाम यज्जगदघोषयं तेन किं,
न वाचयितुमप्यथाशकमिमं शिवानन्दजम्।
इति स्वपदलेहनैः शिशुमचीकरत् यः कविं,
विराजतु चिराय मे हृदि स गौरचन्द्रप्रभुः ।।

अर्थात्—हे स्वरूप ! मैंने इस जगत् में पशु-पक्षि-सिंह-व्याघ्र तक सब को हरिनाम कहलाया परन्तु उससे क्या हुआ ? आज इस शिवानन्द के पुत्र को हरिबुलवाने में असमर्थ हो रहा हूँ। ऐसा कह कर आपने अपना पदांगुष्ठ उसके मुख पर रखकर चटाया तथा उस माध्यम से कविता बनाने की शक्ति प्रदान की।

महाप्रभु के पदांगुष्ठ के लेहन से कवित्व-शक्ति प्राप्त कर उस समय उस बालकने एक अनुपम श्लोक की रचना की तथा सब को सुनाया भी। वह श्लोक इस प्रकार यथा—

"श्रवसोः कुवलयमक्ष्णोरञ्जनमुरसि महेन्द्रमणिदाम ।
वृन्दाबनरमणीनामखिलमण्डनं हरिर्जयति"

अर्थात्—कानों में नीलकमल रूप, नेत्रों में अञ्जन रूप तथा वक्षः स्थल पर महाइन्द्रनीलमणि-मालारूप इस प्रकार—

व्रजरमणियों के अखिल भूषण-स्वरूप श्रीहरि जय प्राप्त हो रहे हैं।

इस अनुपम श्लोक का श्रवण कर सब कोई आश्चर्य हुए तब से महाप्रभु ने बालक का नाम कविकर्णपूर रखा।

प्रस्तुत नाटक की रचना श्रीगौरांगलीला-वर्णन साङ्गोपाङ्ग रूप से करने के लिए ही हुई है। यह नाटकीयलक्षणाक्रांत होने के कारण उक्त लीला-समूह का पारम्पर्य यथावत् रक्षित न होने पर भी सिद्धान्त-विरोध व रस-परिपाटी आदि की मर्यादा-लंघनदोष कहीं पर भी नहीं हुआ है। वस्तुतः इस नाटक में अनेकानेक अपूर्व-सिद्धान्त निहित होने के कारण परम आदरणीय, नित्य-आलोचनीय तथा आस्वादनीय हीं हुआ है। यह ग्रन्थ दश अंकात्मक है। अंक समूह इस प्रकार है—स्वानन्दावेश नामक प्रथम अंक, सर्वावतार दर्शन नामक द्वितीय अंक, दानविनोद नाम तृतीय अंक, संन्यास परिग्रह नाम चतुर्थ अंक, अद्वैतगृह-विलास नाम पंचम अंक, सार्वभौम अनुग्रह नाम षष्ठ अंक, तीर्थाटन नाम सप्तम अंक, प्रतापरुद्र-अनुग्रह नाम अष्टम अंक, मथुरा-गमन नाम नवम अंक एवं महामहोत्सव नाम दशम अंक है।

प्रत्येक अंक का विषय-विवरण इस प्रकार है—

प्रथम अंक में—श्रीमन् महाप्रभु का अप्रकट के बाद उनका विरह से असहनीय होकर इस नाटक-प्रबन्ध सुनाने के लिये राजा-प्रतापरुद्र का आदेश, सूत्रधार-मुख से श्रीगौरांग-स्वरूप का वैशिष्ट्य प्रतिपादन, श्रीचैतन्यकल्पवृक्ष में श्रीराधा-कृष्ण नामक लीलामय विहङ्गमयुगल का अभिन्नरूप से भिन्नतया सन्निवेशहोना, श्रीचैतन्यप्रवर्त्तित उदारमत में सब लोगों की प्रवृत्ति न होने का कारण, भक्ति का ही मुक्ति से श्रेष्ठत्व, श्रीगौरांगावतार में कलि का कृतार्थहोना, इसके बाद कलि तथा अधर्म की कथोपकथन छल से अनेकानेक गौर-तत्त्वों का उद्घाटन, उनके अवतार के पहले ही लीला-सहायक श्री अद्वैत-नित्यानन्द आदि के रूप में शम्भु एवं बलदेव प्रभृति का आविर्भाव। श्रीगौरांग स्वयं भगवान् हैं इसका प्रमाण यह है कि इस प्रकार आप बालकलीला में ही आनन्द दान के द्वारा समस्त जनों के चित्त चमत्मकारकारक हुए। अधर्म के द्वारा कामजय की कथा, जगाइ-माधाई उद्धार में अहैतुकी कृपा का विस्तार, अभिषेक के माध्यम से ईश्वरावेश का सुन्दर रूप में वर्णन। इस विष्कम्भक के बाद भगवदावेश से महाप्रभु द्वारा 'श्रीवास' का पूर्व जीवन-वृत्तान्त कथन, मुरारी की ज्ञान-चर्च्चा में आक्षेप, शचीमाता का वैष्णवापराधक्षालन इत्यादि स्वानन्दावेश वर्णित है।

द्वितीयांक में—विराग के द्वारा शम-दम-मैत्री प्रभृति अपने जनों को न देखकर विपरीत धर्म-कर्म आचरण निरत चतुर्वर्ण, चतुर्थाश्रम में आक्षेप, तर्कादिपरायण तार्किक आदि में तथा पाशुपत आदि स्वस्वमत प्राधान्य वादियों में भक्ति न रहने के कारण निन्दा, केवल उदरभरण के लिए साधुवेश का अभिनय करने वाले तैर्थिकादि की निन्दा, गया-काशी आदि बहु तीर्थों में उन स्वजनों को ढूंढ़ना, अनन्तर न देखने से एवं समभावापन्न वैष्णवों का अवलोकन के लिये वैराग के द्वारा दारुण आर्त्त-नाद से रोदन करना, दैववाणी से नवद्वीप-गमन का इङ्गित, अनन्तर भक्ति देवी के साथ साक्षात्कार, दोनों का कथोपकथन, नवद्वीप धाम का उत्कर्ष वर्णन, महाप्रभु के वैभव-नाम-रूप-गुण-लीलाओं का सर्वोपरि रूप में स्थिरीकरण (उट्ंकित), दोनों का अपनी सेवा-सम्पादन के लिये नवद्वीप गमन, महाप्रभु का परिकरों के साथ श्रीवासादि के भवन में नृत्यविनोद,

मुरारिभवन में संकर्षण-रूप का आविर्भाव इस प्रकार से समस्त अवतारों की लीला-प्रकटन, नित्यानन्द के प्रति षड्भुज प्रकाश, कुष्टरोगी-ब्राह्मण का रोग निदान एवं अपराध-क्षालन का उपाय कथन इत्यादि सविशेष वर्णित है।

तृतीय अंक में—मैत्री तथा प्रेमभक्ति का सम्बन्ध निर्णय, आचार्यरत्न का मन्दिर में श्रीगौरांगदेव का राधा-भाव से नृत्य (गर्भांक में)। श्रीनारद जी के मुख से दानबिहारी की दानलीला अभिनय प्रस्तावना कथन, श्रीवृन्दावन में मुरली-ध्वनि करते हुए श्रीकृष्णचन्द्रवेशधारी अद्वैत प्रभु का रंगमञ्च में प्रवेश, गोपबालाएँ गोपीश्वर पूजन के लिये जा रही हैं यह सूचना देकर मधुमंगल की दानग्रहण करने के लिये श्रीकृष्ण के प्रति इङ्गित, प्रसंग से श्रीगौरांग स्वरूप में तीन मूर्तियों का (स्वयंहरि-सखि तथा श्रीराधिका) विद्यमान है इसका निर्णय, श्रीराधिका दर्शन से श्रीकृष्ण की उत्प्रेक्षा, पुष्पचयनरत श्रीराधा एवं श्रीकृष्णका वार्तालाप दान, उभय पक्ष में वादानुवाद, वाद में विवाद की चरम-सीमा होने पर श्रीनित्यानन्द प्रभु की योगमाया-भूमिका त्याग एवं सविशेषरस सुरस होता है इस विचार से नाट्य यवनिका का पतन।

चतुर्थांक में—गौरांगदेव का संन्यास लीला आविष्कार, भक्तगणों का हृदयभेदी आर्त्तनाद, गंगादास के मुख से श्रवण करके प्रभुके "श्रीकृष्णचैतन्य" नाम का शास्त्रीय याथार्थ्य निरूपण।

पंचमाङ्क में—शान्तिपुर में श्रीअद्वैतगृह में परिकर सह मिलनादि।

षष्टाङ्कमें—नीलाचल यात्रा, रेमुना में श्रीगोपीनाथविग्रह (क्षीरचोरा) दर्शन, कटक में साक्षिगोपाल-दर्शन, नीलाचल में प्रवेश, महाप्रभु की भगवत्ता सम्बन्ध में गोपीनाथाचार्य के साथ सार्व्वभौम के शिष्यों का विचार, जगन्नाथदेव दर्शन के बाद श्रीचैतन्यदेव का सार्वभौमगृह में गमन एवं भिक्षा, परदिन प्रभातकाल में बिना स्नान-दन्तधावन अवस्था में भी प्रभु के द्वारा सार्वभौम के लिये जगन्नाथ प्रसाद प्रदान तथा सार्वभौम का प्रसाद भोजन, भट्टाचार्य की अद्वैतवादमूलक-व्याख्या का परिहार तथा महाप्रभु की कृपा-प्राप्ति।

सप्तमाङ्क में—प्रभु की दक्षिणयात्रा, रामानन्दमिलन, बौद्धों का प्रभु के प्रति अनाचार प्रकटन, रामनाम जपपरायण ब्राह्मण का कृष्ण नाम ग्रहण का कारण, गीतापाठक का वृत्तान्त, नीलाचल में पुनरागमन।

अष्टमांक में—भक्तगण सह मिलन, परमानन्दपुरी तथा स्वरूप गोस्वामी का आगमन, गोविन्द की सेवा स्वीकार, ब्रह्मानन्दभारती-मिलन, प्रतापरुद्र के मिलन-प्रस्ताव में महाप्रभु की असम्मति, प्राणत्याग के लिये राजा की दृढ़प्रतिज्ञा, सार्वभौम की मन्त्रणा से आश्वासन गौड़ीय-भक्तगण का आगमन तथा भक्तसम्मेलन, प्रतापरुद्र के प्रति अलक्षित में कृपा।

नवमांक में—लोकानुग्रह प्रकार त्रय—(१) साक्षात् (२) परहृदय में प्रवेश, (३) आविर्भाव। नकुल ब्रह्मचारी में आवेश, नृसिहानन्द ब्रह्मचारी के द्वारा रचित अन्न-व्यञ्जनादि भोजन के लिए आविर्भाव। पुनः नीलाचल में प्रत्यागमन, वनपथ से मथुरागमन, प्रयाग में श्रीरूपमिलन तथा शिक्षादान, काशी में श्रीसनातनशिक्षा इत्यादि।

दशमांक में—नीलाचल में भक्त समागम, स्नानयात्रा-दर्शन, कीर्त्तनानन्द में मूर्च्छादि, गुण्डिचामार्जन, रथयात्रा, हेरा-पंचमी-प्रसंग, श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा दास्यादि समस्त रस के भक्तगण को वृन्दावनसम्बन्धी करने के लिये प्रस्ताव, श्रीअद्वैत की

प्रार्थना का स्वीकार। प्रार्थना-आपकी इच्छा से जन्मान्तर प्राप्ति होने पर भी हम सब जातिस्मर होकर भी आपकी इस लीला विचित्रता को सदा स्मरण करेंगे, कवि-गण कल्पपर्यन्त आपकी लीला का ही निरन्तर अभिनयकरें,साधु-सज्जनगण मात्सर्य विहीन होकर आपकी लीला का ही श्रवण दर्शन करें इत्यादि।

प्रस्तुत नाटक का हिन्दी-भाषा में अनुवाद कर प्रकाशन करने के लिये जिन सज्जन महानुभावोंने मुझे प्रोत्साहन किया एवं जिनके आग्रह प्रोत्साहन से मैं प्रभु को इस महती साहित्य-सेवा में समर्थ हो रहा हूँ उन बान्धवों की नामावलि निम्न है—

(१) बाबा दीनशरणदास महाराज, १३१ नं० पत्थरपुरा, वृन्दावन।
(२) बाबा श्रीहरिदास शास्त्री (न्यायाचार्य, नवतीर्थ, विद्यारत्न) कालीदह, वृन्दावन।
(३) श्रीयुक्त स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज, वृन्दावन।
(४) श्रीयुक्त दामोदरलाल गोस्वामी जी, राधारमण-घेरा, वृन्दावन।
(५) श्रीमान् लज्जाराम ललाम प्रिंसीपल, विद्यापीठ,वृन्दावन।
(६) श्रीमन् भाई जी हनुमानप्रसादजो पोद्दार (गोरखपुर)
(७) उदारमना सेठ जयदयाल जी डालमिया, नई दिल्ली तथा उनकी धर्म पत्नी उदारचेतृ श्रीमती कृष्णादेवी।
(८) महन्त श्रीदीनबन्धुदासजी,चतुःसम्प्रदायअखाड़ा (नासिक)।

जिन उपजीव्य चरणों की कृपा लव बल से इस भयङ्कर समय में भी इस ग्रन्थानुवाद तथा प्रकाशन में हम समर्थ हुए उन की नामावली क्रम से यह—

(१) श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभु, (२) श्रीश्रीजान्हवा-ठाकुरानी, (३) श्री वीरचन्द्रगोस्वामी, (४) श्रीरामचन्द्रगोस्वामी, (५) श्री-किशोरी-मोहन-गोस्वामी, (६) श्रीराधावल्लभ-गोस्वामी, (७) श्रीराधारमण-गोस्वामी, (८) श्रीराधामाधव-गोस्वामी, (९) श्रीसत्यानन्दगोस्वामी, (१०) श्रीराधिकाप्रसादगोस्वामी, (११) श्रीकृष्णचैतन्य-गोस्वामी, (१२) श्रीनित्यराधागोस्वामी, (१३) श्रीशंकरारण्यगोस्वामी, (१४) श्रीश्रीराधारमण चरणदासबाबाजीमहाराज (बड़े बाबाजी), (१५) नित्यधामगत, संकीर्त्तन प्रचारक,प्रेममूर्त्ति,गुरुदेव (श्रीश्रीरामदासबाबाजीमहाराज)।

(यह अनुवादक तथा प्रकाशक की—
गुरुपरम्परा)

★

आश्चर्यं यस्य कन्दो यतिमुकुटमणिर्माधवाख्यो मुनीन्द्रः
श्रीलाद्वैतप्ररोहस्त्रिभुवनविदितः स्कन्ध एवावधूतः।
श्रीमद्वक्रेश्वराद्या रसमयवपुषः स्कन्धशाखा स्वरूपा
विस्तारो भक्तियोगः कुसुममथ फलं प्रेम निष्कैतवं यत्॥
ब्रह्मानन्दश्च भित्त्वा विलसति शिखरं यस्य यत्रात्तनीड
राधा-कृष्णाख्यलीलामयखगमिथुनं भिन्नभावेन हीनम्।
यस्य च्छाया भवाध्वश्रमदमनकरी भक्तसंकल्पसिद्धे-
र्हेतुश्चैतन्यकल्पद्रुम इह भुवने कश्चन प्रादुरासीत्॥

(अंक१-१०।११)

श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ।

शुभसूचना

करुणावरुणालय भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य-महाप्रभु की असीम अनुकम्पा से तदीय चरित्र-वर्णनात्मक "श्रीचैतन्यचन्द्रोदयनाटक" नामक अनुपम-ग्रन्थ का सर्वप्रथम प्रकाशन हिन्दीभाषा में हुआ जो कि मानव-समाज के लिये अनवद्य आनन्ददायक वस्तु है ।

प्रस्तुत विषय का श्रेय बाबा श्रीकृष्णदास जी महाराज को ही है । आपने अपने जीवन का सम्पूर्ण समय स्वास्थ को न देखते हुये भी इसी कार्य के लिये अर्पण किया है । प्रस्तुत सुप्रसिद्ध-ग्रन्थ की रचना संस्कृतभाषा में हुई है और इस ग्रन्थ के रचयिता श्रीमन्महाप्रभु के कृपापात्र श्रीकविकर्णपूर-गोस्वामीचरण हैं । इसमें श्रीमन्महाप्रभु की नवद्वीपलीलादि सुसिद्धान्तपूर्ण एवं प्राञ्जल-रूप से वर्णित है। हिन्दीभाषाभाषी जनता के लिये प्रस्तुत ग्रन्थ श्रीमन्महाप्रभु के चरित्र की जानकारी में अनुपम सहायक होगा ।

बाबाजी महाराज की प्रबल लगन रूप चेष्टा से—अलङ्कार-कौस्तुभ, षट् सन्दर्भ, हरिभक्तिविलास, भाष्यपीठक, लघुभागवतामृत आदि ग्रन्थ आपके द्वारा हिन्दीभाषानुवाद सहित देवनागरी लिपि में प्रकाशन के लिये यन्त्रस्थ हैं ।

श्रीहरिदासशास्त्री
न्याय-वैशेषिक-शास्त्री, प्राचीन नव्य न्यायाचार्य,
काव्य-व्याकरण-सांख्य-मीमांसा-वेदान्त-
तर्क-तर्क-तर्क-वैष्णवदर्शनतीर्थ,
विद्यारत्न । कालीदह
वृन्दावन ।

गौरपूर्णिमा
सम्वत्-२०२६

महाप्रभोः स्वरूपम्

राधा कृष्णप्रणयविकृतिर्ह्लादिनी शक्तिरस्मा-
देकात्मानावपि भुवि पुरा देहभेदं गतौ तौ ।
चैतन्याख्यं प्रकटमधुना तद्द्वयं चैक्यमाप्तं
राधाभावद्युतिसुवलितं नौमि कृष्णस्वरूपम् ॥
श्रीराधायाः प्रणयमहिमा कीदृशो वानयैवा
स्वाद्यो येनाद्भुतमधुरिमा कीदृशो वा मदीयः ।
सौख्यं चास्या मदनुभवतः कीदृशं वेति लोभात्
तद्भावाढ्यः समजनि शचीगर्भसिन्धौ हरीन्दुः ॥

(श्रीचैतन्यचरितामृते)

गोपीनां कुचकुंकुमेन निचितं वासः किमस्यारुणं
निन्दत्काञ्चनकान्तिरासरसिकाश्लेषेण गौरं वपुः ।
तासां गाढ़कराभिबन्धनरसाद्रोमोद्गमो दृश्यते,
आश्चर्यं सखि पश्य लम्पटगुरोः सन्यासिवेशं क्षितौ ॥

(नरहरिपादानां शचिनन्दनाष्टके)

अपरिकलितपूर्वः कश्चमत्कारकारी
स्फुरति मम गरियानेष माधुर्य्यपूरः ।
अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य यं लुब्धचेताः
सरभसमुपभोक्तुं कामये राधिकेव ॥

(ललितमाधवे)

पूर्णप्रेमरसामृताब्धिलहरीलोलाङ्गगौरच्छटा-
कोट्याच्छादितविश्वमीश्वरविधिव्यासादिभिः संस्तुतम् ।

दुर्लक्ष्यां श्रुतिकोटिभिः प्रकटयन्मूर्त्तिं जगन्मोहिनी-
माश्चर्यं लवणोदरोधसि परं ब्रह्म स्वयं नृत्यति ॥
कोऽयं पट्टघटीविराजितकटीदेशः करे कङ्कणं
हारं वक्षसि कुण्डलं श्रवणयोर्विभ्रत्पदे नूपुरौ ।
उर्द्धीकृत्य निवद्धकुन्तलभरप्रोत्फुल्लमल्लीस्रगा-
पीड़ः क्रीड़ति गौरनागरवरो नृत्यन्निजैर्नामभिः ॥

(चैतन्यचन्द्रामृते)

स्वपीतच्छटाच्छादितक्ष्मादिसर्वं
श्रुतीनामतक्याद्भुतप्रेमचर्वम् ।
शिव-ब्रह्म-देवैः स्तुतं सर्ववृत्तं
तटे वारिधेर्नृत्यति ब्रह्म मूर्त्तम् ॥

(टीकाकारस्य)

निशिदिन एह सोच मेरे उर ।
कौन काज ब्रजराज कुंवर वर धारयो गौर कलेवर ॥
सुख को परम सदन वृन्दाबन परिजन निपट सनेह ।
सो सुख छाड़ि बसत नदियापुर समझि परत नहिं यह ॥
संकीर्त्तनरस सतत विलसत कौन माधुरी तामें ।
भोगी रस श्रृंगार सार तजि लोभी होय रहे यामें ॥
जाको भाव करी एसी सो सबतें अधिकाई ।
इह अनुमान मनोहर तन मन चरण कमल बलि जाई ॥
निज कृष्ण भये गौराङ्ग महाप्रभु भाव राधिका लीनोरी ।
दर्पण में अवलोकि निज मुख कुंवर मनोरथ कीनोरी ॥
एहि विधि आस्वाद करै आपनो सुख परहित में चित दीनोरी ।
श्रीगोपालदास प्रभु प्रगटे प्रेम सुधा रंग रस भीनोरी ॥

चैतन्यचन्द्रोदयभाषा

प्रथम अङ्क

वृंदावनवास छाड़ि नदिया-विहारी बने
वंशी धुनि छाड़ आज नाम धुनि भायो है ।
बांसुरी की ध्वनि सुनि ध्यान छाड़ि भागे शिव
नामरस पान को अद्वैतरूप पायो है ।
पार हूँ न पायो अज शुक सनकादि ऋषि
नाम संकीर्त्तन मधि रास को छकायो है ।
लोभी मकरंद मधुपान मद मत्त भयो
माया ग्रस्त जीवों को जो प्रेमरस प्यायो है ॥

श्रीश्रीगौरहरिचरणाश्रित—
मधुसूदनदास

अथ श्रीश्रीगौरहरिचरणाश्रित कुसुमसरोवरनिवासी कृष्णदासकृत—भाषानुवाद :—

* सवैया *

पद पंकज श्री गुरु पायौ जभी तव
गौर चरण अपनायौ है ।
अरु कृपा भई वृजबासिन की वृज
को रस दरशन पायो है ।
जय रूप-सनातन-भट्टयुग-रघु
दास-जीव रस गायो है ।
चैतन्यचन्द्रोदय मधि महारस
कृष्णदास मन भायौ है ॥

मांस-व्रण सह रोमवृन्द पुलकित।
शिमुलीर वृक्ष येन कराटके वेष्टित॥
एकेक दन्तेर कम्प देखि लागे भय।
लोके जाने दन्त सब खसिया पड़य॥
सर्वांगे प्रस्वेद छुटे ताते रक्तोद्गम।
ज ज ग ग ज ज ग ग गद्गदवचन॥
जलयंत्र धारा येन वहे अश्रुजल।
आश पाश लोक यत भिजिल सकल॥
देह कान्ति गौर कभु देखिये अरुण।
कभु कांति देखि येन मल्लिकापुष्प सम॥
कभु स्तम्भ कभु प्रभु भूमिते पडय।
शुष्क काष्ठ सम हस्त पद ना चलय॥
कभु भूमे पड़े कभु हय श्वास हीन।
याहा देखि भक्तगणेर हय प्राणक्षीण॥
कभु नेत्रे नासाय जल मुखे पड़े फेन।
अमृतेर धारा चन्द्र विम्बे वहे येन॥
(चै० च० मध्यलीला १३ परिच्छेद)

अपारं कस्यापि प्रणयिजनवृन्दस्य कुतुकी,
रसस्तोमं हृत्वा मधुरमुपभोक्तुं कमपि यः।
रुचिं स्वामावव्रे द्युतिमिह तदीयां प्रकटयन्-
स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु॥ (स्तवमालायाम्)

राधांग-शश्वदुपगूहनतस्तदाप्त-
धर्मद्वयेन तनुचित्तधृतेन देव।
गौरदयानिधिरभूरयि नन्दसूनो,
तन्मे मनोरथलतां सफलीकुरु त्वम्॥
(संकल्पकल्पद्रुमे)

❀ अथ पत्रीयम् ❀

स्वस्ति स्वस्ति महामहामहिमदिग्विख्यातकीर्तिप्रभा-
पूरस्नापितविश्व जितजितामित्रस्वमित्रायुषः।
कृष्णाख्येन्दोः महोमहेन्द्रमहसः यत्पंकजेषु ध्रुवं,
रुक्मिण्या विलुठंति कोटिगुणिताः शश्वत्प्रणामोर्म्मयः॥१॥
शिवमिह भगवन् भवतः प्रसादलेशोदयात् परिस्फुरति।
कार्यं चैतदवेहि स्वयमीश्वर! सावधानमनाः॥२॥
श्रुत्वा श्रुत्वा गुणगणकथाः कञ्जनाभ! त्वदीयाः,
प्रौढ़प्रेम्नां त्रिजगति सतां चेतसि प्रोतमूलाः।
रूपं तापत्रयभयहरं माङ्गल्यं च प्रसिद्धं
त्वय्याविष्टं न चलति मनागप्यधीरं मनो मे॥३॥
क्वाहं मानुष्यभिमतसतां विध्यधीनप्रसिध्यत्,
कायः प्राणेन्द्रियगणमनो वाच्यवस्थानुवृत्तिः।
क्व श्रीनाथ त्वमुरुमहिमानन्तपूरप्रताप-
श्रीमन्नारायण इह विधेरप्यधाशानुभावः॥४॥
का पुष्पेषु प्रतिकृतिवयो वेषभूभृत्कुमारी,
विद्यावेषद्रविणविनयश्रीवयोभिः स्वयोग्यम्।
त्वामंशेन प्रकटितनृपाकारमाश्रित्य लीला-
मिच्छत्यन्तर्जगति न पतिं पुण्यवत्यादिविष्णो!॥५॥
तस्माच्चेतस्यहनि भवतः प्रेम संपत्स्यच योगे,
साक्षाद्द्रष्टव्यतनुसुजने पुण्यपुष्पोरुदाम्ना।
त्वामुद्दामश्रियमतितरां प्रेष्टमिष्टं वृणेऽहं,
त्वं चाराध्य स्वहृदि सुतरां मां विजानीहि जायाम्॥६॥

तत्रामुद्वाहाभ्युदयविधिना वृष्णीवीर त्वदर्हां
चैद्योऽह्द्य घटयितुमहं नैव मन्ये कदाचित् ।
को वा सर्वागमसमुदितं पूज्यमन्यं सुविद्वान्,
भागं नागान्तक समुचितं वायसाय प्रदद्यात् ॥७॥
पूर्वं किंचित्सुकृतमसकृच्छीलितं चेत्त्वदर्थे,
दानध्यानाध्ययनविधिना देवगुर्व्वर्च्चनाख्यम् ।
तत्प्राणेश स्वयमिहमहन्नेत्य मामुद्वह त्वं,
निर्द्धूताशाः सपदि शिशुपालादयः सन्तु भूपाः ॥८॥
अत्राहूय क्षितिपतिगणैश्चेदिपालस्य पुत्रं,
काले कस्मिन्नपि मम पिता दास्यते माममुष्मिन् ।
तत्पूर्वेद्युः प्रविशतु भवान् मद्विवाहोत्सवस्य,
प्रख्याताभिर्नरपतिपुरं सेनिकाभिः परीतम् ॥९॥
तत्रायुष्मन्नृपपतिपुरं कामपालादिभिः स्वैः,
जित्वा युद्धे यदुवर निजं वीर्य्यमाकीर्य्य शुल्कम् ।
राजन्यानां जगति विदितो राक्षसो यो विवाह-
स्तेन त्वय्यस्खलितमनसां मां कुरुष्व स्वकीयाम् ॥१०॥
वन्धूनन्तः पुरपरिसरस्थान च हत्वा कथं वा,
नेष्योमि त्वां नरपतिपुरादित्थमाशंकसे चेत् ।
माया मूलावतरणचतुर्विंशति श्रीनिकेत-
प्रायस्तत्र प्रियतम भवान्नेव ते त्यभ्युपायम् ॥११॥
यद्वा तद्वासरशुभसतां पूर्वं पूर्वाह्निकीलीं,
देवीमम्बामथ निजकुलाचारधर्मेण यायाम् ।
तस्माद्वीरांगणभुवि समागत्य शक्त्या हर त्वं,
मामुद्वोढुं नृपवर वहिर्भूभृदंतः पुरस्य ॥१२॥
इत्थं शक्रस्मरहरविरिञ्च्यादिवन्द्यांघ्रियुग्म,
श्रीमच्छ्रीमन्मुखनलिन मे सुप्रसादं विदध्याः ।

नो चेत्कुर्य्यां व्रतमनशनं प्राणहानावशानाद्,
येनावश्यं भवसि सुलभः कृष्ण जन्मान्तरेऽपि ॥१३॥
इत्युक्तिर्युक्तिभाजः क्षितिपतिदुहितुर्व्यक्तविन्यस्तवर्णाः
कर्णावापूर्य्य सम्यक् सुखमखिलगुरोस्तस्थूपीराशु विभ्रन् ।
पत्रं कृष्णस्य हस्तोपरिविलसत्यंगुलीयांशुजाल-
र्विप्रः सप्रेमचेताः स्फुटमिव शिवसंगमस्यैव चक्रे ॥१४॥
सोप्यन्तर्वांछितार्थप्रतिकृतिलिखनं पत्रमालोक्य शश्व-
द्विष्वक्संजातरोमोद्गमकमलतनुः श्रीपरिष्वज्यमानः ।
स्नेहेनासीमशोभाभरगुरुपरितो मेदुरस्निग्धदृष्टिः,
सानन्दं नन्दसूनुः स्मरनिभृतमनास्तां सतृष्णां विदध्यौ ॥१५॥

इति श्रीमदीश्वरपुरीपादविरचितायां
श्रीकृष्णपत्री समाप्ता

देवकीनन्दनाष्टकम्

मृगमदमदभृंगोन्निद्रनीलाम्बुजाली-
नवजलधरधाम-श्यामलैकस्वरूपम् ।
अतिचपलविशालनीलनेत्राम्बुजाभं
मृदुमधुरचरित्रं देवकीपुत्रमीड़े ॥१॥
दशनमणिरुचिभिः स्निग्धविम्बाधरान्तं
शशधरकरशुद्धचद्बन्धुजीवाभिरामम् ।
दधतमतिमनोज्ञस्मेरवक्त्रारविन्दं
प्रमदमदनवेशं देवकीपुत्रमीड़े ॥२॥
स्वकरनलिनलक्ष्मी साक्षिवंशीनिनादा-
द्रुतहृदयशयाभिर्गोपिकाभिः परीतम् ।

निजनिशलयनिदानन्दिपादाम्बुजन्म
द्वयमयनयनाभिदं देवकीपुत्रमीडे ॥३॥
अनुगतिगतिदानस्थूलशाखोटवाटी-
कृतसुरतरुवीथीवीतसुत्रामलोकम् ।
मदकलगजराजस्मारिलीलाविहारं
करकलितकदम्बं देवकीपुत्रमीडे ॥४॥
हृदिगतभृगुकन्याधन्यविम्बाधरोष्ठ-
स्मरमदपरिपीतस्मेरविम्बाधरोष्ठम् ।
निजमुखमनुविम्बं विभ्रतं कौस्तुभाख्यं
मणिमुरसि वहन्तं देवकीपुत्रमीडे ॥५॥
मदगुरुनिविरीपन्स्मेरकाञ्चीकलापा-
प्रकटकपिशवासप्रोल्लसच्छ्रिनितम्बम् ।
मलयपवनलीलाखेलनान्दोलि-भाल-
स्खलचलदलकान्तं देवकीपुत्रमीडे ॥६॥
बृहदुरसि निजोरः साक्षिलक्ष्मीकटाक्षै
रिवकुवलयमालमाभृनामादधानम् ।
मदमदनधनुः श्रीविभ्रमद्भ्रू दृगञ्ज-
स्मरशरमभिलोलं देवकीपुत्रमीडे ॥७॥
कचभुवि नववर्हापीड़मापीड़यन्तं
तदुपरि नवनीपानीकमुन्नं सयन्तम ।
तदुपरि नवगुञ्जापुञ्जमिन्दीवरैकं
तदुपरि कलयन्तं देवकीपुत्रमीडे ॥८॥
देवकीपुत्रलीलाढ्यं देवकीपुत्रबन्धुना ।
ईश्वरेणाष्टकं सृष्टं पठतां प्रेमभक्तिदम् ॥९॥

(३०० वत्सर हस्तलिखित अप्रकाशित कापी से)

श्रीशचीनन्दनविलक्षण-चतुर्दशकम्

मुमोच विषयस्पृहां व्रजविलासिनीनागरः
करोति चरितं मुनेर्मुनिविचिन्त्यपादाम्बुजः।
तटे लवणवारिधेः स्वपिति दुग्धसिन्धुं जहौ
विलक्षण-विचेष्टितो विहरते शचीनन्दनः ॥१॥

अहो ! व्रजविहारी श्रीहरि आज विलक्षण चेष्टाभय में शचीनन्दन गौरहरि स्वरूप से विहार कर रहे हैं। आपने व्रज-रमणियों के नागर होकर भी विषयस्पृहा का त्याग किया है, मुनिगण चिन्तनीय चरण-कमल वाले होकर भी आज मुनि-चरित्र का आचरण कर रहे हैं और क्षीरसागर का त्याग कर लवणसमुद्र के तट पर विलास कर रहे हैं ॥१॥

करोति हरिकीर्त्तनं भुवनकीर्त्तनीयः स्वयं
स्वयं नटति कौतुकान्नटयति त्रिलोकीमपि ।
जहौ गरुड़वाहनं भ्रमति मुक्तयानः क्षितौ
विलक्षणविचेष्टितो विहरते शचीनन्दनः ॥२॥

स्वयं भुवन-कीर्त्तनीय होकर भी हरिसंकीर्त्तन कर रहे हैं, स्वयं कौतुकवश नृत्य कर रहे हैं तथा त्रिजगत् के जीवों को संकीर्त्तन में नचा रहे हैं, आप अपने वाहन गरुड़ का त्याग कर मुक्तयान से अर्थात् पदव्रज में पृथ्वी पर विचरण कर रहे हैं,

॥ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ॥

श्री चैतन्यभागवत

मूल बंगला लिपि के रचनाकार—

श्रीलवृन्दावनदास ठाकुर महाशय

अर्थ सहायक—

स्वर्गीय लाला श्रीराधाकृष्ण जी अग्रवाल, ग्राम-भूरेका तहसील माट (मथुरा) की धर्मपत्नी श्रीमती नारायणीदेवी ने अपने गुरुदेव भगवान् माध्वगौड़ेश्वर संप्रदायाचार्य, विद्यावारिधि, संकीर्तनप्रचारक, महामण्डलेश्वर, सख्यरस उपासक श्रील श्री १००८ श्री स्वामी कृष्णानन्ददास जी महाराज की पावन-स्मृति में प्रकाशित किया।

सम्पादक व प्रकाशक—

बाबा कृष्णदास जी

मूल्य
नित्य पाठ की प्रतिज्ञा

श्रीचैतन्यभागवत ग्रन्थ के रचयिता

श्रील ठाकुर वृन्दावनदास

जिनकी अमृतमयी लेखनी से निःसृत भगवान् श्रीगौरांग महाप्रभु के चरित्र की अमृतधारा जगत् विशेष करके वंगभूमि के पापी, तापी जीवों की ज्वाला यन्त्रणा को निर्वापित करके महान् आनन्दसागर डुबा देती है, उन श्रीलठाकुर वृन्दावनदास महोदय को वैष्णव समाज कौन नहीं जानता है ? वंगदेश के हित्य कानन के कलकंठ कोकिल स्वरूप, चैतन्यभागवत के रचयिता, आदिकवि, श्रीव्यासावतार, श्री-प्रभुवर नित्यानन्द के प्रेमोन्मत्त, श्रीवृन्दावनदास ठाकुर गौड़ीय वैष्णव समाज में विशेष परिचित हैं।

इस चैतन्य भागवत के पदों से जाना जाता है कि श्रीवासपण्डित तथा उनके भ्राता श्रीरामपंडित हट्ट (पूर्व वंग में) से किसी समय विद्याध्ययन अथवा गङ्गातटवास के लिये श्रीधाम नवद्वीप में आकर वास करने लगे थे। आजकल वाराणसी क्षेत्र जिस प्रकार संस्कृत साहित्य के पठन-पाठन में भारतवर्ष में ान केन्द्र बना हुआ है, ठीक उसी प्रकार उस समय श्रीधाम नवद्वीप समस्त भारतवर्ष के विद्या का प्रधान द्र था। पश्चात् श्रीवासपण्डित के श्रीपति तथा श्रीनिधि नामक दो सहोदर भी श्रीहट्ट छोड़कर नवद्वीप में ने भ्राता के साथ निवास करने लगे। श्रीवास एवं श्रीराम दोनों बड़े भारी पण्डित थे। दोनों ने महाप्रभु द्वारा प्रचारित वैष्णव धर्म्म का आचार्य्यत्व लाभ किया। महाप्रभु के साथ श्रीवासपण्डित की समग्र भूमि में बड़ी मान्यता है। पञ्चतत्वस्वरूप में एक श्रीवासपण्डित भी हैं। आज भी वङ्गदेश में वैष्णव माज के द्वारा घर-घर में पञ्चतत्वस्वरूप की पूजा प्रचलित है। आप श्रीदेवर्षि मुनिराज नारदजी के अवतार ाने जाते हैं, उन श्रीवासपण्डित को एक भ्रातृकन्या थी, जिसका नाम नारायणी था। वह नितान्त वाल्य वस्था से ही श्रीहट्ट त्याग कर नवद्वीप में श्रीवासपण्डित के घर पर एक साथ रहने लगी। नारायणी एक ामान्य नारी नहीं थी, वह गौरांगदेव के परिकर में एक अग्रगन्या के रूप में मानी जाती थी। श्रीकवि-र्णपुर महोदय ने श्रीगौरगणोद्देशदीपिका ग्रन्थ में महाप्रभु लीला के परिकरों के पूर्वावतार का परिचय ते हुए नारायणीदेवी के पूर्व जन्म का इस प्रकार निर्णय दिया है कि--

"अम्बिकायाः स्वसा यासीन्नाम्ना श्रीलकिलिम्बिका। कृष्णोच्छिष्टं प्रभुञ्जाना सेयं नारायणी मता ।।"

अर्थात् ब्रजलीला में अम्बिका की भगिनी किलिम्बिका प्रसिद्धा थीं, वह सर्वदा श्रीकृष्ण के धरामृत का भोजन करती थी। अब गौरांगलीला में वह नारायनी मानी गई है एवं पूर्वलीला की भाँति लीला में भी महाप्रभु के अधरामृत का भोजन किया करती थी। इस ग्रन्थ में स्वयं वृन्दावनदास ठाकुर लिखा है कि--

सर्वभूत अन्तर्यामी श्री गौरांग चाँद। आज्ञा कैल नारायणि ! कृष्ण वलि काँद ॥
चारिवत्सरेर सेइ उन्मत्त चरित। हा कृष्ण वलिया मात्र पडिल भूमित ॥
अङ्ग वहि पड़े धारा पृथिवीर तले। परिपूर्ण हैल स्थल नयनेर जले ॥

अर्थात् सर्वभूत में निवास करने वाले अन्तर्यामी प्रभु ने नारायणी को आज्ञा की कि नारायणि ! कृष्ण कहकर रोओ, उस समय उसकी अवस्था चार वर्ष की थी। वह बालिका "हा कृष्ण" कहती हुई उन्मत्त होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी, उसके नयनों से अश्रुधाराएँ बहने लगीं जो समस्त शरीर को भिगाकर पृथ्वी पर बहने लगी। वह स्थल नयन जल से परिपूर्ण हो गया।

वृन्दावनदास ठाकुर ने इस ग्रन्थ में और भी लिखा है कि—

भोजनेर अवशेष जतेक आछिल। नारायणी पुण्यवती ताहा से पाइल॥
श्रीवासेर भ्रातृ सुता बालिका अज्ञान। ताहारे भोजन शेष प्रभु करे दान॥

महाप्रभु ने महाप्रकाश के उपरान्त नारायणी को जब अपना अधरामृत प्रसाद अर्पण किया उस समय वह चार वर्ष की बालिका है। उस समय महाप्रभु यौवनलीला में प्रवृत्त थे तथा उनकी अवस्था प्रायः अठारह वर्ष की होगी। महाप्रभु ने जब सन्यास लिया तब उस समय नारायणी की अवस्था दस वर्ष की होगी। नारायणी का किस समय कौन के साथ किस ग्राम में विवाह हुआ इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है, महाप्रभु के सन्यास के पश्चात् नारायणी का विवाह हुआ था, ऐसा स्वाभाविक अनुमान किया जाता है। महाप्रभु के सन्यास लेने के पश्चात् श्रीवास तथा श्रीराम दोनों कुमारहट्ट में जाकर रहने लगे एवं श्रीपति, श्रीनिधि ने नवद्वीप में ही निवास किया। श्रीजान्हवा ठकुरानी जिस समय ठाकुर नरोत्तम महाशय के द्वारा निमन्त्रित होकर नवद्वीप से खेतरि महोत्सव में उपस्थित हुईं थी, उस समय सङ्ग में श्रीपति-श्रीनिधि दोनों भ्राता उनके साथ गये थे। अनुमान किया जाता है कि श्रीवासपण्डित के नवद्वीप छोड़ने के समय नारायणी के विवाह का समय आ गया था एवं उसका मामगाछी के निकटवर्त्ती किसी ग्राम में विवाह हुआ था। यह मामगाछी ग्राम नवद्वीप के अन्तर्गत, गङ्गा के पश्चिम तट पर मौजूद है। भक्तिरत्नाकर में इसे मोद द्रुमद्वीप नाम करके कहा गया है, उस ग्राम में बासुदेवदत्त की एक विग्रह सेवा है। कहा जाता है नारायणी देवी ने उस सेवा का भार ग्रहण किया था तथा उस ग्राम में बहुत दिन निवास करने लगी थी। आपाततः वह सेवा नारायणी नाम से चली। जब नारायणी गर्भवती रही, उस समय वह विधवा हो गई तथा आपने सुविधा के लिये बासुदेवदत्त की ठाकुरवाड़ी में प्रबन्ध कार्य में नियुक्ता हुईं। बासुदेवदत्त का निवास स्थान काँचडापाड़ा था, जो शिवानन्द की घर के समीप है, प्रभु की नवद्वीप लीला के समय उनके समीप रहने के लिये बासुदेवदत्त ने मामगाछी ग्राम में उस सेवा को प्रकट किया था। पश्चात् नवद्वीप में रहने की सुविधा न देखकर श्रीवासपण्डित के साथ बन्धुता होने के कारण उनकी भ्रातृतनया नारायणी को सेवा का भार समर्पण किया।

उन श्रीनारायणीदेवी के पवित्र गर्भ में इस चैतन्य भागवत के रचयिता श्रीलवृन्दावनदास ठाकुर ने जन्म ग्रहण किया था। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी चैतन्यचरितामृत में कहा है कि--

नारायणी चैतन्येर उच्छिष्टभाजन। तार गर्भे जन्मिला श्रीदास वृन्दावन॥

मामगाछी में श्रीनारायणी देवी का सेवापाट प्रत्यक्ष विराजमान है, वहाँ से पाँच छः कोस दूर में पश्चिम देनुड ग्राम में वृन्दावनदासजी की पाटवाडी मौजूद है।

बाल्यकाल में वृन्दावनदास ठाकुर उनकी जननी नारायणी के साथ मामगाछी के ठाकुरवाडी में अवस्थान करते थे। वहाँ ही आपने प्रारम्भिक विद्या के पठन पाठन के उपरान्त संस्कृत-विद्या का अध्ययन किया। मामगाछी नवद्वीप का अंश विशेष होने के कारण वहाँ संस्कृतविद्या का पठन-पाठन अत्यधिक रूप में होता था तथा वहाँ बड़े-बड़े विद्वान ब्राह्मण निवास करते थे। यह ग्राम विशारदभट्टाचार्य्य एवं देवानन्द पण्डितादि के निवास ग्राम के निकट है।

वृन्दावनदासजी जब विद्वान हुए उस समय महाप्रभु के अप्रकट होने का समय उपस्थित हो गया था। महाप्रभु के सन्यास लेने के तीन-चार वष के पीछे वृन्दावनदास ठाकुर का जन्म है अतएव महाप्रभु के

लीलासंवरण के समय उनकी अवस्था बीस वर्ष से अधिक नहीं थी। उस समय महाप्रभु के आदेशानुसार श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु गौडदेश में प्रेम प्रचारकार्य में तत्पर थे। इस ग्रन्थ से जाना जाता है कि श्री नित्यानन्दप्रभु ने महाप्रभु के निकट नीलाचल से विदा होकर अपने पार्षदगण के साथ पहले पानीहाटी ग्राम में पश्चात् सप्तग्राम में कुछ दिन प्रेम प्रचार करके उपरान्त नवद्वीप में आकर हिरण्यगोवर्द्धन के गृह में निवास करने लगे। वहाँ निवास करते हुए नाना स्थान में प्रेम प्रचार किया तथा शचीमाता को आश्वासन दिया। उनका प्रचार कार्य्य इस प्रकार वर्णित है—

तवे नित्यानन्द सर्व पार्षदेर संगे। प्रति ग्रामे ग्रामे भ्रमे कीर्त्तनेर रंगे ॥
खाना चौता बडगाछि आर दोगाछिया। गंगार ओपार कभु जायेन कुलिया ॥
विशेष सुकृति अति बडगाछि ग्राम। नित्यानन्द स्वरूपेर विहारेर स्थान ॥

श्रीधाम नवद्वीप में रहकर नित्यानन्दप्रभु के प्रत्येक ग्राम में मनोहर प्रेम प्रचार के शेष दिनों में कविवर वृन्दाबनदास ने उनका संग लाभ किया। वह भी अधिक दिवस नहीं रहा क्यों कि महाप्रभु के लीलीसंवरण के अल्पदिन उपरान्त श्रीनित्यानन्दप्रभु एवं श्रीअद्वैतप्रभु दोनों अन्तर्द्धान होगये। वृन्दाबनदासजी नित्यानन्दप्रभु के अन्तिम कृपापात्र रहे।

"सर्वशेष भृत्य तान वृन्दाबनदास। अवशेष पात्र नारायणी गर्भजात ॥"

(चैतन्यभागवत पञ्चम अध्याय शेष में)

नित्यानन्दप्रभु के अन्तर्द्धान के पश्चात् ठाकुर वृन्दाबनदास बहुत दिनों तक पृथ्वी पर प्रकट रहे। क्यों कि वे जान्हवागोस्वामिनी के साथ निमन्त्रित होकर ठाकुर नरोत्तम महाशय के द्वारा आयोजित खेतरी उत्सव में गये थे।

वृन्दावनदासठाकुर सर्वशास्त्र पण्डित एवं महान् कविश्रेष्ठ थे यह उनके द्वारा विरचित इस चैतन्यभागवत से जाना जाता है। कविराजगोस्वामी ने अपने चैतन्यचरितामृत ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर लिखा है कि —

कृष्णलीला भागवते कहे वेदव्यास। चैतन्यलीलार व्यास वृन्दावनदास ॥
वृन्दावनदास कैल चैतन्यमंगल। जाहार श्रवणे नाशे सर्व अमंगल ॥
चैतन्य निताइर याते जानिये महिमा। जाते जानि कृष्णभक्ति सिद्धान्तेर सीमा ॥
भागवते जत भक्ति सिद्धान्तेर सार। लिखियाछेन इहा जानि करिया उद्गार ॥
मनुष्य रचिते नारे ऐछे ग्रन्थ धन्य। वृन्दावनदास मुखे वक्ता श्रीचैतन्य ॥
वृन्दावनदास पदे कोटि नमस्कार। ऐछे ग्रन्थ करि तिंहो तारिला संसार ॥

अन्यत्र भी कहा है—

वृन्दावनदासेर पादपद्म करि ध्यान। ताँर आज्ञा लैया लिखि जाहाते कल्याण ॥
चैतन्य लीलाते व्यास वृन्दावनदास। ताँर कृपा विने अन्ये ना हय प्रकाश ॥

अन्यत्र लिखा है—

वृन्दावनदास प्रथम जे लीला बलिल। सेइ सब लीलार आमि सूत्रपात कैल ॥
ताँर त्यक्त अवशेष संक्षेपे कहिल। लीलार वाहुल्ये ग्रन्थ तथापि वाढ़िल ॥
नित्यानन्द कृपापात्र वृन्दावनदास। चैतन्य लीलाय तेंहो हय आदिव्यास ॥

कविकर्णपूर महोदय ने अपने "गौरगणोद्देशदीपिका" में इनके वारे में ऐसा कहा है—

वेदव्यासो य एवासीद्दासवृन्दावनोऽधुना । सखा यः कुसुमापीडः कार्यतस्तं समाविशत् ॥
अर्थात् जो द्वापर में वेदव्यास थे वे गौरांगलीला में वृन्दाबनदास होकर प्रकट हुए एवं ब्रज में जो कुसुमापीड नामक श्रीकृष्ण के सखा रहे अब वे ही गौरांगलीला में किसी कार्य वश वृन्दाबनदासजी में आविष्ट हुए हैं। वृन्दाबनदास ठाकुर ने पहले अपने चैतन्यभागवत नामक इस ग्रन्थ का चैतन्यमंगल नाम रक्खा था, कविराजगोस्वामी के चैतन्यचरितामृत की रचना के समय वह चैतन्यमंगल नाम से प्रसिद्ध था, पहले चैतन्यमंगल में उस समय के प्रचलित अन्यान्य कवियों के अन्यान्य गीतिकाव्य के गीतों का समावेश था। पश्चात् वृन्दाबन के पण्डित वैष्णव समाज ने इस ग्रन्थ को अपने पाठ के योग्य बनाने के लिये उन सब अन्यान्य गीति काव्यों को इससे पृथक कर दिया तथा इसको चैतन्यभागवत नाम से प्रसिद्ध किया। ऐसा भी कहा जाता है कि लोचनदासठाकुर के द्वारा विरचित "चैतन्यमंगल" को देखकर स्वयं वृन्दाबनदासठाकुर ने अपने चैतन्यमंगल ग्रन्थ के नाम को परिवर्त्तन कर चैतन्यभागवत नाम रखा। "चैतन्यभागवत" के शेषांश की रचना के समय वे नित्यानन्द प्रभु में इस प्रकार भावावेश में डूबे हुए थे कि–महाप्रभु की लीला अधिक न लिख सकें वरं श्रीनित्यानन्द प्रभु की लीला महिमा वर्णन में ही अत्यधिक यत्नशील हुए। नके विवाह होने का किसी ग्रन्थ में उल्लेख नहीं है। इस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे ठाकुर नरोत्तमदासजी की भाँति आकुमार ब्रह्मचारी थे तथा अल्पवयस से वे "मामुगाछी" में निवास करते थे। वहाँ सारंगमुरारी के संग वल से उनको नित्यानन्द प्रभु के संग का सुख मिला तथा उनके कृपापात्र बने थे। कुछ दिन नित्यानन्द प्रभु के साथ वे भक्ति प्रचार में प्रवृत्त रहे, एवं अन्त में किसी कायस्थ भक्त की सहायता से देनुड ग्राम में शेषजीवन पर्य्यन्त निवास किया, वहाँ ही उनकी पाटवाडी थी, जिसे कि वहाँ के महन्तगण बहुत दिनों से सुरक्षित रूप में परिचालित करते आ रहे हैं। वहाँ वृन्दावनदासठाकुर के द्वारा स्वहस्तलिखित चैतन्यभागवत की मूल पोथी मौजूद है। उनके द्वारा विरचित चैतन्य भागवत के अतिरिक्त कुछ पृथक् रचित पद भी मिलते हैं। इसके अतिरिक्त उनका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं मिलता है। उनके ग्रन्थ का रचनाकाल निश्चय रूप से निर्द्धारित करना असम्भव है। इस में नाना मत भेद हैं। किसी के मत में ग्रन्थ का रचनाकाल १४७० शक तथा किसी के मत में १४५७ शक एवं अन्य किसी के मत में १४६७ शक है। रामगति न्यायरत्न, अच्युत एवं दिनेश बाबू दोनों, अम्बिकाचरण ने क्रम से इस प्रकार रचनाकाल का उल्लेख किया है। वृन्दावनदासजी के तिरोभाव का निश्चय समय भी निर्णीत नहीं हो सकता है। अच्युत बाबू एवं दिनेश बाबू कहते हैं कि १५११ शक कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा तिथि उनके तिरोभाव का दिवस है।

इन महानुभाव ने गौडेश्वर सम्प्रदाय तथा समस्त महाप्रभु चैतन्यदेव के चरित्र के ज्ञातेच्छु प्रेमी सज्जनों को इस अमूल्य चैतन्य भागवत नामक ग्रन्थ महारत्न का अर्पण कर जो महान् उपकार किया उस से भक्त समाज उनका चिर ऋणि रहेगा। अलमति विस्तरेण।

निवेदक—

प्रकाशक—**कृष्णदास,**

कुसुम सरोवर वाले।

आप कब अवतार लोगे ? गुरुदेव माधवेन्द्रपुरी पादने "शीघ्र ही आपके प्राकट्य होने की सूचना" दी थी। वह समय कब आवेगा ? इस प्रकार प्रार्थना करते हुए निरन्तर गंगाजल-तुलसीदल का प्रदान करते थे; कभी कभी "शीघ्र ही कृष्ण को लाकर तुम सबको गोचरीभूत कराता हूँ" इस प्रकार हुङ्कार करते हुए भक्तों को सान्त्वना देते थे, अथवा कभी करुणस्वर से रोदन करते थे। इधर गोलोकविहारी ब्रजनाथ उनके हुङ्कार से कम्पित होने लगे। उनके सुदृढ़ सिंहासन डुलायमान होने लगा। वे अब स्थिर न रह सके, क्यों कि लीला विलास के साथी परिकरगण तो यत्र तत्र धरा में अवतीर्ण हो गये थे। राधा भाव से विभावित आप राधिका कान्ति से ढक कर राधा के गौरांग रूप हो गये। गोलोक व ब्रजभूमि छोड़कर आप नवद्वीप धाम में शीघ्र ही प्रगट हुए। श्रीहरि का गौराङ्ग स्वरूप में अवतीर्ण होना एक महान् अद्भुत बात थी। इस विषय में महानुभावों ने बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है--

राइ अङ्ग छटाय उदित भेल दश दिश श्याम भेल गौर आकार।
गौर भेल सखीगण गौर निकुंज वन राई रूपे चौदिके पाथार ॥
गौर भेल सुक सारी गौर भ्रमर भ्रमरी गौर पाखि डाके डाले डाले।
गौर कोकिलगण गौर भेल वृंदावन गौर तरु गौर फल फुले ॥
गौर जमुनाजल गौर भेल जलचर गौर सरस चक्रवाक।
गौर आकाश देखि गोरा चाँद तार साखी गौर तारा वेडि लाख लाख ॥
गौर अवनी हैल गौरमय सब भेल राई रूपे चौदिक झाँपित।
नरोत्तमदास कय, अपरूप रूप नय दुहुँ तनु एकइ मिलित ॥

अस्तु जिन महापुरुष की प्रेरणा से यह श्रीचैतन्य भागवत का प्रकाशन करने में हम प्रवृत्त हुए हैं, उन करुण हृदय, प्रेममय स्वरूप, संकीर्त्तन प्रचारक, श्रीगुरुदेव बाबाजि महाराज के साक्षात् विद्यमान में इस ग्रन्थ को उनके हस्त-कमलों में अर्पित नहीं करने पाये। तो भी नित्यधाम में विराजमान उन महापुरुष के उद्देश्य में इस ग्रन्थरत्न का समर्पण करके हम अपने को कृत्य-कृत्य समझते हैं। खेद की बात यह है कि जिन महोदय के ऊपर इस चैतन्यभागवत को हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित कराने के लिये श्रीगुरुदेव बाबाजी महाराज के द्वारा सौंपा गया था, वे महोदय हमारे बड़े गुरु-भ्राता, सर्वदा ब्रजभाव में विभोर, श्रीवृन्दावनशतक की अनुपम सरस व्याख्या करने वाले,श्रीयुक्त गौरांगदासजी महाराज भी गुरुदेव बाबाजी महाराज के साथ ही अपने नित्यधाम को पधार गये।

श्रीयुक्त बाबाजी महाराज की प्रेरणा से तथा पूज्य श्रीगौरांगदास जी महाराज के उपदेश-शिक्षा अनुसार उन्हीं के अनुगत नन्दग्राम के निकटस्थ गिड़ोह ग्राम निवासी पण्डित रामलालजी ने इस "चैतन्यभागवत" का समग्र अनुवाद कर बहुत दिन पूर्व ही रक्खा था। श्रीगुरुगौरांग की पुनीत कृपा से इसके प्रकाशन में हम अब समर्थ हुए हैं।

कृष्णदास,
(कुसुमसरोवर वाले)
मथुरा।

रथयात्रा दिवस
सं०-२०१५

भूमिका

2

★

कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः प्रादुष्कर्त्तुं कृष्णचैतन्यनामा।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे गाढ़ं गाढ़ं लीयतां चित्तभृङ्गः॥

अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक भगवान के अवतारों की संख्या अनन्त है, आवश्यकतानुसार ...ता जगदीश्वर युग-युग में प्रकट होते रहते हैं। भगवान ने अपने अवतार के मुख्य कारण तीन ...हैं—साधु परित्राण, दुष्ट विनाशन, धर्म संस्थापन। प्रभु के सम्पूर्ण अवतार इन तीन कारणों से प्रभा-...। किन्तु एक अवतार ऐसा भी है—जिसमें उक्त तीन कारण तो गौण रह जाते हैं, एक चौथा कारण ...हो जाता है, वह कारण है—"अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ"। न जाने कब से भगवान ...इच्छा थी कि ये मेरे प्रेमी पागल जिस राग-भक्ति के उन्माद में विस्मृत रहते हैं—उसका मैं स्वयं भी ...न करूँ ? और तब उस उन्नत उज्वल रसामृत सिन्धु के सारतत्व को लेकर एक दिन प्रभु स्वयं ...धाम पर अवतरित हुए।

भारत के कोटि-कोटि कृष्ण प्राण महाभागवतों ने वहिः साक्षात्कार एवं अन्तः साक्षात्कार के ...जिन कलि पावनावतार प्रेमानन्द रस मूर्ति भगवान श्रीकृष्ण चैतन्य देव की भगवत्ता को सुनिश्चित ...स्वीकार किया है, उन्हीं करुणा वरुणालय प्रभु का दिव्य चरित्र इस "चैतन्य भागवत" में वर्णित ...तन्य भागवत' के रचयिता श्री वृन्दावनदासजी श्रीमन्महाप्रभु के परम कृपापात्र हैं, स्वयं प्रभु ने ही ...दावनदासजी की वाणी पर विराजमान होकर 'चैतन्य भागवत' वर्णन किया है—

"मनुष्ये रचिते नारे ऐछे ग्रन्थ धन्य। वृन्दावनदास मुखे वक्ता श्रीचैतन्य"॥ "चैतन्य चरितामृत"

इससे स्पष्ट है कि 'चैतन्य भागवत" साक्षात् भगवत् वाणी है, ऐसे परम पावन-पुनीत ग्रन्थ का ...पाठन स्वाध्याय—प्रवचन निश्चित ही कोटि-कोटि जन्मों के अघों को समूल नष्ट कर महाप्रभु श्रीकृष्ण ...देव के पाद-पद्मों में श्रद्धा, भक्ति एवं प्रेम का उत्पन्न करने वाला है। 'चैतन्य भागवत' में वर्णित ...की पुण्य कथाओं का जितना ही कीर्त्तन-श्रवण किया जायगा, उतना ही शीघ्र से शीघ्र श्रीमन्महाप्रभु ...चरणों में दिव्य प्रेम-रस की प्राप्ति होगी।

"श्री चैतन्य भागवत" की रचना श्रीमन्महाप्रभु के समसामयिक ही समझी जाती है, किन्तु बड़े ...खेद और दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि श्रीमन्महाप्रभु के प्राकट्य समय ४७८ वर्ष के बाद भी किसी ...य विद्वान्, गृहस्थ या विरक्त ने इस अमूल्य ग्रन्थ रत्न को हिन्दी भाषा में प्रकाशित कराने की चेष्टा ...की। बंगभाषा एवं बंग-लिपि के आवरण में छिपे सहस्रों ग्रन्थ रत्न आज भी न जाने कहाँ कहाँ दबे ...हैं, हिन्दी आदि भाषाओं के ज्ञाता भक्तजन जिन ग्रन्थों की कथा-श्रवण के लिये प्यासे-से भटकते रहते ...परन्तु विशाल गौड़ीय (बंग-भाषी) सम्प्रदाय द्वारा इन ग्रन्थों के भाषान्तर करने का कुछ भी प्रयास ...होता. भले ही किसी को बुरा लगे, किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि सम्प्रदाय के कर्णधारों ने यदि थोड़ा ...भाषा के व्यामोह को छोड़ा होता तो श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रचारित धर्म आज विश्व का सर्वमान्य धर्म ...ा और इस सर्व वन्दय धर्म के आश्रय में अनन्त जीवों का कल्याण हुआ होता। भारतवर्ष के बड़े-बड़े ...न् एवं समस्त सम्प्रदायाचार्य गौड़ीय सम्प्रदाय के भक्ति-साहित्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करते नहीं थकते ...ल वे सभी विद्वान् गौड़ीय सम्प्रदाय के भक्ति-साहित्य के आगे नतमस्तक हैं दूसरी ओर गौड़ीय सम्प्रदाय

के ही अनेक महापुरुष ऐसे भी है जो इस अमूल्य ग्रन्थ राशि को नष्ट होते देख रहे हैं, दूसरे अपहरण होता देखकर भी स्वानन्द स्वाराज्य सिंहासन से तनिक भी विचलित नहीं होते। यह सौभाग्य की बात होगी, किन्तु सम्प्रदाय के प्रचार कार्य में यह उपेक्षा-वृत्ति निश्चित ही दुर्भाग्य की

वैसे इस बीसवीं शताब्दि में सम्प्रदायेतर महानुभावों की ओर से पर्याप्त जागृति हुई सम्प्रदायि महानुभावों ने ही सर्व प्रथम बंगला ग्रन्थों का हिन्दी करण प्रारम्भ किया, काशी से ग्रन्थ माला, बम्बई से वेङ्कटेश्वर प्रेस आदि से कुछ ग्रन्थ प्रकाशित किये गये उसके भी पहले ताड़ास बाबा महाराज श्री वनमालीराय द्वारा भी अनेक ग्रन्थ हिन्दी में मुद्रित किये गये किन्तु यह परम्परा अ रह सकी, क्योंकि सम्प्रदाय के नैष्ठिक वैष्णवों का मनोबल इस प्रचार की ओर नहीं था। अवश्य दिशा में गौड़ीय मठ की शाखाओं ने बहुत कुछ कार्य किया है, कर भी रहे है. गौड़ीय मठ के विद्वान का महत्व समझते हैं। सबसे बड़ी अच्छी बात जो इस समय बंगला साहित्य के हिन्दी करण के लिये है—वह है बाबा श्रीकृष्णदासजी कुसुम सरोवर वालों का हिन्दी प्रकाशन। बाबा श्रीकृष्णदासजी ने अथक परिश्रम से अब तक एक सौ से ऊपर बँगला ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया है, बा के हृदय में सम्प्रदाय कार्य के प्रति निष्ठा है, लगन है, और एक प्रबल उत्कण्ठा है कि सम्प्रदाय का साहित्य एक बार हिन्दी की गोद में आ विराजे, प्रस्तुत ग्रन्थ "श्रीचैतन्य भागवत" के हिन्दी प्रका सम्पूर्ण श्रेय बाबा श्रीकृष्णदासजी पर ही है, ग्रन्थ को आदि खड और अन्त्य खड बाबाजी के महान् से पहले ही प्रकाशित हो चुके हैं, आदि-अन्त्य खण्डों के प्रकाशित हो जाने के पश्चात् बाबा श्रीकृष्णद को मध्य खण्ड के प्रकाशन की महती चिन्ता थी, इसी बीच करुणा वरुणालय प्रभु की महान् कृ प्रेरणा से मध्य खण्ड के प्रकाशन का प्रबन्ध भी होगया। श्रीमाध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदायाचार्य विश्व सङ्कीर्तन प्रचारक, महामण्डलेश्वर सख्य रस-उपासक श्रील श्री १००८ श्री स्वामी श्री कृष्णानन्दद महाराज जो लेखक को श्रीगुरुदेव भगवान के रूप में इस भवाटवी में आश्रय दाता हुए है, महाराज परम कृपा पात्रा, माता श्री नारायणीदेवी—धर्मपत्नी स्वर्गीय लाला श्रीराधाकृष्णजी अग्रवाल, ग्राम तहसील माँट (मथुरा) के परम भागवत सुपुत्र श्री विश्वम्भरदयालजी भगवद् भजन की इच्छा से श्री कृष्णदासजी के पास कुछ दिन रहे, उन्हीं दिनों चैतन्य भागवत का चर्चा होने पर श्री विश्वम की मातु श्री नारायणीदेवी ने पूर्ण अर्थ सहायता प्रदान कर इस ग्रन्थ को प्रकाशित किया है। ग्रन्थ प्रकाशन जगत् के जीवों का ज्ञान का दान करना होता है, जैसे नेत्रहीन व्यक्ति का चक्षु प्राप्त करने महान् सुख शान्ति मिलती है, वैसे ही इस ग्रन्थ रूपी चक्षु के द्वारा जिनको भी यथार्थ ज्ञान होगा— काल तक अन्तरात्मा से आशीर्वाद देते रहेंगे।

माता श्री नारायणीदेवी की यह हार्दिक इच्छा है कि यह ग्रन्थ उन गौर भक्तों को वितरण कि जाय—जिनके हृदय में प्रेम प्रदाता श्री गौरचन्द्र के दिव्य चरित्रों को श्रवण करने की तीव्र लालसा आ हो रही हो। आशा है प्रबन्धक महानुभाव ऐसो ही व्यवस्था करेंगे।

अन्त में प्रभु के पादपद्मों में पुनः प्रार्थना है कि वे अपने भक्तों के हृदय में ऐसी ही निरन्त प्ररणा देते रहें ताकि ऐसे महान् निधि स्वरूप गन्थों का प्रकाशन होता रहे।

जेष्ठ गङ्गादशहरा
संवत् २०२०

गौर भक्त चरणानुचर—
रामदास शास्त्री मण्डलेश्वर
चारसम्प्रदायआश्रम (वृन्दावन)

❀ श्री श्री गौरांगविधुर्जयति ❀

ब्रजभाषा में

श्री श्री चैतन्यचरितामृतम्

महा महोदय श्रील सुबलश्यामजी विरचितम्

श्रीकृष्णचैतन्य प्रभुनित्यानन्द ।
हरेकृष्ण हरेराम राधेगोविन्द ॥
भज-निताई गौर राधेश्याम ।
जय-हरेकृष्ण हरेराम ॥

ग्रन्थकर्त्ता की गुरुपरम्परा

(१) श्रीराधाकृष्ण मिलित स्वरूप श्रीमन्महाप्रभु । (२) तस्य पार्षदप्रवर श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी (३) तच्छिष्य श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारी (४) तच्छिष्य ब्रजाचार्य्य, व्रज में रासलीलानुकरण के मूल आचार्य्य तथा बरसाना में श्रीलाडिली जू के प्राकट्यकारी नारदावतार श्रीनारायण भट्ट (५) तच्छिष्य श्रीदामोदर भट्ट, (६) तच्छिष्य श्रीबालमुकुन्द भट्ट, (७) तच्छिष्य श्रीगोपाल भट्ट, (८) तस्य श्रीब्रजपति भट्ट, (९) तस्य यदुपति भट्ट, (१०) तच्छिष्य ग्रन्थ रचयिता श्रीसुबलश्याम ।

अर्थ सहायक—
सेठ बनखण्डि आत्मज,
कोसी (बरसाना) निवासी,
चतुर्भुज (चेतराम) जी

प्रथमावृत्ति १०००
वि० सं० २००६ चैतन्याब्द ४६४

प्रकाशक :—
बाबा—कृष्णदास
कुसुमसरोवर
पो० राधाकुण्ड
जि० मथुरा ।

अवतरणिका

आज करुणामय गुरुदेव की कृपा से करुणावरुणालय प्रेम पुरुषोत्तम प्रेमावतार प्रेमदाता श्री राधाकृष्ण मिलित विग्रह श्री भगवान गौराङ्ग महाप्रभु के श्री लीलारस से युक्त यह श्री चैतन्य-चरितामृत मूलबंगभाषा के आधार पर ब्रजभाषा में मुद्रित होकर जन साधारण के लाभार्थ प्रकाशित है। इस ग्रन्थ रत्न के रचयिता ब्रजभाषा के प्राचीन कवि श्री सुबलश्यामजी हैं। प्राय: २५० वर्ष पूर्व इसकी रचना उन्होंने की थी। आप ब्रज के प्रसिद्ध आचार्य्य नारदावतार रासलीला प्रवर्तक श्री नारायण भट्टजी की शिष्य-परम्परा की सातवीं पीढ़ी में हुए हैं। इन्हीं श्री नारायणभट्टजी के द्वारा बरसाना-स्थित श्री लाड़िलीजी तथा ब्रज के अनेक लुप्ततीर्थों का प्राकट्य हुआ था।

श्री चैतन्यचरितामृत मूल ग्रन्थ बंगला भाषा में पयार छन्द में रचित है जिसका श्रेय श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी महोदय को है। इन्होंने इसमें समस्त उपनिषद् पुराण इतिहास पंचरात्र श्रीगीता ब्रह्मसूत्र तथा श्रीमद्भागवतादि भक्ति-ग्रन्थ और भक्ति-रसामृतसिंधु, उज्ज्वलनीलमणि प्रभृति यावतीय गोस्वामी गण विरचित वैष्णव ग्रन्थों का सार तथा प्रमाण रूप अनेक श्लोक उद्धरण देकर यह अद्भुत ग्रन्थ रत्न प्रगट किया। श्री कविराज गोस्वामिपाद श्रीनित्यानन्द प्रभुपाद की शक्ति-प्रेरणा से इस अद्वितीय ग्रन्थ की रचना करने में समर्थ हुए थे। आपने श्री श्री महाप्रभु के लीला चरित्रों को श्री रघुनाथदास गोस्वामिपाद के मुखारविन्द से श्री राधाकुण्ड पर श्रवण करके श्री वृन्दावनदास ठाकुर द्वारा रचित श्री चैतन्य-भागवत के आधार पर इस अमूल्य लीला रूप गाथा को संचय किया। श्री चैतन्य-भागवत में जो लीलाऐं श्री वृन्दावनदास ठाकुर ने विस्तार से नहीं लिखीं थी उनको इन्होंने उक्त ठाकुर महाशय के प्रसाद रूप विस्तार से दिया है तथा श्री चैतन्य-भागवत की विस्तृत कथाओं को सूक्ष्म रूप से दिया है। यह ग्रन्थ आपाततः दो भागों में विभक्त है, सिद्धान्तांश और लीलांश। श्री महाप्रभु की लीलाओं तथा स्वरूप-तत्व को जानने की पुष्टि के लिये ही सिद्धान्तांश निहित है।

श्री महाप्रभु के स्वरूप-परिकर-धामादि तत्वों को समझाने के लिये ग्रन्थ के आदि के ग्यारह परिच्छेद केवल सिद्धान्त से ही भरे हैं, इसी प्रकार मध्यखण्ड के अष्टम तथा उन्नीस से चौबीस परिच्छेद तक सिद्धान्त का विस्तार है। विज्ञ पाठक गण इन परिच्छेदों में दिये सिद्धान्त तथा समग्र ग्रन्थ में अन्य स्थलों में दिये हुए सिद्धान्त-समुच्चय को बड़े चाव से धैर्य्यपूर्वक दृढ़-निष्ट हो श्री गुरु-वैष्णवानुगत्य में निरन्तर पाठ करें तथा समझने का उद्योग करें। यह ग्रन्थ इसी कारण समस्त वैष्णवों के लिये परम आदर की वस्तु है और श्री माध्व-गौड़ेश्वर सम्प्रदाय का तो यह आधार-भूत नित्य पाठ्य-ग्रन्थ ही है।

किन्तु बंगभाषा में होने के कारण यह ग्रन्थ इतरदेशीय जनों को अधिक लाभप्रद नहीं होता था। इस बात को दृष्टिगोचर रखते हुए ब्रजस्थ वैष्णव गणों के आदेशानुसार श्री सुबलश्याम जी ने (प्राय: २५० वर्ष पूर्व) इस अनुपम संग्रहणीय ग्रन्थ रत्न को सरल ब्रज भाषा में भाषान्तरित कर के परवर्त्ति जनसाधारण का अतुलनीय उपकार किया है। हिन्दी भाषा भाषी जनता श्रीमहाप्रभु की लीला से प्राय अनभिज्ञ है जो दो एक छोटे बड़े ग्रन्थ हाल में प्रकाशित हुए भी हैं, उनसे श्री महाप्रभु के विषय में भ्रम फैलने की जो शंका है उसको निराकरण करने के लिये इस प्राचीन (प्राय: २५० वर्ष पूर्व लिखित) ग्रन्थ का पुन: प्रकाशन होना परम श्रेयस्कर है। श्री नाभादासजी द्वारा लिखित श्री भक्तमालजी के शब्दों में विश्वास-शैथिल्य के कारण इतर लेखकों ने प्राय: महाप्रभु को भगवद्वतार न मान कर ही भक्तरूप से वर्णन-चेष्टा की है। इस ग्रन्थ में निहित सिद्धान्त ही ऐसे भ्रमादि का निराकरण करेंगे।

जिन हस्त लिपियों से यह पुस्तक प्रस्तुत हुई है उनके आदि अन्त के पृष्ठों के प्रति-रूप (फोटो) चित्र इस ग्रन्थ में दे रहे हैं। इसमें तीन पृष्ठों के चित्र हैं (१) ऊपर में ग्रन्थकार का

गुरुपरम्परा-परिचय है (२) मध्य में-आदि खण्ड के अन्तिम पृष्ठ का प्रतिरूप है, तथा (३) नीचे-मध्य खण्ड के अन्तिम पृष्ठ का। अन्तिम दोनों चित्रों में ग्रन्थ की प्रति-लिपि लेखन सम्वत् १८२८-२६ दिये हुए हैं।

इस ग्रन्थ का सन्धान सर्व प्रथम हमारे पूज्य गुरुभ्राता श्री रजनीदास बाबाजी (गोविन्द कुण्ड वृन्दावन) से हमें प्राप्त हुआ, तत्पश्चात श्री पूज्य वंशीदासजी बाबाजी (गौ घाट वृन्दावन) से आदि खण्ड प्राप्त हुआ, तदनन्तर राधारमणैक-जीवन गौरनिष्ठ गोस्वामी श्री कृष्ण चैतन्यजी महाराज से आदि तथा मध्य दो खण्ड प्राप्त हुए।

भक्तिविशारद, आचार्य श्री मदन मोहन गोस्वामीजी ने इस ग्रन्थ की प्राप्ति कराने में हमें अत्यन्त सहायता प्रदान की। हमारे काकागुरु श्री युक्त अद्वैतदासजी महाराज (नवद्वीप धामस्थ) के शिष्य श्रीमान् वृन्दावनदास से उक्त पुस्तकों की प्रतिलिपि कराने में हमें बड़ी सहायता मिली है। पूज्य श्री ज्येष्ठ गुरुभ्राता श्री गौराङ्गादासजी महाराज, श्रीयुक्त कृपासिंधुदासजी महाराज (रमणरेती) तथा पूज्य काका गुरु श्री बाबा उद्धारणदासजी (कुसुमसरोवर) और श्रीमान् राधाचरणदासजी (गोविन्द कुण्ड, वृन्दावन) श्रीमान् हरिदास शास्त्रीजी, (कालिदह) श्री पूज्य बाबा मनोहरदासजी (चकलेश्वर गोवर्द्धन) बरसाना निवासी गोस्वामी श्री प्रियालालजी तथा जयदेव वंशोद्भव गोस्वामी श्री यमुनावल्लभजी, श्रीमान् गौरनिष्ठ श्री जगमोहनलालजी श्रीवास्तव, न्याय मन्त्री (मध्य भारत प्रान्त) श्रीमान् राजा रघुनन्दनजी (मुंगेर) एवं अन्यान्य ब्रजस्थ वैष्णवगणों के प्रोत्साहन फल स्वरूप यह ग्रन्थ प्रकाशित करने में हम समर्थ हुए हैं। इस ग्रन्थ के मुद्रितादि कार्य में हमें आगरा निवासी श्रीमान् डाक्टर पूर्णचन्द्र शर्माजी से सम्पूर्ण सहाय मिली है। पूज्य श्री गौरांगदासजी के शिष्य बरसाना (कोसी) निवासी लाला चेतराम (चतुर्भुजदास) के सम्पूर्ण अर्थ सहाय से यह ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। एतदर्थ समस्त महानुभाव सज्जनों के हम आभारी हैं।

मूल ग्रन्थ तीन खण्डों में वंग भाषा में उपस्थित है। परन्तु बहुत खोज करने पर भी हमें ब्रज भाषा में श्री सुवलश्याम कृत दो ही (आदि तथा मध्य खण्ड) प्राप्त हुए हैं। अभी अन्त खण्ड की खोज हो रही है। विलम्ब होने के कारण दो ही खण्ड छाप कर प्रकाशित किये जा रहे हैं। इतने पर भी कोई महानुभाव प्रस्तुत पुस्तक को असम्पूर्ण ग्रन्थ न समझें; स्वयं मूल ग्रन्थकार ने इस शंका का निराकरण मध्य खण्ड के द्वितीय परिच्छेद के अन्तिम पयारों में इस प्रकार किया है:—

शेष लीलार सूत्रगण कैल किछु विवरण इहा विस्तारिते चित्त हय।
थाके जदि आयु: शेष विस्तारिव लीला शेष यदि महाप्रभु कृपा हय ॥

आगे भी—एइ अन्त लीला सार सूत्र मध्ये विस्तार करि किछु करिल वर्णन।
इहामध्ये मरिजवे वर्णिते ना पारि तवे एई लीला भक्तगण धन ॥

श्री सुवल श्यामजी ने भी इस प्रकार कवित्त में उक्त शब्दों को कहा है:—

सेस लीला सूत्र गण विवरण कियो कछू कियौ चाहे मन मेरो तिनको विस्तार है।
जो पै आयु अवसेस करों व्यास लीला सेस जो है महाप्रभूजु की करुणा अपार है।
यहे सेस लीलासार ताके सूत्र बीच कहूँ वर्णन कियो है कछू करिके विस्तार है।
जो पै याही बीच मरों सकों नहिं ताहि कहि तौ पै यह लीला भक्त गण धनसार है।

सर्व साधारण से प्रार्थना है कि हमारी त्रुटि को क्षमा करेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक जल्दी में छपने के कारण जहाँ कहीं प्रेस भूल रह गई हैं कृपालु पाठक भूल सुधार कर पाठ कर लें जल्दी के कारण विस्तृत भूमिका देने में असमर्थ हैं।

मार्गशीर्ष पूर्णिमा
सम्वत् २००६ वि०

विनीत प्रकाशक—
कृष्णदास (कुसुमसरोवर)

॥ श्री श्रीगौरहरिर्जयति ॥

❀ ब्रजयात्रा ❀

एवं

—ः श्री चरन पूर्णानन्द जी ग्रन्थावली :—

रचयिता :—

गोस्वामी सुन्दरलाल जी

अर्थसहायक :—

श्रीमान् गेन्दीलाल जी

शंकरलाल रूपनारायण जौहरी

गोपालजी का रास्ता

जयपुर (राजस्थान)

प्रकाशक :—

कृष्णदास बाबा

ग्वालियर मन्दिर, कुसुम सरोवर, राधाकुण्ड (मथुरा)

[श्री राधाष्टमी, सम्वत् २०१९]

॥ श्री राधारमणो जयति ॥

जयगौर !

पूज्यपाद प्रपितामह माध्वगौड़ेश्वराचार्य श्री गोस्वामी सुन्दरलाल जी महाराज, श्रीमद्भागवत के मर्मज्ञ प्रसिद्ध वक्ता थे। उस समय की प्रचलित कथा-शैली में आपने विशुद्ध ब्रज-भाषा में श्री भागवत सम्बन्धी कई पुस्तकें लिखीं परन्तु ब्रजभाषा साहित्य का यह संग्रह अप्रकाशित ही रहा और सम्पूर्ण प्राप्य भी नहीं है।

श्री गोस्वामी सुन्दरलाल जी महाराज की प्रसिद्धि एवं प्रतिष्ठा उत्तरप्रदेश, राजस्थान, गुजरात प्रान्तों में कथा व्यास के रूप में थी।

आपका जीवन ही श्रीजी की सेवा और श्रीमद्भागवत का अध्यापन आपके नित्य नियम में था। ब्रजभाषा में, आपने कुछ पदों की रचना भी की।

स्वयं प्रकट श्री श्री राधारमणदेव की सेवा के सुप्रबन्ध और भोग राग के निमित्त अर्थ संचय में आप सदैव तत्पर रहे।

अपने गुरुजनों से सुना है कि श्री गो० सुन्दरलाल जी महाराज को अष्टादशाक्षर श्री गोपाल मन्त्र सिद्ध था।

कर्त्तव्यनिष्ठ बाबा कृष्णदास जी कुसुमसरोवर (गोवर्धन) वाले जिस लगन और परिश्रम से संस्कृत और ब्रजभाषा के अप्रकाशित अप्राप्य से अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन कर, माध्व-गौड़ीय सम्प्रदाय और ब्रजभाषा-साहित्य की सेवा कर रहे हैं वह

प्रशंसनीय-स्मरणीय रहेगी। स्वयं अकिञ्चन होते हुए भी, अपने उद्योग से, धार्मिक तथा साहित्यिक जनों से प्राप्त अर्थ द्वारा जैसे आवश्यक उपयोगी ग्रन्थों का प्रकाशन अब तक इनके द्वारा हुआ है, वे ग्रन्थ संग्रहणीय हैं। ऐसे विरक्त वैष्णव ५-१० भी मिल जायें तो धार्मिक-साहित्यिक प्राचीन-ग्रन्थों का प्रचार, प्रसार, विशेष रूप में हो सके। पूज्य श्री सुन्दरलाल जी महाराज को प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन का श्रेय कृष्णदास जी को है।

इस ब्रज यात्रा के साथ चरणपूर्णानन्द जी बिरचित ग्रन्थावली भी दी जा रही है, जिसमें पांच प्रकरण है।

(१) विवेक दोहावली, (२) नाम माहात्म्य, (३) कर्म साधन, (४) वैराग्य साधन, (५) तत्व विचार।

ग्रन्थकार श्री नित्यानन्द प्रभू के पुत्र श्री वीरचन्द्रजी, उनके पुत्र श्री रामचन्द्र जी, उनके पुत्र श्री राधवेन्द्र जी के शिष्य हैं।

इस पुस्तक की प्राचीन प्रति उक्त बाबा के पास है।

श्री राधारमण भगवान के पवित्र पाद पद्मों में प्रार्थना है कि अपनी कृपा एवं प्रेरणा से बाबा कृष्णदास जी द्वारा ग्रन्थों का प्रकाशन कराते रहें।

श्री चैतन्य जयन्ती
श्री राधारमण मन्दिर
वृन्दाबन

आचार्य अनन्तलाल गोस्वामी

॥ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ॥

गौड़ीयग्रन्थगौरवः—

प्रकाशितग्रंथसंख्या—१११

(लघु)

श्रीश्रीनारायणभट्टचरितामृतम्

तदनुगतेन केनचित् विरचितम्

सम्बत्—२०२०
मूल्यम्— २५ नये पैसे

प्रकाशकः व मुद्रकः—
कृष्णदासबाबा

गौरहरिप्रेस, कुसुमसरोवर

समर्पणपत्रं

श्रीश्रीराधारमण चरणदासदेवस्यानुचरिण्याः,
ममाराध्यरूपायाः, निकुञ्जधामगतायाः,
श्रीललिता सखी नाम्ना प्रसिद्धायाः, परमपूज्यायाः,
परमपण्डितायाः, रसिकसमाजपूजनीयायाः,
कृतनिरन्तर मानसिकी सेवापरिचर्य्यायाः, नवद्वीप-
समाजवाटी निवासिन्याः, श्री सखीमातायाः
प्रीत्यर्थं समर्पितेदं
ग्रन्थरत्नं—

यह पुस्तक मिलने का पता—

१—लाला चेतराम (चतुर्भुज) जी कोसी-कलाँ,
(मथुरा।)

२—बाबा उद्धारणदासजी, कुसुमसरोवर, गवालियर-
मन्दिर, पो० राधाकुण्ड, (मथुरा)

३—बाबा गौरांगदासजी, श्रीराधारमणनिवास,
रमणरेती (वृन्दाबन)

प्रस्तावना

भक्ति रस रूप राधाकृष्ण रस रूप पद रचना के रूप
याते रूप नाम भाखियै
त्याग रूप भाग रूप सेवा सुख साज रूप रूप ही की भावन
औ रूप मुख चाखियै ।
कृपा रूप भाव रूप रसिक प्रभाव रूप गात जातरूप
लखि मन अभि लाखियै
महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यजू के हृदै रूप श्रीगोसांई रूप
सदा नैनन में राखियै ॥
(भक्तमाल टिप्पणी)

रूपेति नाम वद भो रसने सदा त्वं
रूपञ्च संस्मर मनः करुणास्वरूपम् ।
रूपं नमस्कुरु शिरः सदयावलोकं
तस्याद्वितीयसुतनुं रघुनाथदासम् ॥
ऐश बुद्धि बासितात्म लोकवृन्द दुर्ल्लभा
व्यक्त रागवर्त्म रत्नदान विज्ञवल्लभा ।
सप्रियालिगोष्ठपालिकेलिकीरमञ्जरी
मामुरीकरोतु नित्यदेह रूपमञ्जरी ॥
साधनदीपिका [अष्टम कक्षा]

प्रेम के दाता कलिपावनावतार श्रीमन्महाप्रभु के अन्तरङ्ग पार्षद, रसिक चूड़ामणि, ब्रजाचार्य्य, रागमार्ग प्रवर्त्तन के आदि गुरु श्रीमद्रूपगोस्वामी चरण के द्वारा विरचित यह "निकुञ्जरहस्यस्तव" नामक प्रिया प्रियतम के मनोहर स्तोत्ररत्न सानुवाद प्रकाशित होकर रसिक जनों के समक्ष उपस्थित हुआ है। निकुञ्जविलास वैभव सागर के मन्थन से प्रकाशित बत्तीस

श्लोक रूप इस दिव्य चिन्तामणि महारत्न को रसिक समाज अपने हृदय सम्पुट में धारण कर उस का सरस अनुभव प्राप्त करें इसलिये ही मेरा यह परिश्रम है। निःसन्देह स्तोत्रकार श्री रूपगोस्वामी चरण ने सीमा रहित, परमगम्भीर अपने वाणी रूप विशाल सरस दिव्य मन्दाकिनी धारा को उछाल कर जो अनुराग पवन से चलायमान, श्रीमन्महाप्रभु की कृपा माधुर्य्य-कादम्बिनी [माधुर्य्यमेघमाला] से पुष्ट, प्रेम तरङ्गों से तरंगायमान, दिव्यातिदिव्य शृंगार रस जल से पूर्ण तथा कभी विरहसूर्य्य किरणों से तपायमान या कभी संयोगरूपी शीतलचंद्र किरणों से आल्हाद प्राप्त है उसमें से इस स्तोत्र रूप दिव्य चिन्तामणि महाधन का प्राकट्य किया है। इधर प्रभु की कृपा मोहिनी देवी ने उस रत्न का मनोहर हार बना कर रसिक प्रेमी जनों के कंठ देश में पहिनाय कर सबको योग्य बनाया। नास्तिक अभक्त इस महान् धन की प्राप्ति करने में वंचित होने पर भी निरन्तर ललचाए। भाव यह है कि गोस्वामीचरण ने केवल रसिकजनों के सुख के लिये इस मनोहर स्त्रोत्र रत्न को उघाड़ कर दिखा दिया। श्री रूप सनातन के आनुगत्य होकर सखी मञ्जरी भाव से राधागोविन्द की सरस दैनन्दिनी लीला का स्मरण करने वाले रसिकों का तथा अन्यत्र प्रेमियों का यह स्तोत्ररत्न परम उपादेय रूप है। साधक अपने को सिद्ध मञ्जरी स्वरूप से भावना करता हुआ स्थिरचित्त से रात्रिकाल में नित्य इसका पाठ करे। निकुञ्जविलासवैभव वर्णन में यह स्तोत्रसर्व्वोपरि है तथा प्रारम्भिक भी है। श्लोक संख्या में यह स्तोत्र छोटा होने पर भी अपनी महीमा के बल से सर्व व्यापक है। हिन्दी भाषा भाषी रसिक जनता में तथा सरस प्रेमी पण्डित समाज में भी इसके प्रचारणार्थ मेरी उसे सानुवाद प्रकाशित

करने की बहुत दिन से इच्छा थी। गुरु गौराङ्ग गणों की कृपा से आज यह इच्छा सफल हुई। आशा तो इसको विषद् व्याख्या रूप से प्रकाशित करने की थी, किन्तु सर्व साधारण को उपादेय न जानकर केवल मूलानुसार व्याख्या के साथ ही इसे मैं इस समय प्रकाशित करने को बाध्य हुआ। दूसरे यद्यपि यह सर्व साधारण में प्रकाशित करने की वस्तु नहीं है तो भी यह लुप्त न हो जावें व अन्यत्र कहीं न चली जावें इसलिये ही इस समय इसको प्रकाशित करना आवश्यक प्रतीत हुआ, वैसे इसके बंगाक्षर में कई संस्करण छप चुके हैं।

अब दूसरी विचारणीय वस्तु यह है कि हाल में ही द्वारकादास परीख, वल्लभीयसुधाकार्य्यालय (मथुरा) के द्वारा प्रकाशित "वल्लभीयसुधा" नामक त्रैमासिक पत्रिका के अङ्क २—३—४ [महा फाल्गुन चैत्र स० २००६ वि०, । वैशाख से आश्विन सं० २००६ वि०] में भी यही स्तोत्र प्रकाशित हुआ है। यह कार्य्य तो बहुत स्तुत्य था, परन्तु उक्त महोदय ने न जाने किस कारण से उस स्तोत्र के रचियता के नाम के स्थान पर श्री रूपगोस्वामी जी के नाम को हटाकर श्रीविट्ठलेश्वर प्रभु चरण प्रणीत करके लिख दिया। साथ ही साथ "निकुञ्जरहस्य-स्तव" के स्थान पर "निकुञ्जविलास" लिख कर इसे छपवाया तथा स्तोत्र के पहिले श्लोक को हटाकर उन्नीस संख्या में तथा उन्नीसवें श्लोक को दशमी संख्या में छपाया। इस प्रकार प्रायः अस्तव्यस्त करके स्तोत्र का प्रकाशन किया गया। मैं उक्त महोदय से मिला तथा इस विषय में प्रार्थना भी की। परम सज्जन आपने अगली पत्रिका में इसका संशोधन पत्र निकालना भी स्वीकार कर लिया है। आशा है अगली पत्रिका में उक्त महोदय अपने भ्रम का संशोधन करके उदारता का परिचय

देकर व्यथित हृदय सज्जनों को प्रसन्न करेंगे । निःसन्देह यह स्तोत्र श्री रूपगोस्वामीजी के द्वारा रचा गया है, क्योंकि महाप्रभु के सम सामयिक श्रीवंशीवदन ठाकुर हुए । आपने छन्दवद्ध (पयार छन्द) भाषा में इसकी टीका भी की थी । उन्होंने अपने अनुवाद के प्रारम्भ में लिखा है ।—

यत यत रसिक भकतजन राजत त्रिभुवन मण्डल माझ ।
सुख निधि नित्य युगलरस विवरिते जानइ सबाकार राज ॥
धनि धनि ताहि विशेष नव रंगिनी सखी मणि संगहि संग ।
श्री रूप यौछन प्रकट निहारये ऐछन रचे रस रंग ॥
सु निभृत निकुञ्ज रहस्य स्तव सुन्दर वान्धल संस्कृत छान्दे ।
तछु युग चरण कृपा अनुसारइ वंशी पयार करि वान्धे ॥

परिशिष्ट में—

अति मनोहर नव निकुञ्जरहस्यस्तव दुँहार विलास सुख रासि ॥

इत्यादि ।

ताड़ाश वाले मन्दिर वृंदावन में राजर्षि बनमालीराय बहादुर की सहायता से नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी के द्वारा उक्त स्तोत्र ग्रंथ वंशीबदन ठाकुर महोदय के छंदवद्ध अनुवाद के साथ अष्टटीका भागवत के सहित पहिले वंगाक्षर में प्रकाशित हो चुका है । उसका संवत १६५६ है उसमें श्रीअद्वैत प्रभुके वंशज श्रीराधिकानाथ गोस्वामीजी के द्वारा विरचित रहस्यार्थ प्रकाशिका नामक संस्कृत टीका भी है । बङ्गदेश में भी इसके केई संस्करण छप चुके हैं। महाप्रभु के अनुगत वैष्णवजन प्रायः इसका नित्य ही पाठ करते हैं, मैं स्वयं भी इसका नित्य पाठ करता हूँ—

—बाबा कृष्णदास.

नित्यक्रियापद्धति

प्रथमभाग

वन्देऽहं श्रीगुरोः श्रीयुतपदकमलं श्रीगुरून् वैष्णवांश्च
श्रीरूपं साग्रजातं सहगणरघुनाथान्वितं तं सजीवम् ।
साद्वैतं सावधूतं परिजनसहितं कृष्णचैतन्यदेवं
श्रीराधाकृष्णपादान् सहगणललितान् श्रीविशाखान्वितांश्च ॥

❀ स्वप्नविलासः ❀

प्रिय स्वप्ने दृष्टा सरिदिनसुतेवात्र पुलिनं
यथा वृन्दारण्ये नटनपटवस्तत्र वहवः ।
मृदंगाद्यं वाद्यं विविधमिह कश्चिद्द्विजमणिः
सविद्युद्गौरांगो क्षिपति जगतीं प्रेमजलधौ ॥१॥

(१)—नदी कालिन्दी सी तट सपन में देखत रही ।
तहां बृन्दारण्य निरत चतुराई बहुत ही ।
मृदंगादी बाजें, कोउ तडित-गोरे द्विजमणी,-
डुबाये हैं देते जगत निज प्रेमाब्धि सरणी ॥

कदाचित्कृष्णेति प्रलपति रुदन्कर्हिचिदसौ
क्व राधे हा हेति स्वसिति पतति प्रोज्झिति धृतिं ।
नटत्युल्लासेन क्वचिदपि गणैः स्वैर्प्रणयिभि
स्तृणादिव्रह्मान्तं जगदतितरां रोदयति सः ॥२॥

प्रकाशितग्रन्थसंया—१४०.

प्रेमावतार—

श्रीमन्महाप्रभुकृष्णचैतन्यदेव-विरचित—

❁ प्रेमामृतरसायनस्तोत्रम् ❁

श्रीमद्विट्ठलेश्वरविरचितविवरण-समेतम् ।

कुसुमसरोवरनिवासिनः कृष्णदासस्य टीकानुवादेन
सुपरिष्कृमम्

अर्थसहायक—
श्रीमान्लक्ष्मीनारायनजीवैद्य
(वृन्दावन)

सम्वत्—२०२४.

न्योछावर—रु० १.

प्रकाशक—
कृष्णदासबाबा

मुद्रक:—गौरहरिप्रेस, कुसुमसरोवर, (ग्वालियरमन्दिर)
[राधाकुण्ड मथुरा]

❁ दो शब्द ❁

आज करुणावरुणालय, प्रेमावतार, नाम-संकीर्त्तन के पिता, राधा-कृष्ण मिलितविग्रह, जगन्नियन्ता, जगदाधार महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यदेव के मुखकमल विनिर्गत यह "प्रेमामृतरसायनस्तोत्र" श्रीवल्लभाचार्य्यचरणमहोदय के पुत्र श्रीपाद विट्ठलेशचरण के द्वारा विरचित "प्रेमामृतविवरण" नामक टीका तथा मत्कर्त्तृक अक्षरशः टीका का हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित होकर प्रेमीसज्जनों के समक्ष उपस्थित हो रहा है। बहुत दिनों से इच्छा थी कि यह स्तोत्र श्रीविट्ठलेशजी की टीका के तथा हिन्दीभाषानुवाद के साथ प्रकाशित हो, परन्तु यह स्तोत्र श्रीविट्ठलेशजी की टीका के साथ मणीलाल इच्छाराम देशाई गुजराती-पत्रिका आफिस बम्बई में तथा मूलचन्दतुलसीदास तेलीवाला तथा धैर्यलालब्रजदास संकलीया के द्वारा सम्बत् १९७५ में श्रीमद्विट्ठलेशविरचितविवरण के साथ बम्बई से प्रकाशित हुआ है जानकर मुद्रणकार्य से विरत रहा और अतिशय चेष्टा के द्वारा दूसरी पुस्तक की एक प्रति प्राप्त की। संस्कृत अनभिज्ञ साधारण जनता के लिये वह संकलन दुर्गम था। अतः मैं हिन्दी अनुवाद के साथ इस के पुनः प्रकाशन में यत्नवान हुआ। गुजरातीपत्रिका आफिस बम्बई वाली प्रति मेरे देखने में नहीं आई। जो भी कुछ हो मूलचन्दतुलसीदास तेलीवाला तथा धैर्यलाल ब्रजदास सांकलीया वाली प्रति का अवलम्बन कर इस के प्रकाशन में समर्थ हुआ। इन दोनों महानुभावों ने इस प्रति को प्रस्थावना मुख में विस्तृत विवेचन कर विशेष प्रभाव डाला है।

इन्होंने भी इस स्तोत्र को श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु विरचित माना है। वह प्रस्तावना देवाक्षर में मुद्रित हुई है अवश्य परन्तु गुजराती भाषा में लिखी गई है। हम यहाँ पर उस के उस अंश का अक्षरतः हिन्दी अनुवाद दे रहे हैं—

"इस ग्रंथ में प्रेमामृत का सुविस्तृत प्रकाशन किया हुआ है। इस ग्रन्थ का नाम प्रेमामृत वा कृष्णप्रेमामृत है। ग्रंथरत्न के ऊपर श्रीमद् विट्ठलेश्वर प्रभुचरण श्रीगोसांईजीने बहुत सुन्दर विवरण लिखा है। उस विवरण के साथ "प्रेमामृत" यहाँ प्रकाशित किया है। इस प्रेमामृत-ग्रंथ में मुख्य श्रीस्वामिनी श्रीराधिकाजी ने अपने प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रजी के विषय में विरहावस्था में जो जो गीत गाये थे उनका ही संग्रह किया हुआ है। सांप्रदायिक गाथा यह है कि यह नामावली श्रीगिरिराजजी की शिला के ऊपर खुदाई की हुई थी। इन्हीं नामों का संग्रह श्रीगुसांई विट्ठलेश्वरजी ने किया और आप श्री ने इसमें प्रकाशित हुई सुन्दर टीका भी साथ में लग-वाई। श्रीप्रेमामृत-ग्रंथ का प्रचार श्रीगौडीयवैष्णवसंप्रदाय में भी होना चाहिये। संवत १७२७ वैशाख शुक्ला दशमी मङ्गलवार के दिन बलिराम नामक सज्जन द्वारा लिखित यह ग्रंथ हमें प्राप्त हुआ है, इसमें इति श्री इस प्रकार है-"इति श्रीजगज्जीवनानन्द चन्द्र-श्री कृष्णचैतन्यचन्द्रमुखपद्मविनिर्गते श्रीगोपीनायकनाथामृतलहरी सपूर्णा।" अर्थात् इस प्रेमामृत ग्रंथ का यह श्री इति रीति से नाम श्रीगोपीनायकनाथामृतलहरी है, और उसका प्राकट्य श्रीकृष्ण-चैतन्यचन्द्र के मुखपद्म द्वारा हुआ है। श्रीमत्प्रभुचरण "राधा-गीतानि नामानि" इतना ही कहकर ग्रंथ के कर्तृत्व संबन्ध में मौन रहते हैं, और "इत्याह" ऐसा ग्रंथकार के लिये एक वचन लिखते हैं, इसलिये यह श्रीमदाचार्य श्रीवल्लभाधीश्वर की कृति होना संभव नहीं है। आचार्य श्री जिन ग्रंथ का रचयिता-कर्ता

होते हैं उनको टीका लिखते समय श्रीगोसांईजी वगैरह सर्वथा बहुवचन प्रयोग करते हैं। इस प्रकार इस ग्रंथ के कर्तृत्व संबन्ध में सन्देह है। गौडीयवैष्णवसंप्रदाय में श्रीकृष्ण से भी श्रीस्वामिनीजी का प्राधान्य अधिक माना जाता है, इसलिये सामान्य रीति से श्रीस्वामिनीजी के नामों का गान श्रीप्रभु करें ऐसी उस सम्प्रदाय की मान्यता है। यह ग्रंथ परम रमणीय है और श्रीगोसांईजी की टीका द्वारा इस ग्रंथ को पुष्टी होने से उसकी रमणीयता में भगवदीयता में और भी वृद्धि हुई है। इसके पाठ करने में भाग्यवान संसारासक्तिरहित प्रभु प्रेम में मुग्ध भगवदीय जनों को ही अधिकार है।"

"कैसे भी हो परन्तु यह ग्रंथ श्रीवल्लभाचार्यकृत तो नहीं है। कारण यह है कि, इस ग्रंथ में श्रीराधिकाजी के नाम की प्रायः प्रधानता है। श्रीमदाचार्यचरण के ग्रंथों में राधा नाम का प्रयोग दिखता नहीं है, परन्तु जब प्रसंग आता है तब तब शास्त्रीय मुख्य शक्ति, वा मुख्य स्वामिनी वा लक्ष्मी इत्यादि शब्द लिखते हैं। इसी कारण से भी इस ग्रंथ का रचयिता श्रीमदाचार्यजी होने के बारे में संदेह होता है।"

"श्रीमत्प्रभुचरण श्रीगुसांईजी का श्रीजयदेव के अष्टपदी गीतगोविन्द पर तथा रामानुजीय वेदान्ताचार्य न्यासादेश पर विवरण प्रसिद्ध है। वैसे उन्होंने यदि किसी प्रकार श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के इस स्तोत्र की स्वाभाविक सुन्दरता में आकर विवरण लिखा है तो उस में असम्भव क्या है। जो भी हो यह ग्रन्थ परम रमणीय है, जिसको श्रीगुसांईजी ने विवरण के द्वारा इसको पुष्ट किया है।"

उन्होंने और भी कहा है—"इस श्रीप्रेमामृतकी छपवाई हमने निम्नलिखित चार पुस्तकों के आधार से किया है। १. यह पुस्तक डाहोलक्ष्मी पुस्तकालयस्थ शास्त्री भाईलाल के संग्रह से रा. रा. तनसुख-

राम मनसुखराम की कृपा से प्राप्त हुआ । यह पुस्तक बड़ा सुन्दर प्राचीन तथा प्रायः शुद्ध है, परन्तु कई पंक्तियों में त्रुटि मालुम पड़ती है। २. यह पुस्तक पण्डित गट्टुलाल के संग्रह से ; यह भी प्रायः शुद्ध है। इसमें पहला पृष्ठ नहीं है। ३. यह पुस्तक भगवद्धर्मपरायणशास्त्री कल्याणदास ने दिया है । यह पुस्तक प्राचीन तथा प्रायः शुद्ध है। ४. यह पुस्तक भगवद्धर्मपरायण मनमोहनदास दलपतराम दलाल, बी. ए. ने हमें दी थी। यह पुस्तक नूतन है। मनमोहनदास भाई ने अपने स्वाध्याय के लिये संशोधित करके अपने हस्त से लिखी है। इस पुस्तक की प्रेस कापी नटपुरस्थ चन्दुलाल चुनीलाल शाह ने बनवा कर दी थी। इन सभी का हम उपकार मानते हैं।"

बम्बई
पवित्रका एकादशी
१९७५

मूलचन्द्र तेलीवाला
धैर्यलाल सांकलिया

निःसन्देह यह प्रेमामृतरसायन स्तोत्र श्रीमन्महाप्रभु श्रीगौरांगदेव के मुखपद्म से विनिर्गत हुआ था। सर्वत्र प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में श्रीकृष्णचैतन्यदेव महाप्रभु के नाम से यह देखने में आ रहा है—

उदाहरण रूप में—

(१) काशीसरस्वतीविद्यापीठ—नं० ६४६ (१३) प्रेमामृतस्तोत्र।
इति श्रीकृष्णचैतन्यमुखपद्मविनिसृतं निजप्रेमामृतं स्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(२) वराहनगर-श्रीभागवताचार्य पाटवाड़ी, ग्रन्थागार (कलिकत्ता) नं० ४७ महाप्रभुकृतं—

(३) काशी नागरीप्रचारिणीसभा—नं० १७ । २ । कृष्णचैतन्य-देव विरचित प्रेमामृतस्तोत्रम् ॥

(४) वृन्दावन, राधारमणजीमन्दिरघेरा गोस्वामिश्रीमधुसूदन-सार्वभौम के ग्रन्थागार—

"निजप्रेमामृतस्तोत्र-श्रीकृष्णचैतन्यदेवमुखपद्मविनिर्गतं"—इसमें श्रीवल्लभाचार्यजी के आत्मज श्रीविट्ठलेशजी के द्वारा विरचित यह सुन्दर व्याख्या मौजूद है। इस व्याख्या के प्रारम्भ में—

"अथ श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रमुखपद्म - विनिसृत निजप्रेमामृतं लिख्यते"। अन्त में—"इति श्रीमच्छ्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रमुखपद्मा-द्विनिसृतं निजप्रेमामृतव्याख्या समाप्तम्" ॥

(५) श्रीवृन्दावन के गोस्वामि श्रीवनमालीलाल के ग्रन्थागार की प्रति में—

"इति श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रमुखपद्मविनिसृत निजप्रेमामृत-स्तोत्रम्"।

(६) जयपुर-श्रीसरसमाधुरीजी के द्वारा प्रकाशित नित्यपाठ संग्रह में—"श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रमुखपद्मविनिर्गत निज-प्रेमामृतस्तोत्रम्"।

(७) हमारे पास मौजूद प्राचीन हस्तलिखित प्रति में—श्रीकृष्ण-चैतन्यचन्द्रमुखपद्मविनिर्गत "निजप्रेमामृतस्तोत्रम्" ॥ इत्यादि ॥

अन्तःस्वाक्ष्य से भी यह स्तोत्र श्रीचैतन्यदेव के द्वारा विरचित होना सिद्ध होता है। श्रीपादजीवगोस्वामि महोदय ने राधा-सम्ब-लित श्रीकृष्ण भजनीय हैं इसका प्रतिपादन करते हुए "श्रीश्री-राधाकृष्णार्च्चनदीपिका" नामक ग्रन्थ लिखा है। उनके शिष्य श्रीलकृष्णदासजी ने श्लोकाकार में परिशिष्ट रूप से इस की विवृति लिखी है। जिस में नवम प्रकाश हैं। उक्त ग्रन्थ विवृति के साथ श्रीहरिदासदास, (हरिबोलकुटीर, नवद्वीप) के द्वारा बंगाक्षर में

प्रकाशित हुआ है । राधाकृष्णभजननिर्णयमय नवम प्रकाश के शेष में प्राचीन महानुभावों के वचनों का प्रमाण रूप से उद्धृत करते हुए श्रीजीवशिष्य कृष्णदास ने प्रमाणित कर दिया है ।

अथ कलियुगपावनावतार श्रीभगवतः—(प्रेमामृतरसायन)

रासोल्लासमदोन्मत्तो राधिकारतिलम्पटः ॥३३॥
अलक्षितकुटीरस्थो राधा-सर्वस्वसम्पुटः ॥२६॥ इत्यादि

पृ० १५५

यह स्तोत्र महाप्रभु चैतन्यदेव के द्वारा विरचित है इस से बढ़ कर अधिक प्रमाण क्या माना जा सकता । अस्तु-आगे किसी समय हम इसका विस्तृत विवेचन करेंगे—

यहाँ एक रहस्य बात कहनी पड़ेगी कि—महाप्रभु के परिकर-प्रधान राधिकावतार श्रीलपण्डितगदाधरगोस्वामिमहोदयने भी "प्रेमामृत" करके एक स्तोत्र लिखा है । जिस का परिचय गोविन्द जी के सेवाधिकारी श्रीराधाकृष्णगोस्वामी महोदय ने "साधन-दीपिका" नामक ग्रन्थ की सप्तम कक्षा में इस प्रकार दिया है—

श्रीहरिदासदासमहोदय, (हरिबोलकुटीर, नवद्वीप) के द्वारा वंगाक्षर में यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है ॥

इदमेव रहस्यम्—

"प्रेमामृतमयस्तोत्रैः पण्डितश्रीगदाधरः ।
स्वरूपगुणमुत्कीर्त्य ब्रजराजसुतस्य हि ॥
पत्रे विलिख्य तद्धीमान् प्रभोः पार्श्वमुपागतः ।
लज्जाभययुतं तन्तु ज्ञात्वा सर्वज्ञशेखरः ।
तद्धस्तात् पत्रमानीय स्तवराजं विलोक्य सः ।
आश्वासयुक्तया वाण्या पण्डितं चावदत् प्रभुः ।
त्वयि कृतो मया पूर्णं शक्तेः सञ्चार एव यत् ।

स्तवराजस्ततोऽयं ते मुखद्वारा प्रकाशितः ।
इत्युक्त्वा श्रीस्तवस्यान्ते स्वनामाप्यलिखत् प्रभुः" ॥

अर्थात्—बुद्धिमान् श्रीगदाधर पण्डितगोस्वामीजी प्रेमामृतमय स्तोत्रों से ब्रजराजनन्दन के स्वरूप-गुणों का कथन करके तालपत्र में लिख कर महाप्रभु के निकट उपस्थित हुए । उनको लज्जित तथा भय युक्त जान कर सर्वज्ञचूड़ामणि महाप्रभु ने उनके हस्त से पत्र को लेकर स्तवराज को देख कर आश्वासयुक्त वाणी से कहने लगे कि—मैंने पहले तुम में शक्ति का संचार किया है जिस से यह स्तवराज तुम्हारे मुख से प्रकाशित हुआ । ऐसा कह कर स्तव के अन्त में प्रभु ने अपने नाम भी लिख दिये ।

स्तोत्र के आरम्भ में—

"विनोदी रसिकः कृष्णः सतृष्णः सरसः सुखम् ।
प्रेमानन्दमयः स्निग्धः सच्चिदानन्दविग्रहः" ॥१॥

शेष में—"यः पठेत् शृणुयादपि स्तोत्रमेतत् सुखावहम् ।
सरसं प्रेम कृष्णस्य त्वरितं लभते ध्रुवम्" ॥२४॥

इति श्रीकृष्णप्रेमामृतं स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥
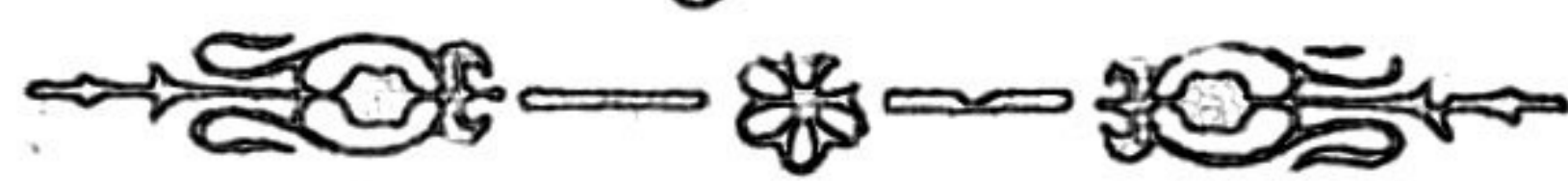
अस्तु—श्रीमन्महाप्रभुगौरांगदव के द्वारा विरचित स्तोत्र-प्रबन्धादि का परिचय इस प्रकार है—

न्यायशास्त्र की टीका—(अद्वैतप्रकाश, १६, परिच्छेद) अप्राप्य

श्रीमद्भागवत की टीका—(अद्वैतप्रकाश० १६ परिच्छेद) अप्राप्य

कलापव्याकरण की टिप्पनी—(चैतन्यभागवत आदिखण्ड दशम-अध्याय) अप्राप्य

विद्यासागरी (विश्वम्भरटीका)—अद्वैतप्रकाश० १३ परिच्छेद—(विष्णुप्रियापत्रिका ६ वर्ष)

आद्यश्लोक—"विकसतु नवकुसुममाली मम हृदि हरिपादपारिजातस्य ।
राहुभयादिव विधुना कायव्यूहो विनिर्म्मितो वियति" ॥

राधाप्रेमामृत वा गोपालचरित— (विष्णुप्रियागौरांगपत्रिका)

श्रीनित्यानन्दाष्टक—(गौरांगसेवक १३२६ कार्त्तिकसंख्या)

श्रीकृष्णस्तोत्र—(८ श्लोक) प्रारम्भ में—

"नवीनमेघशोभकं नवाङ्गनालिमध्यगम् ।
निकुञ्जरत्नमन्दिरं नमामि कृष्णसुन्दरम्" ॥

श्रीराधाकृष्णयुगलपरिहारस्तोत्र—

प्रारम्भ में—"हे सौन्दर्य्यनिदान रूपगरिमन् माधुर्य्यलीलानट" इत्यादि । (विष्णुप्रियागौरांगपत्रिका, गोस्वामीस्तवावली [दीन॰ बन्धुदासजी] साधककण्ठमाला, । वराहनगर पाटवाड़ी से] नित्यक्रियापद्धति, [मत्कर्तृकसंकलित] महाप्रभुग्रन्थावली, [मत्कर्तृक प्रकाशित]

राधारसमञ्जरी—(३० श्लोकात्मक)

प्रारम्भ में—"कुचकलशभरार्त्ता केशरीक्षीणमध्या
विपुलतरनितम्बा पक्कबिम्बाधरोष्ठी" इत्यादि

गोस्वामी अतुलकृष्ण महाराज, (वृन्दावन) के पुस्तकालय में, गो॰ नीलमणिके ग्रन्थागार, भक्तिविद्यालय(वृन्दावन) में, गोस्वामी श्रीकृष्णचैतन्यजी (पाटना) के पुस्तकालय में, गोस्वामी राधाचरनजी (वृन्दावन) महाराज के पुस्तकालय में, वराहनगर पाटबाड़ी में इस की प्रतियाँ मौजूद हैं । हमारे पास भी हस्तलिखित प्रतियाँ हैं । महाप्रभु ग्रन्थावली में हमने इसका प्रकाशन किया है ।

श्रीराधिकाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्—

प्रारम्भ में—श्रीमद्राधा रसमयी रसज्ञा रसिका तथा ।
रासेश्वरी रसभुक्तिः रसपूर्णा रसप्रदा ॥
(विष्णुप्रियागौरांगपत्रिका)

शिक्षाष्टक—(प्रसिद्ध है) कृष्णदास बाबा

श्री श्री गौरांगविधुर्जयति

ब्रजभाषा में

प्रेम भक्ति चन्द्रिका

श्री श्री वृन्दावनदास जी कृत।
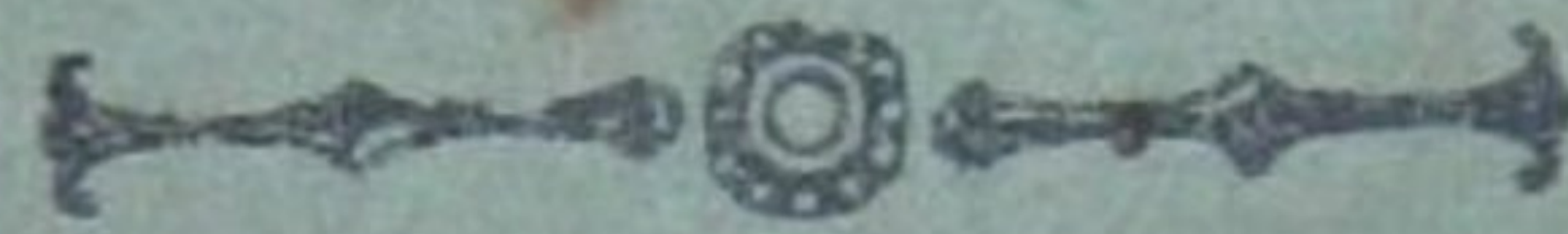
अर्थ सहायक—
गौरनिष्ठ श्रीमान् जगमोहनलाल जी श्रीवास्तव
मध्यभारत न्यायमंत्री (गवालियर)

प्रकाशक—
बाबा कृष्णदास,
कुसुम सरोवर, (गोवर्द्धन) मथुरा।

प्रथमावृत्ति २०००]
सम्वत् [२००७]

॥ श्री श्री गौरांगविधुर्जयति ॥

ब्रजभाषा में

प्रेम-भक्ति-चन्द्रिका

श्री श्री बृन्दावन दास जी कृता।

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
हरे कृष्ण हरे राम राधे-गोविन्द॥
भज—निताई गौर राधेश्याम।
जप—हरे कृष्ण हरे राम॥

अर्थसहायक—

गौरनिष्ठ श्रीमान् जगमोहनलालजी श्रीवास्तव,
न्यायमन्त्री, मध्यभारत (ग्वालियर)

प्रकाशक—

बाबा—कृष्णदास,
कुसुमसरोवर (गोवर्द्धन) मथुरा।

प्रथमावृत्ति १०००]
सम्वत् २००७

दो शब्द !

श्री श्री प्रेम-पुरुषोत्तम कलि-पावनावतार श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की असीम कृपा से यह "प्रेम-भक्ति-चन्द्रिका भाषा" नामक ग्रन्थ-रत्न प्रस्तुत होकर प्रेमी भक्त-जनों के कर कमलों में समर्पित है। इसका मूल ग्रन्थ बंगभाषा में है जिसको पूज्य-पाद श्रीनरोत्तमदास ठाकुर महाशय ने समस्त शास्त्र तथा गोस्वामी-ग्रन्थों का सार लेकर सरल मनोहर भाषा में रचा था। श्रीमाध्व--गौड़ेश्वर सम्प्रदाय के गोस्वामी गणों द्वारा विरचित चार लाख ग्रन्थो का सार उक्त ठाकुर महाशय ने इस आठ पन्ने की पोथी में किस प्रकार रख दिया है सो उसको देखने पर ही पता चलता है। गौड़ीय वैष्णवगणों के नित्य पाठ का यह ग्रन्थ संक्षेप से सरल भाषा में समस्त ग्रन्थों के सार रूप माना जाता है तथा वैष्णव जगत में इसकी पूरी प्रसिद्धि है।

परन्तु यह ग्रन्थ बंगभाषा में होने के कारण एतद्देशीय भक्तों को उपयोगी नहीं हो सकता था। अतः आज से लगभग २०० वर्ष पहिले श्री वृन्दावनदासजी ने तदानिन्तन ब्रजवासी वैष्णवोंकी आज्ञानुसार सरल ब्रजभाषा के अनेक छन्दों में उसके उल्था रूप यह सुन्दर रचना की थी। यह ग्रन्थ हमें "इस विषम कलिकाल रूपी महा मरुभूमि में विचरण करने वाले तृषितजनों

को दैवात् सुधावृष्टि की तरह" अकस्मात् मिल गया है । ग्रन्थ रचयिता वृन्दावनदासजी के बारे में कोई विशेष बात हमें उपलब्ध नहीं है। सम्प्रति खोज में हमें और भी इनके द्वारा रचित "भक्त-नामावली" तथा "विलाप कुसुमाञ्जलि" ब्रजभाषा में मिलेहैं सोभी प्रकाशित होरहे हैं। बाबा बंशीदासजी कालिदह वालों से सर्व प्रथम यह पुस्तक प्राप्त हुई । अतः हम उक्त बाबा महाराज के आभारी है । उपरान्त श्री बाबा केशवदासजी भागवतनिवास रमणरेती के प्रगाढ़ अनुसन्धान से श्री बृन्दावन में पूज्य गोलोक धाम प्राप्त श्री राधाचरण गोस्वामी महोदय की लाइब्रेरी से भी यह ग्रन्थ प्राप्त हुआ है, अतः हम उक्त लायब्रेरी के अध्यक्ष श्री गोस्वामी अद्वैतचरणजी (बच्चूजी) तथा परम प्रोत्साहनकारी पूज्य गोस्वामी श्री दामोदरलालजी (वृन्दावन) महोदय के प्रति भी आभारी हैं।

विनीत—

बाबा कृष्णदास,

कुसुमसरोवर, गोवर्द्धन ।

प्रेमभक्ति चंद्रिका भाषा

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१॥

श्रीचैतन्यमनोभीष्टं स्थापितं येन भूतले ।
स्वयं रूपः कदा मह्यं ददाति स्वपदान्तिकम् ॥२॥

दो०—भावराधिका माधुरी आस्वादन सुखकाज ।
जयति कृष्णचैतन्य जय कलि प्रगटे ब्रजराज ॥३॥

कलि प्रगटायो कृष्ण जिनि सीतापति मम ईश ।
जयति जयति अद्वैत प्रभु दें पदरज मम सीस ॥४॥

भूमि प्रेम ब्रजभूमि महि जिनकौ निलय अनूप ।
रूप सनातन वरनि हों जानि सनातन रूप ॥७॥

सोरठा—दास नरोतम जानि सुखद नाम अभिराम शुभ ।
जग जिहिं ठाकुर ठानि बहुरि महाशय भनत भल ॥६॥

सोभा०—तिन करुणालय भारी । दीन जननि हितकारी ।
लखि लखि जीयनि जाला । कलिमल मलिन विशाला ॥

श्री श्री गौरांगविधुर्जयति

ब्रजभाषा में

प्रियादास जी की ग्रंथावली

रसिकमोहिनी, अनन्यमोदिनी, चाहवेली, भक्तसुमिरिणी

अर्थ सहायक—गौरनिष्ठ, श्रीमान् जगमोहनलालजी श्रीवास्तव,
मध्यभारत, न्याय-मंत्री (गवालियर)।

प्रकाशक—
बाबा कृष्णदास,
कुसुमसरोवर (गोवर्द्धन) मथुरा।

प्रथमावृति १०००]
सम्वत् २००७]

न्यौछावर ।=)

दो शब्द

ग्रन्थकर्त्ता श्री प्रियादास जी का संक्षिप्त परिचय यह है कि आपका जन्म सूरतनगर राजपुरा नामक ग्राम में है। पिता का नाम वासुदेव और माता का नाम गंगाबाई था। आप के जन्म समय का संवत् निश्चित पता नहीं है किन्तु आपके द्वारा रचित प्रसिद्ध भक्तमाल की टीका भक्तिरसबोधिनी ग्रन्थ में उसका समाप्ति समय १७६६ की फाल्गुन वदी सप्तमी तथा रसिक मोहिनी में भी उसका रचना काल सं० १७९४ जो दिया है उससे यह अनुमान किया जा सकता है कि लगभग १७४० सम्वत् से कुछ पहिले आपका जन्म है। यथा समय नवीन उम्र में ही आप श्री वृन्दावन आकर श्री मनोहर देव महाराज जी के शिष्य हुए। शिष्य होने के पश्चात् आपने कुछ काल तक तीर्थाटन भी किया। प्रयाग, चित्रकूट प्रभृति तीर्थ समूह भ्रमण के पश्चात आप जयपुर पधारे। वहाँ गलता गादी का (जहाँ स्वामी नाभाजी ने मूल भक्तमाल की रचना की) दर्शन, और कुछ दिन निवास भी किया। उसी समय आप को नाभास्वामी द्वारा भक्तमाल की टीका लिखने की आज्ञा हुई तब आपने भक्तिरसबोधिनी नामक भक्तमाल की टीका लिखी।

टीका लिखने के पश्चात् आपने अपने गुरुदेव श्रीमनोहर दास जी महाराज को जो कि श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी जी के शिष्य श्री श्रीनिवासाचार्य प्रभुजी के शिष्य थे और उस समय ब्रज में परम-रसिक शिरोमणि करके माने जाते थे भक्तमाल सुनाई। श्री मनोहर दास जी का परिचय आपने टीका में इस प्रकार दिया है -

"रसिकाई कविताई जिन्ही दीनी तिनी पाई भई सरसाई हिये नव नव चाय हैं। उर रंग भवन में राधिका रवन बसैं लसैं ज्यों मुकुर मध्य प्रतिविम्व भाय हैं। रसिक समाज में विराज रसराज कहैं मुख सब फूलैं सुख समुदाय हैं। जन मन हरि लाल मनोहर नांव पायो उनहूँ को मन हरि लीनौ ताते राय हैं॥ ६३० कवित्त।

एक बार प्रियादास जी ब्रज परिक्रमा को चल पड़े । रास्ता में जहाँ आप ठहरते थे तहाँ आपकी भक्तमाल की कथा होती थी । चलते चलते होड़ल में पहुँचे वहाँ लालदास जी नामक बडे सन्त सेवी महन्त जी के स्थान में कथा कहने लगे। उनकी कथा में हजारों श्रोता मन्त्र मुग्ध की तरह आत्म ज्ञान शून्य हो जाते थे। एक दिवस कुछ चोर आकर ठाकुर जी के समेत समस्त सामान उठा ले गये। तब सब कोई कहने लगे कि ठाकुर जी को कथा अच्छी नहीं लगी। यह सुन कर प्रियादास जी बडे व्याकुल होगये और भोजनादि बन्द कर वहाँ से चलने को तैयार हुए। तब लालदास जी प्रभृति सन्त महन्तोंने उनके चरणों में गिर विनती के साथ कहने लगे कि आप यदि यहाँ से जायंगे तो हम सभी आप के साथ चल देंगे न तु वा प्राण त्याग कर देंगे। इस तरह कई दिन अतीत हो जाने पर उधर ठाकुर जी ने उन चोरों को स्वप्न दिया कि तुम मुझे शीघ्र वहीं पहुँचादो अन्यथा तुम्हारा सर्व्वनाश कर दूँगा। तब चोरों ने बड़ी धूम धाम से पालकी में ठाकुर जी को बैठा कर चोरी किये हुए धन से चौगुणा धन साथ में ले कर लालदास जी के स्थान पर आये और प्रिया दास जी के चरणों में लिपट गये। एवं अनुगत हो उस धन से एक बडा भारी उत्सव हुआ। तब से ब्रज में तथा अन्यत्र भक्तमाल की कथा का प्रचार विस्तार भाव से होने लगा। आप नि: सन्देह बडे धुरन्धर पण्डित थे इस विषय में उनके द्वारा बिरचित भक्तमाल की टीका ही गवाही देती है। एक तो विद्या का प्रभाव दूसरा कलि पावनावतार, प्रेम पुरुषोत्तम, भगवान गौरांग देवजू की कृपा कटाक्ष-जिस कृपाकी कणिका मात्र से जगत प्रेम वन्या में डूबकर उथल पुथल हो जाता है तीसरा ब्रज में रसिक सिर मोर श्री गुरुवर मनोहर देव जू का अतुलनीय स्नेह वात्सल्य। इस प्रकार अनेक अद्भुत चरित्र आप के जीवन में दिखने में आये हैं।

यदि श्रीनाभाजी भक्तमाल की रचना नहीं करते और यदि श्री प्रिया दास जी विस्तृत टीका द्वारा सर्वत्र उसका प्रचार नहीं करते तब जगत भक्तामृत रस पान से वञ्चित होकर मृत प्राय हो जाता। आप के (प्रियदासजी) द्वारा रचित मुख्य पाँचों ग्रन्थ उपलब्ध है। अनन्य मोदिनी, चाहवेली, भक्तसुमरिणी, रसिकमोहिनी, और भक्तिरसबोधिनी टीका है। अनन्य मोदिनी में अनन्यता की तथा चाहवेली में उत्कंठा की पराकाष्ठा अतुलनीय है। रसिक - मोहिनी में वृन्दावन से आरम्भ कर समस्त व्रज परिक्रमा का वर्णन किया गया है तथा गोलोक से व्रज की अधिक महिमा दिखाई है। यह प्रियादास जी का अन्तिम ग्रंथ जान पड़ता है। क्यों कि इसका रचना काल स्वयं आपने परिशिष्ट में १७६४सम्वत् वैशाख सुदी तृतीया दिया है। भक्त सुमिरिणी में भक्त माल में आये भक्तों के नाम का क्रम वद्ध उल्लेख किया है यह वैष्णव मात्र के नित्य पाठ करने की अमूल्य वस्तु है। भक्तिरसबोधिनी कवित्त वन्ध भक्तमाल की विस्तृत सुरसीली टीका है। इस में ६५० कवित्त है। प्रियादास जी के इस महाकाव्य के सम्बन्ध में विशेष कुछ कहना पृष्ठपेषण मात्र से सभी साहित्य इतिहासवेत्ता इन ग्रंथ से भली भाँति परिचित हैं। इसकी कवित्त सरस, पदलालित्य, अनुप्रास और यमकों से सजायी गयी है। वेदान्तसूत्र के तुल्य यह सर्वतोमुख, सारवत, सन्देह रहित है जो स्वल्पाक्षर में महान उच्चतम भावों को व्यक्त करती है। यह नाभा जी कृत भक्तमाल की सर्व्वमान्य, सर्वोपरि, निष्पक्ष आदि टीका है। प्राचीन, नवीन समस्त टीका इस टीका के आधार पर लिखी गई हैं आपने स्वयं अपनी कविता का परिचय इस प्रकार दिया है। "रची कविताई सुखदाई लगै निपट सुहाई औ सचाई पुनरुक्ति लै मिटाई है। अक्षर मधुराई अनुप्रास जमकाई अति छवि छाई मोद झरी सी लगाई है। काव्य की बडाई

निज मुख न भलाई होति नाभाजू कहाई याते पौढ़ि के सुनाई है। हिये सरसाई जो - पै सुनिये सदाई यह भक्तिरस बोधिनी सों नाम टीका गाई है ॥ ''

और भी इन के नाम से रचित एक प्राचीन हस्त लिखित पुस्तक हमने काशी नागरी प्रचारिणी में देखी है। जो कि श्री भगवत के चुने हुए सार सार श्लोकों की ब्रज भाषा में उल्था की गयी है। प्रस्तुत पुस्तक में रसिक मोहिनी, अनन्य मोदिनी, चाहबेली, भक्त सुमरिणी नाम की चारों वस्तु रखी गयी हैं। इन में से अनन्य मोदिनी और चाहबेली श्रीजगमोहन लाल श्रीवास्तव (जो वर्त्तमान मध्यभारत के न्यायमन्त्री) के द्वारा पहिले प्रकाशित हो चुकी है। सम्प्रति उन ही महोदय के सम्पूर्ण आर्थिक सहाय और हार्दिक इच्छा से यह "प्रियादास ग्रंथावली" प्रकाशित करने में समर्थ हुए। रसिकमोहिनी कापी श्रीमान् नन्द किशोर जी मुकुट बाले लोई बाजार वृन्दावन से और भक्तसुमिरणी बाबा वंशी दास जी काली दह, वृन्दावन से मिली हैं। अतः उक्त तीनों महोदय से मैं आभारी हूँ। इति।

बा०-कृष्ण दास

कुसुमसरोवर, गोवर्द्धन।

इस पुस्तक के मिलने का पता—

१—श्री राम निवास खेतान की दूकान सवामनशालग्रामजी मन्दिर के नीचे (लोई बाजार) वृन्दावन।

२—बाबा महन्त उद्धारणदासजी, कुसुमसरोवर, गवालियर—मन्दिर, पो० राधा कुण्ड, (मथुरा)।

३—हीरालालजी की दूकान, चौक बाजार, मथुरा (पिआऊ के सामने)।

प्रकाशित प्राचीन पुस्तकें—

(ब्रजभाषा में) १—माधुरी बाणी, २—वल्लभरसिकजी की बाणी, ३—गीतगोबिन्द, ४—गीतगोबिन्द पद, ५—हरिलीला, ६—श्री चैतन्यचरितामृत, ७—गदाधर भट्ट जी की बाणी, ८—सूरदास मदनमोहनजी की बाणी, ९—वैष्णव वन्दना व भक्तनामावली, १०—प्रियादासजी की ग्रंथावली, ११—प्रेमभक्ति चन्द्रिका, १२—विलापकुसुमाञ्जली, १३—गौरांगभूषणमंजावली।

(संस्कृत भाषा में) १—अर्च्चाविधि, २—प्रेमसम्पूट, ३—भक्तिरसतरंगिणी, ४—गोवर्द्धनशतक।

* समर्पण पत्रम् *

श्री श्री राधारमण चरणदास देवस्यानुचर प्रवरस्य
सकल देश प्रसिद्ध कीर्त्तिराशेः, प्रेम मात्र सर्व्वस्व
कृतस्य, निरन्तर सात्विक भावा वल्या
विभूषितस्य, दी न ता सा ग र स्य,
मधुर स्वरालापैः सर्व्वदा गौर
कीर्त्तनकर्त्तुः श्रीरामदासेति
नाम्ना प्रसिद्धस्य, मदीय
आराध्यदेवस्य, श्रीगुरु
देवस्य, बाबाजीमहा
राजस्यप्रीत्यर्थे
समर्पितेयं बाणी।

❀ श्रीश्रीगौरांगविधुर्जयति ❀

सानुवाद

श्रीपदांकदूतम्

श्रीश्रीकृष्णदेवसार्व्वभौमविद्यावागीशमहोदयेन
विरचितम् ।

★

श्रीगोस्वामि राधामोहनशर्म्मणा
विरचितया पदाङ्कदूतविवृत्याख्यया टीकया सहितम् ।

सम्पादक—
अध्यक्ष—हिन्दी विभाग,
म० स० विश्वविद्यालय बड़ोदा ।

प्रथमावृत्ति १०००
फाल्गुन पूर्णिमा
सं० २०१६

प्रकाशक—
कृष्णदासबाबा,
कुसुमसरोवर निवासी (मथुरा)

प्रकाशकस्य वक्तव्यम्

भगवच्चैतन्यमहाप्रभुणा अखिलविश्वजनोपकाराय परिगठिते गौडीयसभापितरत्नागारे सुमहार्घ्याणि दिव्यानि साहित्यरत्नानि परिलसन्ति। यस्मिन् भाण्डारे बहूनि काव्यालंकार-व्याकरण-नाटक-छन्दो-चम्प्वादि शास्त्राणि विराजन्ते। सर्वाणि एतानि भगवत्कृष्णपरत्वात् चमत्कारातिशयं मूर्तानन्दरसवैचित्र्यं परमवैशिष्ट्यं च परिवेपयन्ति। तेषु श्रीरूपप्रभुविरचिते हंसदूतोद्धवसन्देशाख्ये द्वे दूतकाव्ये श्रीनन्दकिशोरगोस्वामि रचितं शुकदूताख्यं विशालं दूतकाव्यं श्रीकृष्णदेवसार्वभौमविरचितं प्रस्तुतमिदं पदांकदूताख्यं दूतकाव्यं एते चत्वारः दूतकाव्याः परिलसन्ति। विरहिण्याः प्रियजनाय किं वा विरहिणा निजप्रियायै सम्वादप्रेषणमेव दूतकाव्यस्य मूलतथ्यम्। यद्यपि कालिदासादिकविवरै विरचितानि मेघदूतादिकानि दूतकाव्यानि सुप्रसिद्धानि तदपि भजनरसपरिपोषकत्वात् भजनपरायणसाहित्यसेविजनानामस्माकमेव इमानि दूतकाव्यानि उपादेयानि। मेघदूतादिकं प्राकृतनायकनायिकामेवावलम्ब्य विरचितमतरस्माकमेव नोपादेयम्। हंसदूतोद्धवसन्देशौ प्राचीनटीकया भाषामयपद्यगद्यानुवादेन च सह देवनागरीलिपिना मया प्राक् प्रकाशितौ। साम्प्रतं पदांकदूतं प्रकाश्य विद्वज्जनेषु समर्पितम्। अस्य टीकाकारः गोस्वामिराधामोहनशर्माख्यः पण्डितप्रवरः। यस्य न्यायादिदर्शनशास्त्रेषु अगाधापारप्रतिभा वर्तते॰स्माभिरस्याः टीकायारनुमिता। बड़ोदाविश्वविद्यालयस्य हिन्दीविभागस्याध्यक्षमहोदयेन कुंवरचन्द्रप्रकाशसिंहेन अस्मिन् ग्रन्थप्रकाशने सम्पादकपदमधिरुह्य तेन दोशब्दाख्यप्राक्कथनेन ग्रन्थसौष्ठवमलंकृतम्। काव्यरसिका विद्वज्जना इदं दूतकाव्यं परिशीलयन्तु हृदयसम्पुटे धारयन्तु च एषा मम महती प्रार्थना।

इति—

प्रकाशक :

कृष्णदास बाबाजी

कुसुमसरोवर निवासी

(मथुरा)

दो शब्द

श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय में श्रीरूपगोस्वामिविरचित हंसदूत तथा उद्धवसन्देश, श्रीनन्दकिशोरजी गोस्वामि विरचित शुकदूत एवं श्रीकृष्णदेव सार्व्वभौमविरचित प्रस्तुत पदांकदूत ये चारि दूतकाव्य हैं। इन दूतकाव्यों की भाषा संस्कृत काव्य-साहित्य के इतिहास में विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखती है। कालिदास के परवर्त्ती भारवि, माघ और श्रीहर्ष आदि चमत्कारप्रिय महाकवियों ने भाषा को अत्यत अलंकृत और कृत्रिम बना दिया था। वे अनुप्रास के प्रचुर प्रयोग के रूप में वर्ण-विन्यास की विशेषता के प्रदर्शन, श्लेष, यमक आदि के द्वारा शब्दों की क्रीड़ा के सर्जन, काव्यार्थापत्ति, परिसंख्या, विरोधा-भास, असंगति के रूप में वाक्य की वक्रता या वचनभंगी के विधान और अनहोनी अथवा दूरारूढ़ कल्पनाओं के विलास को ही कविकर्म की सिद्धि मानने लगे थे। इस परंपरा के कवि अनुभूति की मार्मिकता की उपेक्षा कर उक्ति-वैचित्र्य और शब्द-साम्य के बड़े बड़े खेल-तमाशे जुटाने को ही काव्य का चरम उत्कर्ष समझ बैठे थे। फलतः भाषा और भाव की स्वाभाविकता काव्य की अनित्य धर्म मानी जाकर स्वभावोक्ति नाम का गौण अलंकार मात्र मान ली गई थी। संस्कृत काव्य-क्षेत्र में भाषा और भाव का यह विपर्यय, जो कई शताब्दियों से चला आ रहा था, वृन्दावन के उपर्युक्त गोस्वामित्रय और उनके सहृदय अनुयायियों के द्वारा दूर किया गया। उपरोक्त दूतकाव्यों में जो श्लोक समूह दिए गए हैं, वे पद-पद पर कालिदास की काव्यकला के प्रकर्ष का स्मरण दिलाते हैं। कालिदास की तरह

इन लोगों की रचनाओं में भी माधुर्य, और प्रसाद गुणों एवं वैदर्भी रीति का पूर्ण परिपाक लक्षित होता है। सुन्दर, सरल एवं स्वाभाविक उपमाओं की उद्‌भावना में भी ये लोग कालिदास की ही शैली का अनुसरण करते हैं। इनकी शैली में न तो कहीं दुरूहता है और न शिथिलता। शिखरिणी और मन्दाक्रान्ता जैसे कालिदास के प्रिय छन्दों का प्रयोग भी ये लोग समान सुकरता और संचलता से करते हैं। तात्पर्य यह कि इन भक्त कवियों के संस्कृत-काव्य की भाषा सर्वत्र सरल, सरस, उदात्त, ओजस्वी, मनोज्ञ, एवं व्यंजनापूर्ण है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें भावनाओं को मूर्त्त रूप देने की अद्‌भुत शक्ति है, और वह मार्मिक अंतर्वृत्तियों की अनुरूप व्यंजना के लिए जिस स्वाभाविक लाक्षणिकता का आश्रय लेती है, वह आधुनिक रोमांटिक कवियों की भाषा की चित्रोपमता से स्पर्द्धा करती है। आधुनिक काव्य-शैली के अनेक गुण भी इन कवियों की रचनाओं में स्थान-स्थान पर मिलते हैं।

चमत्कार का प्रयोग उल्लिखित दूतकाव्यों के प्रणेता इन भावुक भक्त कवियों ने भी, अपनी रचनाओं में किया है पर इन कवियों का चमत्कार-प्रयोग किसी न किसी भाव की अनुभूति को तीव्र करने लिए ही किया गया है, केवल वैचित्र्य की सृष्टि उसका लक्ष्य नहीं है। भावानुभूति को तीव्र करने के लिए इन कवियों ने कहीं कहीं मानवीकरण का बड़ा सफल प्रयोग किया है। कृष्णदेव सार्वभौम के इस 'पदाङ्कदूत' का जो प्रथम पद्य है उसमें बताया गया है कि विरहविधुरा कोई इन्दीवराक्षी अर्थात् श्री राधादेवी भ्रान्तिरूपी दूती प्रवंचना द्वारा यमुना के मंजु कुंज को ले जाई जाती हैं। उस कुंज में उन्हें व्रजपतिसुत अर्थात् श्रीकृष्ण को न पाकर मरण कष्ट हुआ

संभवतः वे दशम दशा को प्राप्त हो जाती, पर प्राणप्रियतमा सखी मूर्च्छा ने उनकी रक्षा कर ली। यह मूर्च्छा भङ्ग होने पर ही उनकी दृष्टि उस कुंज भूमि में अंकित श्रीकृष्ण के ध्वज, कुलिश, अंकुश, कंजयुक्त चरण-चिह्न पर पड़ी, और उसे ही उन्होंने अधिरूढ़ महाभाव की दशा में विरह-संदेशवाहक के कार्य में नियुक्त किया—

अप्राप्यैवं व्रजपतिसुतं तत्र कालं कियन्तं
मूर्च्छा प्राणप्रियतमसखी सङ्गता सङ्गमय्य।
तस्योरान्ते कुलिशकमलस्यन्दनाङ्कादियुक्तं
पद्माकारं मुरहरपदश्चारुचिन्हं ददर्श।

जिस समय राधादेवी ने उस चरण-चिन्ह को देखा, उस समय, आकाशमंडल में नवीन मेघ घिर कर बार २ मन्द्र ध्वनि से गर्जन कर रहे थे, जिसे सुनकर उनकी विरह-व्यथा उद्दीप्त हो उठी, और वे विक्षिप्त सी होकर उस प्रज्ञाहीन, वचन रहित, श्रोत्रहीन पदाङ्क से पुनः पुनः दूतकार्य स्वीकार कर लेने का आग्रह करने लगीं—

तस्मिन्नुद्यन्नवजलधरध्वानमाकर्ण्य भूयः
कन्दर्पेण व्यथितहृदयोन्मत्ततुल्या ययाचे।
प्रज्ञाहीनं वचनरहितं निश्चलं श्रोत्रहीनं
दौत्यं कर्तुं मुरहरपदो लक्षणं पंकजाक्षी।

कालिदास का निर्वाचित यक्ष जिस प्रकार आकाश में आषाढ़ के प्रथमदिवस के आश्लिष्टसानु मेघ को देखकर व्याकुल होकर चेतन-अचेतन का विवेक खोकर उसे दूतकार्य में नियुक्त करने के लिए उसकी अनेक प्रकार से प्रशंसा करते हैं, उसी तरह 'पदाङ्क दूत' की विरहिणी भी मुरहर के चरण चिन्ह की अभ्यर्थना कर उसे दूत-कार्य में नियुक्त करती हैं—

रम्यं यावन्मुरहपदं शोभते तावदेव
त्वय्यप्यास्ते कुलिशकमलस्यन्दनाङ्कादि युक्तम्।
गोपीदौत्यप्रकटनभिया सन्निधौ चक्रपाणेः
याने धीर प्रमुखमुखरौ नूपुरौ नो गृहीतः॥

अर्थात् यद्यपि तुमको यह आशंका पहले से ही थी कि ये विरहोन्मत्ता गोपियाँ मुझे दूत बनाकर कृष्ण के पास भेजने का आग्रह करेंगी इसीलिए तुमने अपनी मूकता को प्रमाणित करने के लिए सहज मुखर नूपुरों को धारण नहीं किया है। फिर भी श्री हरि के चरणों की भाँति तुम में कुलिश, कमल, स्यंदन आदि के जो चिन्ह हैं, वे तुम्हारी सर्वत्र गमनक्षमता को सूचित करते हैं। फिर भी यदि तुम चलने में अपनी असमर्थता का प्रदर्शन करना चाहो, तो हमारे हृदय के रूप में तुम्हारे लिए अत्यन्त वेगगामी स्यंदन प्रस्तुत है जिसमें उत्कंठारूप घोड़े जुते हुए हैं। इस पर आरूढ़ होकर तुम सजल मेघ की छाया से सूर्य तेज का निवारण करते हुए जाना। प्रचण्ड किरणों वाला सूर्य भी तुम्हारे ऊपर अपनी किरणों की वर्षा नहीं करेगा, क्योंकि तुम्हारे भीतर कमल स्थित है। अतएव कमल के सखा सूर्य से तुमको खेद या क्लेश होना सम्भव नहीं—

आरुह्यास्मत् हृदयमथवा गच्छ तुङ्गैस्तुरंगै—
सौरंतेजो सजलजलदच्छायया वारणीयम्।
वृष्टिं नैव त्वदुपरि करिष्यत्ययं चंडरश्मिः
खेदाशङ्की सरसिजसखस्त्वद्गताम्भोरुहस्य॥

ऐसी हृदयावर्जक शैली में इस काव्य में दूतकाव्य-परंपरा का सफल निर्वाह, अत्यन्त छोटे चित्रपट पर ब्रजभूमि के प्राकृतिक वैभव का चित्रण, विरह की विभिन्न मनोदशाओं की मार्मिक विश्लेषण, भक्ति की महाभाव आदि परम चरम

स्थितियों का विवेचन और सर्वोपरि भगवच्चरणारविंद के माहात्म्य का निरूपण एक साथ संपन्न हुआ है।

इस काव्य के प्रणेता सार्वभौम श्रील श्रीकृष्णचन्द्र तर्कालङ्कार, महान् रसतत्त्वज्ञ श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती के शिष्य थे। गौड़ीय संप्रदाय में चक्रवर्ती जी वाग्देवतावतार रूप गोस्वामी जी के अवतार माने जाते हैं, इसी से इनका महत्व सिद्ध है। सार्वभौम कृष्णदेवजी ने विश्वनाथ चक्रवर्ती के महाकाव्य 'कृष्णभावनामृत' की सुन्दर टीका लिखी है। रूप गोस्वामीजी विरचित 'विदग्ध-माधव' नाटक की भी इन्होंने टीका की है। कवि और साहित्य-शास्त्र के आचार्य होने के अतिरिक्त ये उच्चकोटि के नैयायिक और दार्शनिक भी थे। इन्होंने बलदेव विद्याभूषण विरचित 'प्रमेयरत्नावली' की 'कान्तिमाला' नामक विद्वत्तापूर्ण टीका लिखी है। इनके समय के विषय में इतना ज्ञात है कि १६२८ शकाब्द में जब बलदेव विद्याभूषण ने जयपुर जाकर ब्रह्मसूत्रों पर गोविंदभाष्य लिखा था, तब सार्वभौमजी भी उनके सहायक के रूप में साथ में थे। गौड़ीय संप्रदाय में ये 'वेदान्तवागीश' और सार्वभौम पंडित कहे जाते थे। 'पदाङ्कदूत' में इनकी विद्वत्ता और रसज्ञता दोनों की मणिकांचन योग घटित हुआ है।

× × ×

उपर्युक्त दूतकाव्यों की संभवतः इसी प्रकार की प्रेरणा से मनोदूत की रचना हुई, जिसमें लौकिक श्रृङ्गार प्रधान दूतकाव्य-परंपरा को शान्तरस की पुष्टि में उपयोग में लाया गया।

परम विद्वान् एवं वीतराग कुसुमसरोवर के वैष्णववर बाबा श्रीकृष्णदासजी ने प्रथम बार 'पदांकदूत' का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत कर हिंदी-जगत् को आभारी बनाया है। बाबाजी ने अन्य अनेक रूपों में भी हिंदी की महत्वपूर्ण सेवा की है।

विज्ञापन और प्रचार से दूर, सर्वथा प्रसिद्धि पराङ्मुख रहकर, उन्होंने चैतन्य संप्रदाय के हिंदी के शताधिक कवियों को विस्मृति के गर्भ से उबारा है, और अपने ही व्यय से उनमें से कुछ रचनाओं को प्रकाशित भी कर दिया है। इन रचनाओं के वैज्ञानिक शोध और संपादन का कार्य भी हमारे विभाग ने आरंभ कर दिया है। इस काम के पूरे हो जाने पर हिंदी-साहित्य के इतिहास में एक नये अध्याय की वृद्धि होगी। उक्त बाबाजी पन्द्रह वर्ष की अल्पायु में ही वृंदावन आगये थे। तब से वे निरंतर ब्रजभूमि में ही भक्ति-साधना कर रहे हैं। उनकी साधना का एक प्रमुख साधन है साहित्य-सेवा। वे उड़िया, संस्कृत, बँगला और हिंदी के प्रकाण्ड पंडित और रसमार्ग के विशेषज्ञ हैं। मैंने देखा है, वे प्रतिदिन कम से कम आठ-दस घंटे लिखने का काम अवश्य करते हैं। उनकी हिंदी में बँगलापन रहता है, जो सर्वथा स्वाभाविक है। इस विशाल देश की राष्ट्र-भाषा हिंदी की प्रादेशिक शैलियों का विकास तो अवश्यंभावी ही है। जिन अहिंदी भाषा भाषी विद्वानों ने आधुनिक काल में हिंदी की सेवा कर उसे समृद्ध बनाया है, उनमें बाबा श्रीकृष्ण-दासजी का स्थान सदैव ऊँचा और आदरणीय रहेगा। यह संस्करण शीघ्रता में प्रकाशित हो गया। अगले संस्करण में हम प्रत्येक श्लोक का पद्यानुवाद भी प्रस्तुत करेंगे। आशा है, सहृदय इस कृति का उचित आदर करेंगे।

कुंवर चन्द्रप्रकाशसिंह
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
म० स० विश्वविद्यालय, बड़ौदा।

वसंत पंचमी,
सं० २०१६

——•०•——

श्रीश्रीभगवते गौरचन्द्राय नमः

श्रीश्रीनारायणभट्ट-चरितामृतम्

श्रीश्रीगोस्वामि जानकीप्रसादभट्टमहोदयेन विरचितम्

卐

बसन्तपञ्चमी (तिथी)
संवत् २०१३
प्रथमावृत्तिः-१०००
मूल्य- ॥)

प्रकाशक--
कृष्णदास बाबाजी
(कुसुमसरोवर वाले)
(मथुरा)

भज—
निताइ गौर राधेश्याम ।

भूमिका

जप—
हरे कृष्ण हरे राम ॥

मध्यकाल में समय पाकर ब्रज-मण्डल के ग्राम, नगर, बन, उपवन, कुञ्ज, कुण्ड, तलाब, देवमूर्ति, लीलास्थली समूह जिन्हें श्रीकृष्ण के प्रपौत्र श्रीवज्रनाभ जी ने प्रभु की लालानुसार यथा रूप से यथा स्थान निर्माण करके निश्चित सबका नाम करण किया था वे पुनः लुप्त होकर केवल ध्वंसावकाश एकाकार घोर जङ्गल मे परिणित होगये थे। हम इसका मूल कारण एक मात्र व्रजविहारि श्री हरि की इच्छा ही मान सकते हैं। वाह्य कारण यह है कि-हिंदूधर्मके विरोधी गजनीपति महमूदादिकने मथुरा मण्डल पर चढ़ाई करके मथुरा-नगरी तथा समस्त ब्रजमण्डल का ध्वंस किया था। पुजारी-सेवक लोग सब म्लेच्छों के भय से कहीं बन के बीच, कहीं कुंआ, नदी या तलाब में कहीं धरती के नीचे देवमूर्तियों को छिपा कर प्राण मात्र ले कर भागे। उस समय म्लेच्छों के प्रलोभन व उत्पीडन से देशवाशी प्रायः हिन्दू धर्म्म से बीतश्रद्ध थे। इस प्रकार कुछ समय बीता। इधर व्रजविहारि श्रीहरि निज आह्लादिनी-शक्ति श्रीराधिका जी के भाव प्रेम का आस्वादन करने के लिये तथा अपने अनर्पित प्रेम महाधन को प्राणी मात्र के लिये प्रदान करने और साथ ही साथ मधुर हरिनाम का जो कि कलियुग का धर्म्म था प्रवर्त्तन कराने के लिये नवद्वीप धाम में गौराङ्ग रूप से प्रकट होकर निज पार्षदों के साथ सङ्कीर्त्तनादिक विविध लीला विनोद कर रहे थे। जब पतितपावन प्रेमावतार प्रभु जीव-उद्धारार्थ सन्यासाश्रम का अवलम्बन कर नीलाचल धाम में विराजित हुए तो आप एक बार ब्रज में पधारे। ब्रज में आकर प्रभु की जो उत्कट प्रेमोन्मादनी दशा हुई उसे अनन्तदेव भी अनन्तकाल पर्य्यन्त वर्णन नहीं कर सकते। निरन्तर हाय हुतास, क्षण-क्षण में मूर्च्छित। तीर्थों का लुप्त होना देखकर आपका हृदय व्याकुल हो गया। फिर भी

सर्व्वज्ञ प्रभु ने ब्रज-भ्रमण किया। वे अनेक स्थानों के भ्रमण के उ
रान्त वृन्दाबन में पधारे। वहाँ "इमलीतला" में बैठकर तथा वृन्दाव
में सर्वत्र भ्रमण करते हुए आपने जो वृन्दाबन रस का आस्वादन कि
उसे स्वयं शारदा भी कोटि-कल्प पर्य्यन्त वर्णन नहीं कर सकती। स
धारण जीवों के द्वारा वह वर्णन अत्यन्त असम्भव है। उनके उत्कट प्रे
मोन्माद को देख ब्रज-आगमन के साथी श्रीबलभद्रभट्ट छल बल से नान
बाहनें दिखाकर बृन्दाबनसे बाहर लाये और प्रभु फिर प्रयाग,काशी होक
नीलीचल के लिये चल दिये। परन्तु ब्रज के लुप्ततीर्थों के उद्धार के लिये
आपकी तीव्र इच्छा बढ़ने लगी। आपने इस विषय में निज अन्तरङ्ग पा-
र्षद श्रीरूप,श्रीसनातन को योग्य जानकर तथा दोनों में शक्ति का सञ्चार
कर लुप्त तीर्थों का प्राकट्य और भक्ति, रस, सिद्धान्तमय ग्रन्थों का नि-
र्म्माण करने की आज्ञा देकर ब्रज के लिये भेजा। दोनों ने ब्रज में आकर
वाराह-पुराणादि नाना शास्त्रानुसार तीर्थों को खोजा और अनेक ग्रन्थों
का निर्म्माण किया। उनके सहयोग के लिये श्रीजीवादिक गोस्वामी-
गण भी आने लगे। वृन्दाबन के तीर्थ प्राय एक-एक उद्धार होने लगे
और बज्रनाभ के द्वारा स्थापित श्रीगोविन्द, श्रीगोपीनाथ, श्रीमदन-
मोहनादिक विग्रह सब एक-एक प्राकट्य होकर स्थापित हो गये। उधर
अचानक प्रभु की अप्रकट लीला हुई। अव्यवधान कुछ समय के पश्चात
प्रभु-प्रेरणा से प्रेरित होकर महामहिम श्रीनारायणभट्ट गोस्वामीजी भी
ब्रज में आये। समस्त इतिहास कारों ने लिखा है कि श्रीचैतन्यमहाप्रभु
के शिष्यों ने ब्रज के तीर्थों को प्रकट किया और प्रमुख देवालयों की
स्थापना की, किंतु इस कार्य्य का अधिकांशश्रेय नारायणभट्टजी को है।
इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। परिशिष्ट देखें। अब हम ब्रजभक्तिवि-
लासदि असंख्य ग्रन्थ के रचनाकार तथा प्रस्तुत इस ग्रन्थके प्रतिपाद्य स्व-
रूप महामहिम गोस्वामी श्रीनारायणभट्ट जी के विषय में कुछ कहते हैं
जो कि उन्हीं भट्टजी की घराने को शिष्य परम्परा में गोस्वामी जानकी

प्रसाद जी के द्वारा रचित प्रस्तुत इस "नारायणभट्टचरितामृत" के आधार पर है। इन्होंने केवल ब्रजतीर्थों का प्राकट्य ही नहीं किया अपितु ब्रज में रासलीलानुकरण का जो कि आजकल की रीति पर चल रहा है उसे सर्व प्रथम प्राकट्य करा कर उसकी धारा को सर्वत्र फैलाया। आज कल ब्रज में तथा अन्यत्र जो रासलीलानुकरण का प्रचलन हो रहा है वह केवल भट्टजी की कृपा से है ऐसा जानना चाहिये। इन्होंने ब्रज की यात्राविधि जो आज कल की रीति पर चल रही है उसे भी सर्व प्रथम आरम्भ किया। यात्रा दो प्रकार की है, बनयात्रा और ब्रजयात्रा। वाराहपुराणादिक विधि से यथा पूर्वक तीर्थों में स्नान, दान, पूजा, भजन, परिक्रमा, स्तुति, उपवास, विश्रामादि करते हुए वनों का भ्रमण बनयात्रा है तथा उक्त प्रकार ब्रज के गाँवों का भ्रमण ब्रजयात्रा है। वैशाख कृष्ण-प्रतिपदा से प्रारम्भ कर श्रावण पूर्णिमा पर्य्यन्त समाप्ति ब्रजयात्रा की विधि हैं। इसमें परिश्रम नहीं होता है, भाद्र कृष्णाष्टमी से लेकर भाद्र पूर्णिमा पर्य्यन्त बनयात्रा की विधि है। ऐसा ब्रजभक्तिविलास में वर्णन है। भट्टजी ने वैष्णवगणों के साथ इसका शुभ प्रारम्भ किया जिसके लिये "ब्रजभक्तिविलास" और "बृहद्ब्रजगुणोत्सव" नामक दोनों ग्रन्थ का निर्म्माण भी किया। मुख्य रूप बरसाने तथा नन्दग्राम में होरि के समय जो होरी अब तक धारावाहिक रूप से प्रतिवर्ष होती चली आ रही है उसका गौरव बढ़ाने वाले व साक्षात् प्रकट करके देखाने वाले श्रीनारायणभट्ट गोस्वामी जी हैं। ब्रज में जहाँ-जहाँ रासस्थली है जिनका उल्लेख ब्रजभक्तिविलास में बनों के अन्तर्गत तीर्थ प्रसंग में स्थान-स्थान पर किया गया है उन सब स्थलों में भट्टजी ने रासमण्डल, हिण्डोलादिक निर्म्माण करवाये। रासस्थली समूह—राधाकुण्ड, शेरगढ़, ऊँचाग्राम, मयूरकुटी और गह्वरवन, यावट, विहारवन, कोकिलावन, कदम्बवन, स्वर्णवन, प्रेमसरोवर, बृन्दावन, करहेला, पिसाई, परासौलि में तथा अन्य भी रासमण्डल

विद्यमान हैं। अकबर के कोषाध्यक्ष राजा-टोडरमल ने इन सब के बनाने में प्रचुर धन लगाया था। उसने भट्टजी के आज्ञानुसार उनके द्वारा उद्धार प्राप्त यावतीय भग्नदेवमन्दिरों के निर्म्माण और उनमें श्री विग्रहों की स्थापना, तथा कुण्ड-तालाबों के खननादि में भी तथा उनमें फिर से सोपान निर्म्माणादि समस्त व्रजउद्धार के कार्य्य में व्यय का भार वहन किया।

भट्टजी के द्वारा रचित ग्रन्थ समूह–

(१) व्रजभक्ति-विलास, (२) व्रजप्रदीपिका, (३) व्रजोत्सवचन्द्रिका, (४) व्रजमहोदधि, (५) व्रजोत्सवाल्हादिनी, (६) बृहत् व्रजगुणोत्सव, (७) व्रजप्रकाश उक्त सात ग्रन्थ आपने श्रीराधाकुण्ड में मदनमोहनजी के समक्ष अपने गुरु श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारी जी के निकट लिखे थे। ऊँचेग्राम में रहते समय आप ने और भी ५२ ग्रन्थों का निर्म्माण किया। श्री मध्वाचार्य्य ने पहिले जो मत प्रचलित किया था जिसे श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु ने पुष्ट किया और श्री गदाधर पण्डित गोस्वामी तथा उनके शिष्य कृष्णदास ब्रह्मचारीजी ने जिस मत का अनुसरण किया था उस मत को अपने गुरु उन ब्रह्मचारीजी से सीखकर श्रीनारायणभट्ट जी ने उसका विस्तार पूर्वक अपने उक्त ग्रन्थों में लिखा है। अपने ग्रन्थ भक्तिभूषणसन्दर्भ में जीवतत्व, जगत्‌तत्व ईश्वरतत्व का निर्णय है। भक्तिविवेक नामक ग्रन्थ में आप ने भजनीय श्रीकृष्ण का निर्णय किया है। उसमें भिन्न-भिन्न प्रकरण है। नामश्रेष्ठनिर्णय, धामश्रेष्ठ निर्णय, भक्तिश्रेष्ठ निर्णयादिक। नामश्रेष्ठनिर्णय में कृष्णनाम की अधिक महिमा, धामश्रेष्ठनिर्णय में व्रज का श्रेष्ठत्व, भक्तिश्रेष्ठनिर्णय में व्रजवासियों का श्रेष्ठत्व प्रतिपादित किया गया है। व्रजोत्सवचन्द्रिका, व्रजोत्सवाल्हादिनी नामक दोनों ग्रन्थ की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ मौजूद हैं। उन दोनों की प्रतियाँ मैंने बरसाने के नित्यधाम प्राप्त गोस्वामी कुञ्जीलालजी के सुपुत्र गोस्वामी श्रीयुगलशास्त्री महाराजके यहाँ देखी हैं। स्वयं भट्टजी ने

अपने व्रजभक्तिविलास में उन दोनों ग्रन्थ के नाम और उसमें जो विषय उसका निर्देश किया है। उक्त दोनों ग्रन्थ बहुत विशाल हैं तथा इनमें तिथी निर्णय के साथ व्रज में प्रचलित समस्त उत्सवों का सविस्तार वर्णन है। भक्तिरसतरंगिणी में समस्त रसों का सविस्तार वर्णन और अधिकारियों का निर्णय है। रसपद्धति जानने में यह ग्रन्थ बहुत उत्तम है। मैं इस ग्रन्थ को अनुवाद सहित सम्वत् २००४ में प्रकाशित कर चुका हूँ। साधनदीपिका में साधन-रूपा भक्ति का सविशेष निर्णय, वैष्णवों की विधि-निषेध विचार, जन्माष्टमी, रामनवमी, एकादशी प्रभृति व्रतों का सविस्तार वर्णन है। इसकी एक प्राचीन प्रति हमारे पास है। भट्टजी ने श्रीमद्भागवत पर रसिकाल्हादिनी टीका का भी निर्म्माण किया। इसके बनाने की आज्ञा संकेतवट में रासलीला गाने के समय साक्षात् प्रकट होकर स्वयं श्री राधारमणजी ने दी थी। रास-पञ्चाध्यायी अंश की टीका मेरे पास मौजूद है। गोस्वामी युगलशास्त्री-जी के यहाँ दशमस्कन्ध के प्रारम्भ से रासपञ्चाध्यायी पर्यन्त की टीका मैंने देखी है। भट्टजी के द्वारा विरचित प्रेमांकुर-नामक नाटक का भी उल्लेख पाया जाता है, जिसमें जन्मादिकलीला, दानलीला, मानलीला, मगरोकनीलीला, परस्पर गाली देने की लीला, भांड़ फोड़नी (मटकी फोड़नी) लीला, हास्य परिहास प्रभृति लीलायें और भी निकुञ्जरचना, निकुञ्जभेद आदिक बहुत बातें वर्णित हैं। बरसाने में भादों में जो बूढ़ी लीला (मटकी फोड़नी) लीला होती है वह इसी ग्रन्थ के आधार पर है। उन्होंने 'बृहत्व्रजगुणोत्सव' नामक विशाल ग्रन्थ की रचना कर जीवजगत का बड़ा भारी उपकार किया। इसके नाम रूप स्वयं आपने व्रजभक्ति विलास में उल्लेख किया है। जिस प्रकार व्रज भक्ति विलास में देवता, तीर्थों के साथ व्रज के समस्त बनोपवनादिकों के सविस्तार वर्णन हैं ठीक उसी प्रकार व्रज के समस्त ग्रामों की लीला, देवता, तीर्थों के साथ सविस्तर वर्णन है। इसमें २६ हजार श्लोक हैं। हम प्रेमांकुर-

नाटक तथा बृहत् ब्रजगुणोत्सव दोनों ग्रन्थ की खोज में हैं। यह दोनों ग्रन्थ मिल जावें तो न जाने जगत् का क्या उपकार हो सकता। 'ब्रज-भक्तिविलास' की संपूर्ति सम्बत १६०६ में श्री राधाकुण्ड पर हुई थी वह बात उक्त ग्रन्थ के परिशिष्ट में स्वयं ग्रन्थकार ने लिखी है। स्वर्गीय, स्वनामधन्य ग्राऊससाहेब ने भी अपनी मथुरा मिमोरियल नामक पुस्तक में उसी समय का उल्लेख किया है।

भट्टजी द्वारा प्राकट्य प्राप्त व स्थापित प्रधान विग्रह समूह--

बरसाना में श्री लाड़िलीजी, ऊँचे ग्राम में बलदेवजी, खायरा में गोपीनाथजी, संकेत में संकेतदेवी और राधारमणजी, शेषशायी में प्रौढ़ानाथ शेषशायीभगवानजी, दाऊजी में बलदेवजी, पेठों में—चतुर्भुज-नारायणजी, आदिबद्रीजी, कामेश्वर महादेवादिक। ऐसे ही तो उन्होंने बज्रनाभ कर्तृक स्थापित बलदेवादिक मूर्ति समूह का उद्धार कर अधिकांश ही स्थापित किया था जो कि बहुत काल से लुप्त हो गये थे। उनमें से कुछ तो कुण्डों में से कुछ कुओं में से व कुछ पृथ्वी के नीचे से निकले थे। तीर्थ उद्धार के समय एक लाड़िलेय स्वरूप आपके सङ्ग में थे। जिसे कि गृहावस्थान काल में गोदावरी के तट पर स्वयं श्रीकृष्ण ने प्रकट होकर ब्रजउद्धार की आज्ञा देते समय प्रदान किया था। तीर्थ उद्धार के समय जब भट्ट जी तीर्थों का स्मरण करते हुए ध्यान करते थे, तब वह स्वरूप साक्षात् होकर बोलि कर सुना देते थे कि यहाँ अमुकतीर्थ, अमुक देवता या अमुक कुण्ड हैं। इस विषय में भक्तमाल के टीकाकार प्रियादासजी कहते हैं कि—

"भट्ट श्री नारायण जू भये ब्रज परायण जाँय जाही ग्राम, तहाँ वृत करि ध्याये हैं। बोलिके सुनावें इहाँ अमुकौ स्वरूप है जू लीला कुण्ड धाम स्याम प्रकट दिखाये हैं।" अब यह लाड़िलेय स्वरूप अलवर रियासत के अन्तर्गत नीमराना नामक स्थान पर विराजित है जिसकी सेवा भट्टजी के घराने के शिष्य परम्परा द्वारा हो रही है।

गुरु परम्परा—श्रीमन्महाप्रभु के पार्षद श्री गदाधर पण्डित गोस्वामी, उनके शिष्य श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारीजी हुए। इन्हीं ब्रह्मचारी जी के शिष्य श्रीनारायणभट्ट गोस्वामी थे। इस विषय में भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास जी कहते हैं कि 'गुसाईं सनातन जू मदन मोहन रूप माथे पधराये कही सेवा नीके कीजिये। जानौ कृष्णदास ब्रह्मचारी अधिकारी भयो भट्ट श्री नारायण जू शिष्य किये रीझिये' इत्यादि। रीवां-महाराज रघुराजसिंह जी रामरसिकावली के ८४७ पृष्ठ में कहते हैं कि—

कृष्णदास की कथा कहैं, अब अति सुख दाई।
जाहि सनातन रहे पूजते सन्त सनातन॥
मदन मोहनै नाम मूर्त्ती सो पाय प्रेम धन।
पूजन कीन्हों भट्ट नारायण शिष्य भये जिन॥

ब्रजभाषा के श्री चैतन्यचरितामृत में जो कि हाल में प्रकाशित हो चुका है श्री सुवलस्यामजी ने अपनी गुरुपरम्परा उठाते हुए कहा है—

मोहि बल बड़ौ श्रीगुसांई ब्रजपति जू को ब्रज में विराजमान सदा अधिकार है। श्रीगोपालभट्ट जू के पद सिर छत्र मेरे ताते ही सन्ताप भाजि गयो निरधार है॥ वाल मुकुन्द भट्ट जू के पद हिय में धारि, श्री युत दामोदर जू देहु रससार है। भट्ट श्री नारायण जू ब्रज के उपासी एक, तिन पर धूरि मेरी जीवनि अधार है॥ प्रणवौं श्री कृष्णदास ब्रह्मचारी अधिकारी मदन गुपाल जू के प्यारे रसरास हैं। महाभाव पगे प्रभु राधिका गदाधर जू दया करो हिये होय चरित प्रकास है॥ इत्यादि॥

प्रस्तुत इस नारायणभट्टचरितामृत में ग्रन्थकार ने श्रीनारायणभट्ट की गुरु व सम्प्रदायप्रणाली का सुन्दर रूप में उल्लेख किया है। तृतीयास्वाद श्लोक ३३ से ४३ श्लोक पर्यन्त पृष्ठ ४६-४७-४८ देखिये।

स्थितिकाल—जन्म समय संवत् १५८८ वैशाख शुक्ल पक्ष नृसिंह-जयन्ती दिवाभाग। बारह वर्षकी वयस में पितृव्य शंकरजी से पाण्डित्य लाभ, १६०२ सम्वत् में ब्रजागमन तथा गुरु ब्रह्मचारी जी के पास

स्थिति, कुछ दिन उनसे संप्रदाय रहस्य की शिक्षा। १६०१ सम्वत् में ब्रजभक्तिविलास की तथा १६१२ संवत् में ब्रजोत्सवचन्द्रिका की संपूर्ति। १६२६ सम्वत् आषाढ़ शुक्ला द्वितीया में श्रीजी का प्राकट्य। अनुमान १७०० सम्वत् से कुछ पहिले वामनजयन्ती के दिवस तिरोधान का समय है।

इस "श्रीनारायणभट्टचरितामृत" के रचयिता उन्हीं भट्टजी की घराने की शिष्य-परम्परा में गोस्वामी जानकी प्रसाद जी हैं। आप श्रीनारायणभट्टजी के स्वप्नादेश प्राप्त होकर इस ग्रन्थ की रचना करने में प्रवृत्त हुए हैं इस बात को आपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में कहा है। आपके पिता का नाम श्रीरघुनाथभट्टगोस्वामीजी हैं, जो कि महाप्रभु के परिकर श्रीरघुनाथभट्टजी से अन्य है तथा श्रीनारायणभट्टजी की वंशपरम्परा में हुए। इस ग्रन्थ के प्रत्येक अध्याय के उपसंहार में आप ने श्रीरघुनाथगोस्वामी के पुत्र करके अपना परिचय दिया है। आपकी वंश परम्परा-(१) श्रीनारायणभट्टजी (२) श्रीदामोदरभट्टजी, (३) श्रीबालमुकुन्दभट्टजी, (४) श्रीगोविन्दभट्टजी, (५) श्रीगोपालभट्टजी, (६) श्रीरघुनाथभट्टजी, (७) श्रीजानकीप्रसादभट्टजी हैं। इस ग्रन्थ का रचनाकाल लगभग १७५० संवत् से लेकर १८००सम्वत् के कुछ पहले इस बीच में है। ग्रन्थकार का जन्म सम्वत् १७२२ में है। यौवन प्रवेश के उपरान्त ही आपने इसका शुभारम्भ किया, ऐसा मान लिया जा सकता है। अनेक ग्रन्थों को समक्ष रख कर इसकी रचना हुई है। अतः यह ग्रन्थ भ्रमादि दोषों से रहित एवं महान् प्रामाणिक रूप है। बहुत दिनों से इसका प्रकाशन करने की महती इच्छा थी। सम्प्रति गुरु-गौराङ्ग की पुनीत कृपा से वह आशा फलरूप में परिणत हुई। परिशेष में बर्षाणा के निवासी गोस्वामी श्रीप्रियालाल जी को हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं कि आपने इसकी प्रतिलिपी प्रदान कर हमें उत्सुक किया। अलमति-विस्तरेण।

विनीत वैष्णवरजःकणप्रार्थी

कृष्णदास.

श्रीश्रीगौरहरिर्जयति

प्रकाशितग्रन्थसंख्या—१३८

बलदेव-विलास

रचयिता—

ज्येष्ठ स्वर्गीय पं० दयाकृष्णशर्मा बलदेव (मथुरा)

सम्पादक—

बिहारीलाल सक्सेना "राकेश" बी० ए० एल० टी० प्रभाकर
साहित्यरत्न हिन्दी विशेषज्ञ, शोधकार्यकर्ता राष्ट्रीय-
महाविद्यालय हा० सै० स्कूल गोवर्धन
मथुरा उ० प्र०

सहायक सम्पादक—

भुवनेन्द्र दत्त शास्त्री भिषगाचार्य बलदेव मथुरा उ० प्र०

प्रकाशक:— व मुद्रक
बाबाकृष्णदास
गौरहरिप्रेस,
कुसुमसरोवर ग्वालियर मन्दिर
राधाकुण्ड (मथुरा)
उ० प्र०

र
तया
२०२३

मूल्य ।)
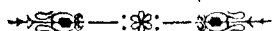
समर्पणम्

जब दयाकृष्ण के उपवन में श्रद्धा के सुमन सुहाये थे ।
थे पुष्प उसी दिन के ये संचित जब तेरे गुन में गाये थे ॥
तभी समर्पित हो न सके जो वस्तु सदा ही तुम्हारी थीं ।
है आज समर्पण उसी वस्तु का दयाकृष्ण ने गाई थी ॥१॥
बलदेवविलास को लेकर के पुष्पांजली सम्हारी है ।
हे शेषावतार ! क्षमा करना लीनी शरण तुम्हारी है ॥
हे अनन्त ! दिवंगत आत्मा को यह सामीप्य तुम्हें ही देना है ।
गुण अवगुण का ध्यान न धर बस यही निवेदन करना है ॥२॥

भावत्क
भुवनेन्द्र भिषगाचार्य श्रीधन्वतरि
चिकित्सालय बलदेव
(मथुरा) उ० प्र०

❀ भूमिका ❀

ब्रजभाषा साहित्य के प्राचीन साहित्यकारों के ग्रंथों पर शोध कार्य करते समय मुझे ज्ञात हुआ कि ब्रजभाषा के प्रसिद्ध जनकवि स्वर्गीय पं० दयाकृष्ण शर्मा राजवैद्य बलदेवनगर (जनपद मथुरा उ० प्र०) अभीतक उपेक्षा के विषय बने हुए हैं । उनके प्रपौत्र पं० होतीलाल शर्मा वैद्यराज ने मुझे उनके हस्तलिखित ग्रंथों की पांडु-लिपियों का अवलोकन कराया जिससे कवि के जीवन परिचय व काव्यसाधना के विषय में यथेष्ट विवरण प्राप्त हुआ ।

जीवन परिचय

स्वर्गीय पं० दयाकृष्णजी का जन्मसंवत् १८५२ विक्रमी में पूज्य (स्वर्गीय) गोस्वामी श्री कल्याणदेवजी के आदि गौड़ अहिवासी ब्राह्मण प्रतिष्ठित कुल में ब्रजमंडल के प्रमुख तीर्थस्थान बलदेव-नगर जिला मथुरा में हुआ था । पंडितजी के पूर्वज सदैव से ही श्रीबलदेवजी के उपासक रहे हैं । श्रीदयाकृष्णजी की शिक्षा दीक्षा घर पर ही हुई । शिक्षा के प्रति इनकी रुचि बाल्यकाल से ही रही । श्रीदयाकृष्णजी अपने समय के प्रतिष्ठित ज्योतिषी और वैद्यों में से थे । कोटा, बूँदी, गुजरात, काठियावाड़ आदि के रजवाड़ों में यह चिकित्सक का कार्य कर चुके थे । उन्हीं लोगों ने इनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर इन्हें "राजवैद्य" की पदवी से विभूषित कर सम्मा-नित किया था । इनके सुपुत्र स्वर्गीय आयुर्वेद मार्तण्ड श्रीयुत श्रीधरजी भी अपने समय के प्रख्यातजनसेवी चिकित्सक व साहित्य-सेवी रहे हैं । इनकी मृत्यु भडौचगुजरात प्रान्त में संवत् १९०२ में हुई थी इस प्रकार इनका रचनाकाल संवत १८६९ से लेकर सम्वत् १९०२ के अन्तर्गत माना जा सकता है । ३३ वर्ष के साहि-त्यिक जीवन में उक्त कवि द्वारा १३ ग्रंथों का निर्माण कवि की काव्यसाधना का द्योतक है ।

साहित्यसाधना व विद्या प्रेम

इनकी ज्योतिषविद्या, आयुर्वेद और हिन्दी साहित्य में गहन आस्था थी। ज्योतिष और आयुर्वेद आदिविषयों के अनेक ग्रथ अन्य राज्यों से मँगवाकर सुयोग्यलेखकों व विद्वानों द्वारा उन्हें हस्त लिखित पाँडुलिपियों में लिपिवद्धकराकरअपने पुस्तकालय में स्थान दिया है जो आज भी उनके वंशजों के पास सुरक्षित है उस समयमुद्रणालयों का सर्वथा अभाव ही था। इनके वंशज आयुर्वेद रत्न श्रीभुवनेन्द्रदत्त भिषगाचार्य बलदेवनगर (मथुरा उ० प्र०) में इनकी स्मृति में श्रीधन्वतरि चिकित्सालय व पुस्तकालय चला रहे है। उन्होंने हमें कई सहस्त्र पुस्तकों का वृहद पुस्तकालय व उनके हस्तलिखित ग्रंथों का अतिस्नेह से निरीक्षण कराया।

"बलदेवविलास में ग्रथकार ने निम्नपंक्तियों में रचनाकाल दिया है इति श्रीबलदेवनिवासी आदि गौड़ अहिवासी विप्रकल्याण वशजसुकवि पडा दयाकृष्णविरचित श्रीबलदेवविलास ग्रथसम्पूर्ण संवत १८६६ मितिमाघकृष्णपक्ष २ सोमवारेलिखितम।"

यह ५४ पृष्ठ की हस्तलिखित अप्रकाशित पुस्तक है जिसमें श्री-बलदेवजी के स्वरूप, महिमा, शृगार, नखशिखवर्णन, झूला, रास-विहार, होली व बलभद्रलीलाओं का वर्णन किया गया है। इतना विशदसाङ्गोपांग लीलाओं का वर्णन एक ही स्थलपरअन्यत्र नहीं मिलता है और न इन जैसा वर्णन कोई कवि कर ही पाया है। श्रीबलभद्र उत्सव और नियमों का प्रचार बलदेव में सर्वप्रथम इन्हीं के द्वारा सम्पन्न हुआ जो कि आज तक प्रचलित है। हलधर सम्बन्धी काव्यों में इसका प्रमुखस्थान रहेगा और यह ग्रंथ हिन्दी साहित्य के अभाव की पूर्ति करेगा ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। पुस्तक पृष्ठ अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय में मंगलाचरण, नखशिख वर्णन, व बलभद्रशृंगारवर्णन है। द्वितीय अध्याय में श्री-

बलभद्रमहिमा, तृतीय अध्याय में श्रीबलराम के ऋतु विहार, हिंडोला, बसन्त ऋतु, व होली का मनोहारी वर्णन है । चतुर्थ अध्याय में महारास, गोपिका बिहार, पंचम अध्याय में श्रीबलरामविनयमाला व षृष्ठ अध्याय में दयाकृष्णजी की वाणी सवैया, कवित्त, दोहा, व राग इत्यादि के द्वारा मुखरित हो उठी है । इनके मौलिक ग्रंथों में अलंकार प्रकाश, शेषनागपिंगल, इश्क दरियाऊ, इश्क चमन, रेखता-झूलना प्रमुख है। लगन, साँगीत, नामस्तोत्र, सप्तश्लोकी, बलदेवाष्टक इत्यादि इनकी फुटकर रचनाएं है इन्होंने हिन्दी साहित्य के १२, आयुर्वेदिक ७, ज्योतिष के १२ और धर्मशास्त्र के ४ प्राचीन हस्त-लिखितग्रंथों को संग्रहित किया है जिससे इनकी संग्रह प्रवृतिका यथेष्ट ज्ञान होता है। आयुर्वेद, ज्योतिषविद्या, धर्म शास्त्रपर इनके अनेक सग्रहीत ग्रंथ आज भी, अप्रकाशित ही पड़े हुए है । इनकी उपदेशात्मक कविताएँ जनसमाज में, आज भी प्रचलित है । इनके कवित्त हलधर अशीतिका, व हलधर वंदना ग्रंथों में (सम्पादक श्रीकन्हैयालाल पांडे एम० ए० प्रकाशक कल्याण सेवा समिति बल-देव मथुरा) प्रकाशित हुए है।

मेरे व बाबा कृष्णदासजी के प्रूफ को भली भाँति देखे जाने पर भी यदि प्रेस की कोई भूल रह गई हो तो विद्वतजन इसके लिये मुझे क्षमा करने की कृपा करेंगे । मैं डा० माधवाचार्यजी अध्यक्ष हिन्दी विभाग सिद्धार्थ कालेज बम्बई का अत्यधिक आभारी हूँ जिनकी सत्प्रेरणा व अदम्य उत्साह ने मेरी साहित्यिक प्रवृति को शोध कार्य की ओर अग्रसर किया। पं० होतीलालशर्मा वैद्यराज ने मेरे बलदेव प्रवासकाल में इस ग्रंथ से सम्बन्धितलीलाओं व कार्य कलापों के विषय में विस्तृत परिचय देकर मेरे शोधकार्य के उत्साह को द्विगुणित किया अतएव वे सर्वथा धन्यवाद के पात्र है। आयुर्वेद रत्न श्रीभुवनेन्द्रदत्त भिषभाचार्य वलदेव नगर ने अत्याधिक परिश्रम

कर पुस्तक की शुद्ध स्वच्छ प्रमाणिक प्रतिलिपि तैयार कर मेरे सम्पादन कार्य को सुलभ किया । अतः मैं उनका अत्यधिक अनुग्रहीत हूँ ।

मैं कुसुम सरोवर वासी बाबा कृष्णदासजी का अत्यधिक आभारी हूँ जिन्होंने मेरी प्रार्थना पर इस पुस्तक के प्रकाशन का भार वहन कर इसे हिन्दी संसार के समक्ष प्रस्तुत किया बिना उनके सहयोग के यह ग्रंथ प्रकाश में न आपाता । बाबाजी ने हिन्दी ब्रजभाषा व संस्कृतसाहित्य के १३० दुर्लभ हस्तलिखित ग्रंथों का प्रकाशन कर हिन्दी साहित्य में एक युगान्तर उपस्थित किया है जो हिन्दी विद्वानों के लिये अनुकरणीय हैं ।

राष्ट्रीयविद्यालय हा० सैं०
स्कूल,गोवर्धन (मथुरा)
उ० प्र०

राधेबिहारीलाल राकेश हिन्दी
विशेषज्ञ, शोधकार्यकर्त्ता
ब्रजसाहित्य

❋ दो शब्द ❋

प्रिय पाठक गण !

आज प्रस्तुत पुस्तक बलदेवविलास को प्रथम बार प्रकाशित देखकर आपको अति हर्ष होगा । इस पुस्तक में श्रीकृष्णग्रज भगवान् हलधर के चरित्र एवं लीलाओं का सुमधुर ब्रजभाषा में इतना विशदविवरण उपलब्ध है जितना कि संभवत अन्यत्र नही मिल सकेगा । यह सर्वविदित है कि कलियुग में बलदेवजी का विशेष महत्व है और सेवासद्य फलदायी है ।

ग्रंथ के रचियता राजवैद्य स्वर्गीय पं० दयाकृष्णजी का जन्म-सौभाग्य से इनके प्रियनगर बलदेव (मथुराजनपद) में आदि गौड़ अहिवासी ब्राह्मण पूज्यपाद १००८ गो० श्रीकल्याणदेवजो के वंश में हुआ था । शेषावतार में आपकी विशेष श्रद्धा व भक्ति थी । इसो भक्तिभावना से प्रेरित होकर अपने इष्टदेव के प्रति अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया । इसके अतिरिक्त ज्योतिष, आयुर्वेद, धर्मशास्त्र इत्यादि विषयों पर भी अच्छा अधिकार था और इन शास्त्रों से सम्बंधित कई मौलिक पुस्तकों की रचना की । आपके द्वारा सस्थापित . चिकित्सालय व पुस्तकालय अभीतक सुचारुरूप से चल रहा है जिसमें स्वर्गीय कविराज की तीन सहस्र हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह है। इनमें अनेक मौलिक एवं संग्रहीत ग्रंथ अभीतक अप्रकाशित ही है और मेरे व अन्य वंशजों के पास सुरक्षित है । चिरकाल से मेरे पिता वैद्यराज प० हीतालाल शर्मा का इस पुस्तक को प्रकाशित कराने की महती आकांक्षा थी । आज स्वर्गीय पूर्वज की आत्मा व डा० माधवाचार्य अध्यक्ष हिन्दी विभाग सिद्धार्थ-कालेज बम्बई की सत्प्रेरणा से यह कार्य पूर्ण हो रहा है । इनकी शेष रचनाएँ भी शीघ्र ही प्रकाशित हो रही है ।

मैं श्रीयुत राधेबिहारीलाल "राकेश" हिन्दी विशेषज्ञ, मथुरा

नगर के प्रख्यात साहित्यकार व शोधकार्यकर्ता का अत्यधिक अनुग्रहीत हूँ जिनके सद्प्रयास द्वारा उक्त ग्रंथ प्रकाशित हो रहा है। पुस्तक के सम्पादन में उनका अपार योगदान रहा है । आप श्री-दयाकृष्णजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर शोधकार्य कर रहे हैं । और उन्हें प्रकाश में लाने की दिशा में सतत प्रयत्नशील है ।

मैं कुसुमसरोवरवासी (राधाकुन्ड जि० मथुरा) पूज्यपाद १००८ बाबा श्रीकृष्णदासजी को नहीं भूल सकता जिन्होंने अत्यधिक व्यस्त होते हुए भी इस पुस्तक का प्रकाशन भार वहन करना स्वीकार किया । अतः वे सर्वथा धन्यवाद के पात्र हैं । बाबाजी ने ब्रजभाषा हिन्दी साहित्य व संस्कृत के १३० दुर्लभ हस्तलिखित ग्रंथों को प्रकाशित किया है ।

विश्वास है बलभद्र भक्तों की साधना में यह पुस्तक उपादेयता पूर्ण सिद्ध होगी और मेरे पूर्वज स्वर्गीय कविराज की आत्मा को शान्ति प्रदान करेगी ।

॥ शुभमस्तु ॥

भवदीय
वैद्यराजभुवनेन्द्रदत्तशास्त्री भिषभाचार्य
श्रीधन्वतरि चिकित्सालय बलदेव
(मथुरा) उ० प्र०

मथुरा के साहित्यकार

ब्रज मथुरा जनपद के गौरवपूर्ण इतिहास व साहित्यकारों की काव्य प्रतिभा का रसास्वादन कराने के उद्देश्य से उक्त ग्रंथ का निर्माण हो रहा है। मथुरा के प्रख्यात साहित्यकार श्रीराधेबिहारीलाल सक्सेना राकेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा उक्त विषय पर साहित्य महोपाध्याय की उपाधि के लिये अन्वेषण कार्य-कर रहे हैं इस जनपद के उत्तम, मध्य, प्रगतिशील नवोदित सभी प्रकार के साहित्यकारों को निसंकोच इस ग्रन्थ में स्थान प्रदान किया जायेगा जिससे यह एक प्रमाणिक ग्रन्थ बन सके।

मथुरा ब्रज प्रदेश में भूतकाल ऐसी अनेक साहित्यिक विभूतियाँ उत्पन्न हुई है जिनके उत्कृष्ट ग्रंथो ने विश्व में इस जनपद का नाम ऊँचाकर इसे यश व गौरव प्रदान किया है। समय के फेर में वे प्रतिभाएँ हमारे मध्य से विलीन हो गई, उनके ग्रन्थ प्राय लुप्त होते जा रहे हैं। व हम उन्हें भूलते जा रहे हैं।

यह एक व्यक्ति का नहीं अनेक सुज्ञ व्यक्तियों व साहित्यिक संस्थाओं का कार्य है और उन्हीं के सहयोग से सर्वांग पूर्ण हो सकता है।

यह कार्य उसी समय हो सकता है जब कि शोधकार्यकर्ता के समक्ष सम्बन्धित साहित्यकारों के जीवन परिचय व उनकी कृतियाँ उपस्थित हो

अत: साहित्यकारों से प्रार्थना है कि अपना साक्षिप्त परिचय, दो प्रतिनिधि रचनाओं व प्रकाशित पुस्तकों की एक एक प्रति शोध-कार्यकर्ता के पास मौ० दसविसा गोवर्धन मथुरा भेजने का कष्ट करे। आशा हैं इस कार्य में साहित्य प्रेमियों व साहित्यकारों का पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा।

(२)

❀ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ❀

* श्रीब्रह्मसंहितादिग्दर्शिनीटीका की भाषा *

महाप्रभुश्रीगौरांगदेववीथिपथिक—
श्रीरामकृपाजी कृता

गोस्वामिश्रीकृष्णचैतन्यदेवोपनामानिजकवि-
विरचित श्रीमद्राधारमणप्रथम-
सिंगाराष्टक सहिता

श्रीराधिकाष्टमी
सम्वत २०१७
न्योंछावर ॥=)

प्रकाशक—
कृष्णदासबाबा,
कुसुमसरोवर निवासी (मथुरा)

नम्र निवेदन

अनादि आदि सर्व कारण कारण सच्चिदानन्द-विग्रह श्री वृन्दावनस्थ श्री श्रीगोविन्द ने सृष्टि के पूर्व श्रीब्रह्माजी को अपना निजीय स्वरूप दर्शन और तत्त्वोपदेश प्रदान कर स्व संप्रदाय प्रणाली की परम्परा प्रचलित की वही आदि संप्रदाय श्री ब्रह्म (श्री मन्माध्व गौडेश्वर) संप्रदाय है।

प्रस्तुत श्री ग्रंथ में 'साध्य' 'साधन'-स्वरूप स्तुति के द्वारा जो 'तत्व' एवं 'रस' वर्णन किया गया है, वह मनन करने के योग्य है। स्वदेशी एवं विदेशी विधर्मियों के विद्वेषात्मक आक्रमणों से यह ग्रंथ अप्राप्य था। जगतपावन, प्रेमपुरुषोत्तम भगवच्छ्री गौरचन्द्र ने दक्षिणयात्रा के फल स्वरूप इस ग्रंथ को प्राप्त किया और अपने प्रिय पार्षद षड् गोस्वामि वर्ग को 'तत्व' प्रचार के लिये प्रदान किया। श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यलीला नवम परिच्छेद में—

महा भक्त गण सह ताहाँ गोष्ठी हैल।
ब्रह्म-संहिताध्याय ताहाँइ पाइल ॥
पुथि पाइया प्रभुर आनन्द अपार।
कम्प-अश्रु-स्वेद-स्तम्भ पुलक विकार ॥
सिद्धान्त शास्त्र नही ब्रह्मसंहितार सम।
गोविन्द महिमा ज्ञानेर परम कारण ॥
अल्प अक्षरे कहे सिद्धान्त अपार।
सकल वैष्णव शास्त्र मध्ये अति सार ॥
बहु यत्ने सेइ पुथि निल लेखाइया।
अनन्त पद्मनाभ आइला हरसित हैया ॥ इत्यादि।

ब्रह्मसंहिता के साथ कृष्णकर्णामृत का भी आपने प्राप्त किया था।

ब्रह्मसंहिता कर्णामृत दुइ पुथि पाञा।
महारत्न प्राय पाइ आइला संगे लईञा ॥ इत्यादि।

नम्र निवेदन

अनादि आदि सर्व कारण कारण सच्चिदानन्द–विग्रह श्री वृन्दावनस्थ श्री श्रीगोविन्द ने सृष्टि के पूर्व श्रीब्रह्माजी को अपना निजीय स्वरूप दर्शन और तत्त्वोपदेश प्रदान कर स्व संप्रदाय प्रणाली की परम्परा प्रचलित की वही आदि संप्रदाय श्री ब्रह्म (श्री मन्माध्व गौडेश्वर) संप्रदाय है।

प्रस्तुत श्री ग्रंथ में 'साध्य' 'साधन'–स्वरूप स्तुति के द्वारा जो 'तत्व' एवं 'रस' वर्णन किया गया है, वह मनन करने के योग्य है। स्वदेशी एवं विदेशी विधर्मियों के विद्वेषात्मक आक्रमणों से यह ग्रंथ अप्राप्य था। जगतपावन, प्रेमपुरुषोत्तम भगवच्छ्री गौरचन्द्र ने दक्षिणयात्रा के फल स्वरूप इस ग्रंथ को प्राप्त किया और अपने प्रिय पार्षद षड् गोस्वामि वर्ग को 'तत्व' प्रचार के लिये प्रदान किया। श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यलीला नवम परिच्छेद में—

महा भक्त गण सह ताहाँ गोष्ठी हैल।
ब्रह्म-संहिताध्याय ताहाँइ पाइल॥
पुथि पाइया प्रभुर आनन्द अपार।
कम्प-अश्रु-स्वेद-स्तम्भ पुलक विकार॥
सिद्धान्त शास्त्र नही ब्रह्मसंहितार सम।
गोविन्द महिमा ज्ञानेर परम कारण॥
अल्प अक्षरे कहे सिद्धान्त अपार।
सकल वैष्णव शास्त्र मध्ये अति सार॥
बहु यत्ने सेइ पुथि निल लेखाइया।
अनन्त पद्मनाभ आइला हरसित हैया॥ इत्यादि।

ब्रह्मसंहिता के साथ कृष्णकर्णामृत का भी आपने प्राप्त किया था।

ब्रह्मसंहिता कर्णामृत दुइ पुथि पाञा।
महारत्न प्राय पाइ आइला संगे लईञा॥ इत्यादि।

इस सिद्धान्त पूर्ण ब्रह्मसंहिता ग्रंथ के काठिन्य को देखकर सर्व साधारण को बोध गम्य हो इस हेतु से अखिलाम्नायज्ञ शिरोमणि दशदिगन्त विजयि श्री मज्जीवगोस्वामि प्रभुवर ने देवभाषा में इसकी टीका की रचना की। श्रीचरण की टीका सरल एवं पांडित्य पूर्ण होने पर भी हृदयंगम करना सहज न था। अतः मूल एवं टीका के भावार्थ को समझाने के लिये विद्वच्छिरोमणि कविवर श्रीरामकृपा जी ने सरस बृजभाषा में पद्यात्मक टीका की रचना कर महान् उपकार किया है। कविवर ने श्री वृन्दावनस्थ श्रीमन्माध्वगौडेश्वराचार्य श्रीराधारमण-सेवाधिकारि श्रीरामकृष्ण गोस्वामी जी की आज्ञा से रचना की है। यथा—

"कठिन संस्कृत जानि टीका यह दिग्शर्शिनी।"
"राम कृष्ण मन आनि भाषा याकी होइ भली॥"
"तासु हेतु पहिचानि राम कृपा भाषा रची।"
"है सज्जन सुखदानि मोहि न दीजौ दोष कछु॥"
"राम कृष्ण एक समै सुखारी। प्रेर्यौ मोकहुँ हृदय विचारी॥"

यह श्रीरामकृष्णगोस्वामी जी श्रीमद्गोपालभट्ट-गोस्वामि प्रभुवर के अधःस्तन षष्ट पीढ़ी में थे। उन्हीं श्रीगुरुदेव की आज्ञा प्राप्त कर अपने इष्टदेव श्रीराधारमण एवं श्रीमच्चैतन्य महाप्रभु की वन्दनाकर ग्रंथ लिखा। ग्रंथकार के संबन्ध में विशेष परिचय प्राप्त न होने से जीवन संबन्ध की घटनाओं का उल्लेख न हो सका, किन्तु किस समय आप विद्यमान थे, य आपकी रचना काल से ज्ञात होता है—

सुर वैद्य अरु युग्म वसु इन्दु सुवत्सर जानु।
आश्विन कृष्ण भानु तिथि शशिसुत वार प्रमानु॥

इसके द्वारा आप १८२२ संवत्सर में विराजमान थे। कवि ने काव्य में सरसता के लिये प्रायतः 'ब्रह्म' 'ब्रह्मा' 'अज' शब्द

का प्रयोग न करके मधुर 'कंजसुत' का व्यवहार कर सरसता दिखलाई है। अस्तु इधर भजन परायण के कारण श्रीगौडीय-वैष्णव गण अपना विपुल संस्कृत, वंगभाषा एवं वृजभाषा, श्रौड़ भाषा के महान् साहित्य ग्रन्थों के विस्मरण से हो गये थे। जिन ग्रन्थों की सूची ६५०० + ७००० के समकक्ष है। समय की गति ने करवट बदली। इस अभाव पूर्ति के लिए हमारे प्रिय सुहृद गौर गत प्राण श्री हरिदासदासजी ने लुप्त ग्रन्थों की खोज प्रारम्भ की और उनको बहुसंख्या से प्रकाशित किया। किन्तु इसीमध्य में श्री गौरसुन्दर ने उनको अपनी सेवा में बुला लिया। यह कार्य अधूरा पड़ा था कि 'हृदि यस्य प्रेरणाया' के द्वारा हमारे वात्सल्य भाजन बाबा कृष्णदास कुसुमसरोवर वाले ने यह महान् बोझा उठाया है। श्रीगौरसुन्दर के प्रेमियों से मेरा अनुरोध है कि वह इन को तन मन और धन से सहायता कर यश के भागी बने। शेष में पुनः श्रीकृष्णदास को शुभाशिः करता हूँ कि वह चिरंजीवी हो और श्रीगौर गौरव ग्रन्थ-माला को भक्तजनों के कंठ में सुशोभित करें। हमारे अत्यन्त स्नेह भाजन, श्रीगदाधर भट्ट वंशज श्रीनंदनन्दन एवं गोपाल भट्टजी दोनों भ्राता अठखम्वा श्री वृन्दावन निवासी के प्राचीन ग्रंथागार से यह ग्रंथ प्राप्त हुआ है इसके लिए प्रकाशक एवं ग्रंथ दाता को अनेकानेक धन्यवाद है।

बड़ौदा विश्वविद्यालय के श्री चैतन्य सम्प्रदाय के हिन्दी कवियों के रिसर्च स्कालर श्रीमान् नरेशचन्द्र जी बंसल, कासगंज वालों ने इस पुस्तक की प्रेस कापी लिखकर बड़ा उपकार किया है।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, रविवार
सं० २०१७ श्री वृन्दावन

निवेदक—
गोस्वामि दामोदराचार्य

व्रजभक्तिविलासं

पुस्तकं

महामहिम भट्टाचार्य्य-

श्रीलनारायणभट्टगोस्वामीविरचितं

अर्थ सहायकः—

सेठ श्रीरामरिखदासजी परसरामपुरिया,

बम्बई वाले ।

० २००८ वसन्तपंचमी
प्रथमावृत्तिः १०००

प्रकाशकः—
बाबा कृष्णदास,
कुसुमसरोवर ।

सूचना !

श्री प्रभु की पुनीत कृपा से अब तक हम कुछ ब्रज–साहित्य की अप्रकाशित पुस्तकें खोज कर सेवा रूप से प्रकाशित कर चुके हैं जो कि सब के आगे उपस्थित हैं। अभी हमारे पास व्रजभाषा व संस्कृतभाषा के अनेक ग्रंथ प्रकाशनार्थ मौजूद हैं। हाल में ही श्री रसजानि वैष्णवदास जी कृत समस्त भागवत जी का दोहा, चौपाई, छंद बद्ध अति सुंदर व सरल एक अनुवाद प्राप्त हुआ है जो कि लगभग २०० वर्ष प्राचीन विशुद्ध ब्रज भाषा में है। भागवत के एक एक श्लोक के साथ मिला लीजिये। सरल यहाँ तक है कि एक साधारण बालक को भी बोध गम्य हो सकता है। समस्त भागवत जी के ऊपर अब तक इस प्रकार का सुंदर अनुवाद उपलब्धि नहीं है। वर्त्तमान समय में इस प्रकार के अनुपम ग्रंथ का प्रकाशन परम आवश्यक है जन साधारण इसे रामायण की तरह पढ़कर गायन कर सकते हैं। यह सप्ताह के लिए भी बड़ी उपयोगी है। प्रभु इच्छा से यह अचानक हमें मिला है। इसे प्रकाशित करने की प्रबल इच्छा है। आशा रखता हूँ कि यह शीघ्र ही प्रकाशित होकर सज्जनों के सामने उपस्थित होगा। आगे प्रभु की इच्छा बलवान है।

निवेदक—

कृष्णदास.

भज—
निताइ गौर राधे श्याम

भूमिका

जप—
हरे कृष्ण हरे राम

मध्यकाल में समय पाकर ब्रज-मण्डल के ग्राम, नगर, बन, उपवन, कुञ्ज, कुण्ड, तलाय,
देवमूर्ति, लीलास्थली समूह जिन्हें श्रीकृष्ण के प्रपौत्र श्रीवज्रनाभ जी ने प्रभु की लीलानुसार यथा
रूप से यथा स्थान निर्माण करके निश्चित सब का नाम करण किया था वे पुनः लुप्त होकर केवल
सावकाश एकाकार घोर जङ्गल में परिणित हो गये। हम इसका मूल कारण एक मात्र ब्रजविहारि
श्री हरि की इच्छा ही मान सकते हैं। वाह्य कारण यह है कि धर्म्मभीरू गजनीपति महमूदादिक ने
मथुरा मण्डल पर चढ़ाई करके मथुरा नगरी तथा समस्त ब्रजमण्डल का ध्वंस किया था। पुजारी
लोक म्लेच्छों के भय से कहीं बन के बीच, कहीं कुंआ, नदी या तलाब में कहीं धरती के नीचे देव-
मूर्त्तियों को छिपा कर प्राण मात्र लेकर भागे। उस समय म्लेच्छों के प्रलोभन व उत्पीड़न से देशवासी
प्रायः हिन्दू धर्म्म से वीतश्रद्ध थे। इस प्रकार कुछ समय बीता। इधर ब्रजविहारि श्रीहरि निजल्हादिनी
शक्ति श्री राधिका जी के भाव प्रेम का आस्वादन करने के लिये तथा अपने अनर्पित प्रेम महाधन को
प्राणी मात्र के लिये प्रदान करने और साथ ही साथ मधुर हरिनाम का जो कि कलियुग का धर्म्म
था प्रवर्त्तन करने के लिये नवद्वीप धाम में गौराङ्ग रूप से प्रकट होकर निज पार्षदों के साथ सङ्कीर्त्तना-
दिक विविध लीला विनोद कर रहे थे। जब पतितपावन प्रेमावतार प्रभु जीव-उद्धारार्थ सन्यासाश्रम
का अवलम्बन कर नीलाचल धाम में विराजित हुए तो आप एक बार ब्रज में पधारे। ब्रज में आकर
प्रभु की जो उत्कट प्रेमोन्मादनी दशा हुई उसे अनन्तदेव भी अनन्तकाल पर्य्यन्त वर्णन नहीं कर सकते।
निरन्तर हाय हुतास, क्षण-क्षण में मूर्च्छित। तीर्थों का लुप्त होना देख कर आपका हृदय व्याकुल हो
गया। फिर भी सर्व्वज्ञ प्रभु ने ब्रज-भ्रमण किया। वे अनेक स्थानों में गये। उनके उत्कट प्रेमोन्माद
को देख ब्रज आगमन के साथी बलभद्रभट्ट छल बल से नाना बाहनें दिखा कर ब्रज से बाहर
लाये और प्रभु फिर प्रयाग, काशी होकर नीलाचल के लिये चल दिये। परन्तु ब्रज के लुप्ततीर्थों के
उद्धार के लिये आपकी तीव्र इच्छा बढ़ने लगी। आपने इस विषय में निज अन्तरङ्ग पार्षद रूप,
सनातन को योग्य जान कर तथा दोनों में शक्ति का सञ्चार कर लुप्त तीर्थों का प्राकट्य और भक्ति, रस,
सिद्धान्त ग्रन्थों का निर्म्माण करने की आज्ञा देकर ब्रज के लिये भेजा। दोनों ने ब्रज में आकर वाराह
पुराणादि नाना शास्त्रानुसार तीर्थों को खोजा और अनेक ग्रन्थों का निर्म्माण किया। उनके सहयोग के
लिये श्री जीवादिक गोस्वामी गण भी आने लगे। वृन्दावन के तीर्थ सब एक-एक उद्धार होने लगे और
श्री गोविन्द, श्री गोपीनाथ, श्री मदनमोहनादिक विग्रह सब एक-एक प्राकट्य होकर स्थापित होगये।
इधर अचानक प्रभु की अप्रकट लीला हुई। अव्यवधान कुछ समय के पश्चात् प्रभु प्रेरणा से प्रेरित
होकर महामहिम श्री नारायणभट्ट गोस्वामी भी ब्रज में आये। समस्त इतिहास कारों ने लिखा है कि
श्रीचैतन्यमहाप्रभु के शिष्यों ने ब्रज के तीर्थों को प्रकट किया और प्रमुख देवालयों की स्थापना की; किंतु
इस कार्य्य का अधिकांश श्रेय नारायणभट्ट जी को है। इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। परिशिष्ट देखें। अब
हम प्रस्तुत ब्रजभक्तिविलास ग्रन्थ के रचनाकार इन्हीं महामहिम गोस्वामी नारायणभट्ट जी के विषय में
कुछ कहते हैं जो कि इन्हीं भट्टजी को घराने की शिष्य परम्परा में गोस्वामी जानकी प्रसाद जी के द्वारा

रचित "नारायणभट्ट चरितामृत" के आधार पर है । इन्होंने केवल व्रजतीर्थों का प्राकट्य ही नहीं किया अपितु व्रज में रासलीलानुकरण का जो कि आज कल की रीति पर चल रहा है उसे सर्व प्रथम प्राकट्य करा कर उसकी धारा को सर्वत्र फैलाया । आज कल व्रज में तथा अन्यत्र जो रासलीलानुकरण का प्रचलन हो रहा है वह केवल भट्टजी की कृपा से जानना चाहिये । इन्होंने व्रज की यात्रविधि जो आज कल की रीति पर चल रही है उसे भी सर्व प्रथम आरम्भ किया । यात्रा दो प्रकार की हैं वनयात्रा और व्रजयात्रा । बाराहपुराणादिक विधि से यथा पूर्वोक्त तीर्थों में स्नान, दान, पूजा, भजन, परिक्रमा, स्तुति, उपवास, विश्रामादि करते हुए वनों का भ्रमण वनयात्रा तथा उक्त प्रकार व्रज के गांवों का भ्रमण व्रजयात्रा है । वैशाख कृष्ण प्रतिपदा से प्रारम्भ कर श्रावण पूर्णिमा पर्य्यन्त समाप्ति व्रजयात्रा की विधि हैं इसमें परिश्रम नहीं होता है-१७६ पृष्ठ देखिये । भाद्र कृष्णाष्टमी से लेकर भाद्र पूर्णिमा पर्य्यन्त वनयात्रा की विधि है । १७७-१८० पृष्ठ देखिये । भट्टजी ने वैष्णव गणों के साथ इसका शुभ प्रारंभ किया जिस के लिये 'व्रजभक्तिविलास' और वृहद् व्रजगुणोत्सव' नामक दोनों ग्रन्थ का निर्म्माण भी किया । मुख्य रूप बरसाने में तथा नन्दग्राम में होरि के समय जो होरी अब तक धारावाहिक रूप से प्रतिवर्ष होती चली आ रहीं है उसका गौरव बढ़ाने वाले व साक्षात् प्रकट करके देखाने वाले श्री नारायणभट्ट गोस्वामी जी हैं । व्रज में जँहा जँहा रासस्थली है जिनका उल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थ व्रजभक्तिविलास में वनों के अन्तर्गत तीर्थ प्रसङ्ग में स्थान-स्थान पर किया गया है उन सब स्थलों में भट्टजी ने रासमण्डल हिण्डोलादिक निर्म्माण करवाये । अकबर के कोषाध्यक्ष राजा टोडरमल ने इन सब के बनाने में प्रचुर धन लगाया था । भट्टजी के आज्ञानुसार उनके द्वारा उद्धार प्राप्त यावतीय भगवद्देवमन्दिरों के निर्म्माण और उनमें श्री विग्रहों की स्थापना, तथा कुण्ड-तालाबों के खननादि में भी तथा उनमें फिर से सोपान निर्म्माणादि समस्त व्रजउद्धार के कार्य्य में व्यय का भार वहन किया ।

भट्टजी के द्वारा प्राकट्य प्राप्त प्रधान तीर्थ समूह—

गोवर्द्धन में-मानसीगङ्गा, कुसुम-सरोवर, गोविन्द-कुण्ड, चन्द्रसरोवरादि । मथुरा में—कंसकारागार, रङ्गभूमि, कन्सवधस्थल, ध्रुवटीला, नारदटीला, सप्तसामुद्रिककूपादिक । गोकुल में-पूतनाखाल, बालक्रीडास्थल, ब्रह्माण्डघाट, रमणवनादिक । वृन्दावन में—रासस्थलादिक । बरसाने में—भानुखोर, प्रियाकुण्ड, (पिलूपोखर) दानगढ़, मानगढ़, विलासगढ़, गहवरवन, सांकरीखोरादिक । ऊँचाग्राम में—देहकुण्ड, त्रिवेणी प्रभृति । काम्यवन में—गयाकुण्ड, काशीकुण्ड, विमलसरोवर, कुरुक्षेत्र, पञ्चतीर्थ, धर्म्मकुण्ड, चौरासी खम्भादिक । और भी आदिबद्री, शेषशायी, व्याससिंहासन, नन्दघाट, चीरघाट, कामाई-करेला प्रभृति गोप-गोपियों का यावतीय ग्राम, संकेत, शय्यास्थान, विहारवन, चरणपाहाड़ि, उद्धववनादिक । विस्तर जानना चाहें तो 'नारायणभट्टचरितामृत' देखिये ।

रासस्थली समूह—राधाकुण्ड, शेरगढ़, ऊँचाग्राम, मयुरकुटी और गहवरवन, यावट, विहारवन, कोकिलावन, कदम्बवन, स्वर्णवन, प्रेमसरोवर, वृन्दावन, करहेला, पिसाई, परासौलि में रासमण्डल है ।

भट्टजी के द्वारा रचित ग्रन्थ समूह—

(१) व्रजभक्ति-विलास, (२) व्रजप्रदीपिका, (३) व्रजोत्सवचन्द्रिका, (४) व्रज महोदधि, (५) व्रजोत्सवाल्हादिनी, (६) वृहत व्रजगुणोत्सव, (७) व्रजप्रकाश उक्त सात ग्रन्थ आपने श्री राधाकुण्ड में मदनमोहन जी के समक्ष अपने गुरु श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारी जी के निकट लिखे थे । ऊँचेग्राम में रहते समय आपने और भी ५२ ग्रन्थों का निर्म्माण किया । श्री मध्वाचार्य्य ने पहिले जो मत प्रचलित किया था जिसे कि श्री कृष्णचैतन्यमहाप्रभु ने पुष्ट किया और श्री गदाधर पण्डित गोस्वामी तथा उनके शिष्य कृष्णदास ब्रह्मचारी ने जिस मत का अनुसरण किया था उस मत को अपने

गुरु इन ब्रह्मचारीजी से सीख कर श्रीनारायणभट्ट जी ने उसका विस्तार पूर्वक अपने उक्त गन्थों में लिखा है। अपने ग्रन्थ भक्तिभूषणसन्दर्भ में जीवतत्व, जगत्तत्व, ईश्वरतत्व का निर्णय है। भक्तिविवेक नामक ग्रन्थ में आपने भजनीय श्रीकृष्ण का निर्णय किया है।

उसमें भिन्न भिन्न प्रकरण है। नामश्रेष्ठनिर्णय, धामश्रेष्ठनिर्णय, भक्तिश्रेष्ठ निर्णयादिक। नामश्रेष्ठनिर्णय में कृष्णनाम की अधिक महिमा, धामश्रेष्ठनिर्णय में ब्रज का श्रेष्ठत्व, भक्तिश्रेष्ठनिर्णय में ब्रजवासियों का श्रेष्ठत्व प्रतिपादित किया गया है। ब्रजोत्सवचन्द्रिका, ब्रजोत्सवाल्हादिनी नामक दोनों ग्रन्थ की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ मौजूद हैं। उन दोनों की प्रतियाँ मैंने बरसाने के नित्यधाम प्राप्त गोस्वामी कुञ्जीलालजी के यहां देखी है। स्वयं भट्टजी ने प्रस्तुत ब्रजभक्तिविलास में उन दोनों ग्रन्थ के नाम और उसमें जो विषय उसका निर्देश किया है। उक्त दोनों ग्रन्थ बहुत विशाल हैं तथा इनमें तिथी निर्णय के साथ ब्रज में प्रचलित समस्त उत्सवों का सविस्तार वर्णन है। भक्तिरसतरंगिणी में समस्त रसों का सविस्तार वर्णन और अधिकारियों का निर्णय है। रसपद्धति जानने में यह ग्रन्थ बहुत उत्तम है। मैं इस ग्रन्थ को अनुवाद सहित सम्वत २००४ में प्रकाशित कर चुका हूँ। साधनदीपिका में साधन रूपा भक्ति का सविशेष निर्णय, वैष्णवें की विधि निषेध विचार, सविस्तार जन्माष्टमी, रामनवमी, एकादशी प्रभृति व्रतों का वर्णन है। इसकी एक प्राचीन प्रति हमारे पास है। भट्ट जी ने श्री मद्भागवत पर रसिकाल्हदिनी टीका का भी निर्म्माण किया।

इसके बनाने की आज्ञा संकेतवट में रासलीला गाने के समय साक्षात् प्रकट होकर स्वयं श्री राधारमणजी ने दी थीं। रासपञ्चाध्यायी अंश की टीका मेरे पास मौजूद है। गोस्वामी कुञ्जीलाल के यहां दशमस्कन्ध के प्रारम्भ से रासपञ्चाध्यायी पर्य्यन्त की टीका मैंने देखी है। भट्टजी के द्वारा विरचित प्रेमांकुर नामक नाटक का भी उल्लेख पाया जाता है, जिसमें जन्मादिकलीला, दानलीला, मानलीला, मगरोकनी-लीला, परस्पर गाली देने की लीला, भांड़ फोड़नी (मटकी फोड़नी) लीला, हास्य परिहास प्रभृति लीलायों और भी निकुञ्जरचना, निकुञ्जभेद आदिक बहुत बातें वर्णित हैं। बरसाने में भादों में जो बूढ़ी लीला (मटकी फोड़नी) लीला होती है वह इसी ग्रन्थ के आधार पर हैं। उन्होंने वृहत 'ब्रजगुणोत्सव' नामक विशाल ग्रन्थ की रचना कर जीवजगत का बड़ा भारी उपकार किया। इसके नाम रूप स्वयं आपने ब्रजभक्ति विलास में उल्लेख किया है। १७७ पृष्ठ देखिये। जिस प्रकार ब्रज भक्ति विलास में देवता, तीर्थों के साथ ब्रज के समस्त वनोपवनादिकों के सविस्तार वर्णन हैं ठीक उसी प्रकार ब्रज के समस्त ग्रामों की लीला, देवता, तीर्थों के साथ सविस्तर वर्णन है। इसमें२६ हजार श्लोक हैं। हम प्रेमांकुरनाटक तथा वृहत् ब्रजगुणोत्सव दोनों ग्रन्थों की खोज में हैं। यह दोनों ग्रन्थ मिल जावें तो न जाने जगत् का क्या उपकार हो सकता। 'ब्रजभक्ति-विलास' की संपूर्ति सम्वत १६०६ में श्री राधाकुण्ड पर हुई थी वह बात उक्त ग्रन्थ के परिशिष्ट में स्वयं ग्रन्थ-कार ने लिखी है। स्वर्गीय, स्वनामधन्य ग्राउस साहेब ने अपनी मथुरा मिमोरियल नामक पुस्तक में कहा है—

The perambulation is the one ordinary performed and included all the most popular shrines but a few more elaborate enumeration of the holy places of Braj is given in a sanskrit work exist ing only in manuscript entitled Braja-Bhakti Vilas. It is of no great antiquity having been completed in the year 1553 A. D.by Narain Bhatt who has been already mentioned. (Page No. 102 Type)

भट्टजी द्वारा प्राकट्य प्राप्त व स्थापित प्रधान विग्रह समूह—

बरसाना में श्री लाड़िलीजी, ऊँचे ग्राम में बलदेवजी, खायरा में गोपीनाथजी, संकेत में संकेतदेवी और राधारमणजी, शेषशायी में प्रौढ़ानाथशेषशायीभगवानजी, दाऊजी में बलदेवजी, पेठों में-चतुर्भुज

नारायण जी, मथुरा में महाविद्या, दीर्घविष्णु, महाविष्णु, वाराहभगवानादिक। आदिबद्रीजी, कामेश्वर महादेवादिक। ऐसे ही तो उन्होंने बज्रनाभ कर्तृक स्थापित बलदेवादिक मूर्त्ति समूह का उद्धार कर अधिकांश ही स्थापित किया था जो कि बहुत काल से लुप्त हो गये थे। उनमें से कुछ तो कुण्डों में से कुछ कुओं में से व कुछ पृथ्वी के नीचे से निकले थे। तीर्थ उद्धार के समय एक लाड़िलेय स्वरूप आपके सङ्ग में थे। जिसे कि गृहावस्थान काल में गोदावरी के तट पर स्वयं श्री कृष्ण ने प्रकट होकर व्रजउद्धार की आज्ञा देते समय प्रदान किया था। तीर्थ उद्धार के समय जब भट्ट जी तीर्थों का स्मरण करते हुए ध्यान करते थे तब वह स्वरूप साक्षात् होकर बोलि कर सुना देते थे कि यहां अमुकतीर्थ, अमुक देवता, या अमुक कुण्ड है। इस विषय में भक्तमाल के टीकाकार प्रियादासजी कहतेहैं कि—

'भट्ट श्री नारायण जू भये व्रज परायण जांय जाही गाम,तहां व्रत करि ध्याये हैं। बोलिके सुनावें इहां अमुकौ स्वरूप है जू लीला कुण्ड धाम स्याम प्रकट दिखाये हैं।' अब यह लाडिलेय स्वरूप अलवर रियासत के अन्तर्गत नीमराना नामक स्थान पर विराजित है जिसकी सेवा भट्टजी के घराने के शिष्य परम्परा द्वारा हो रही है।

गुरु परम्परा—श्रीमन्महाप्रभु के पार्षद श्री गदाधर पण्डित गोस्वामी, उनके शिष्य श्री कृष्णदास ब्रह्मचारी हुए। इन्हीं ब्रह्मचारी जी के शिष्य श्रीनारायणभट्ट गोस्वामी थे। इस विषय में भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास जी कहते हैं कि 'गुसाई' सनातन जू मदन मोहन रूप माथे पधराये कही सेवा नीके कीजिये। जानौ कृष्णदास ब्रह्मचारी अधिकारी भयो भट्ट श्री नारायण जू शिष्य किये रीझिके'। इत्यादि। रीवांमहाराज रघुराजसिंह जी रामरसिकावली के ८४७ पृष्ठ में कहते हैं कि—

कृष्णदास की कथा कहैं, अब अति सुख दाई। जाहि सनातन रहे पूजते सन्त सनातन॥
मदन मोहनै नाम मूर्त्ती सो पाय प्रेम धन। पूजन कीन्हों भट्ट नारायण शिष्य भये जिन॥

व्रजभाषा के श्री चैतन्यचरितामृत में जो कि हाल में प्रकाशित हो चुका है श्री सुबलस्यामजी ने अपनी गुरुपरम्परा उठाते हुए कहा है—

मोहि बल बड़ौ श्रीगुसांई व्रजपति जू को व्रज में विराजमान सदा अधिकार है।
श्री गोपाल भट्ट जू के पद सिर छत्र मेरे ताते ही सन्ताप भाजि गयो निरधार है॥
बाल मुकुन्द भट्ट जू के पद हिय में धारि श्री सुत दामोदर जू देहु रससार है।
भट्ट श्री नारायण जू व्रज के उपासी एक, तिन पर धूरि मेरी जीवनि अधार है॥
प्रणावौं श्री कृष्णदास ब्रह्मचारी अधिकारि मदन गुपाल जू के प्यारे रसरास हैं।
महाभाव पगे प्रभु राधिका गदाधर जू दया करो हिये होय चरित प्रकास है॥ इत्यादि॥

श्री नारायणभट्टचरितामृत में—

श्री मन्नारायण, श्री ब्रह्मा, श्री नारद, श्री वेदव्यास, श्री मध्वाचार्य, श्री पद्मनाभ, श्री नरहरि, श्री माधव, श्री अक्षोभ, श्री जयतीर्थ, श्री ज्ञानसिन्धु, श्री महानिधि, श्री विद्यानिधि, श्री राजेन्द्र, श्री जयधर्म, श्री ब्रह्मण्य, श्री पुरुषोत्तम, श्री व्यासतीर्थ, श्री लक्ष्मीपति, श्री माधवेन्द्र, श्री ईश्वर। आगे—

ईश्वराख्यपुरीं गौर उररी कृत्य गौरवे। जगदाप्लावयामास प्राकृताप्राकृतात्मकम्।
स्वीकृतो राधिकाभावो कान्तिः पूर्वं सुदुष्करः। अन्तर्बहिरसांभोधिः श्री नन्दनन्दनोऽपि सन्॥
गौरः श्री कृष्णचैतन्यः प्रख्यातः पृथिवीतले। श्रीचैतन्यस्य शिष्योऽभूत् पण्डितः श्रीगदाधरः॥
श्रीराधायाः स्वरूपोऽयं कृष्णभक्तेः प्रवर्त्तकः। गदाधरस्य शिष्योऽभूत् कृष्णदासो मुनीश्वरः॥
इन्दुलेखावतारोऽयं ब्रह्मचारीति यं विदुः। तस्य शिष्यो भवच्छ्रीमान्नारदो भट्टरूपधृक्॥
श्री नारायणभट्टोऽसौ प्रख्यातो पृथिवीतले॥

विशेष जानने की इच्छा हो तो उक्त नारायणभट्ट चरितामृत देखिये।

शिष्यपरम्परा व वंशज—

मुख्य शाखा—सर्व श्री नारायणभट्ट, दामोदरभट्ट, बालमुकुन्दभट्ट, गोविन्दभट्ट,गोपालभट्ट (महाप्रभु के पार्षद गोपालभट्ट गोस्वामी जी से अन्य) व्रजपतिभट्ट, यदुपतिभट्ट विद्यापतिभट्ट, मुरलीधरभट्ट, नत्थीलालजी, कृष्णगोपालजी तथा हरिगोपालजी (इन्हीं के पास नीमराना में लाडिलेय स्वरूपजी हैं) । भट्ट गोस्वामी जी के और भी अनेक शिष्य प्रशिष्य हुए । शिष्यों में बलभद्री भाटोटिया नारायणदास जी, श्रोत्री श्री स्वामी नारायणदास जी, मथुरादास जी, लोकनाथ जी, दामोदरदास जी प्रभृति मुख्य रहें । श्रीदामोदरभट्ट गोस्वामी जी भट्ट गोस्वामी जी के पुत्र व शिष्य थे और गद्दी के मालिक हुए। नारायणदास श्रोत्री जी श्रीजी के सेवक हुए जिन्ह के वंशज बरसानेके गोस्वामीगण ही अत्र लाडिलीजी की सेवा के मालिक हैं । यह सब गोस्वामीगण सरल हृदय के भोरे भारे महापुरुष प्रकृति के हैं और श्रीजी तथा अपने संप्रदाय में अनन्यनिष्ठा रखने वाले हैं । अन्यत्र प्रचुर ऐश्वर्य्य वैभव देखने परभी वीतराग (अपने अविचल) हृदयहैं । बलभद्री नारायणदास विरक्त रहें । उनके शिष्य गोविन्ददासजी, श्यामदासजी, कृष्णदास प्रभृति हुए । गंगाबाई नाम्नी एक शिष्या भी थी, जो कि जगन्नाथ जी की मालासेवा करती थी तथा वहाँ प्रसिद्धा रही । उक्त चरितामृतकार के मत में भक्तमाल प्रसिद्ध श्रीमीरा मथुरादास जी की शिष्या थी । इसकी गम्भीर खोज होनी चाहिये । इस प्रकार आप की बहुत शाखा प्रशाखा जगत में छा गईं । व्रज के समस्त ग्रामों में ब्राह्मण और व्रजबासीगण इन्हीं भट्ट गोस्वामीजी के शिष्य प्रशिष्यों में हुए। किन्तु समय के अनुसार आज कल अनेक परिवर्त्तन हो रहा है ।

स्थितिकाल—जन्म समय संवत् १५८८ वैशाख शुक्ल पक्ष नृसिंहजयन्ती दिवाभाग । बारह वर्ष की वयस में पितृव्य शंकर जी से पाण्डित्य लाभ, १६०२ सम्वत् में व्रजागमन तथा गुरु ब्रह्मचारी जी के पास स्थिति, कुछ दिन उनसे संप्रदाय रहस्य की शिक्षा । १६०६ सम्वत् पहिले ही व्रजतीर्थों का उद्धार । १६०६ सम्वत् में व्रजभक्तिविलास की तथा १६१९ संवत् में व्रजोत्सवचन्द्रिका की संपूर्ति । १६२६ संवत् आषाढ़ शुक्ला द्वितीया से श्रीजी का प्राकट्य । अनुमान १७०० संवत् से कुछ पहिले वामनजयन्ती के दिवस तिरोधान का समय है ।

पिता माता तथा देश का परिचय—

दक्षिण देश में मदुरापत्तन में भृगुवंशी, श्रीवत्सगोत्रीय, ऋग्वेदी, भैरव नामक महा विद्वान् तैलंग ब्राह्मण रहते थे । वे मध्वमतावलम्बी वैष्णव और बड़े कृष्ण भक्त हुए । उन के रंगनाथ नामक एक पुत्र था, जिनका चरित्र भविष्योत्तर पुराण में मौजूद है । उनके भट्ट भास्कर नाम से प्रसिद्ध पुत्र हुआ था । भट्ट भास्कर जी के दो पुत्र हुए, ज्येष्ठ का नाम गोपाल, कनिष्ठ का नाम नारायण । यह नारायण हमारे चरित्र नायक व्रजाचार्य्य श्री नारायणभट्ट गोस्वामी हैं । आप नारद जी के अवतार माने जाते हैं । रंगदेवी जी का आवेश भी इनमें हैं । आपने प्रस्तुत इस ग्रन्थ की रचना कर जगत् का बड़ा भारी उपकार किया । इसमें मुख्यतया देवता, तीर्थों के साथ बनों की यात्रा विधि है । व्रज की यात्रा करने वाले सज्जनों का यह परम आदरणीय तथा एकान्त अवलम्बन रूप ग्रन्थ है । अधिक क्या कहें सामने रखा है जो कोई चाहें देख ले सकता है ।

सम्प्रदाय रहस्य व सिद्धांत—

मन में सदा सर्वदा गोपीभाव का चिन्तन, निरन्तर श्री राधिका के साथ श्रीकृष्ण का भजन

तथा प्रीति पूर्वक उनके नामों का भावानुकूल कीर्त्तन। वृन्दावन में श्रीकृष्ण सर्वदा राधादिक परिकरों के साथ द्विभुज रूप से विराजमान रहते हैं। वे वृन्दावन छोड़कर अन्यत्र क्षण भर भी नहीं जाते हैं। समस्त धर्म्म कर्म्म परित्याग कर केवल श्रीकृष्ण का आश्रय करना ही परम श्रेयः है। श्रीकृष्ण की आज्ञा से श्रीबलदेवजी कृपा वितरण करने में निरन्तर उत्सुक हैं। श्री राधिका के साथ श्रीकृष्ण की उपासना परम कर्त्तव्य है। श्रीकृष्ण सब के सेव्य तथा ब्रह्मादिक उनके सेवक हैं। जो दोनों का ऐक्य करते हैं सो महामुग्ध है। साधन अवस्था में जीव, सिद्धि अवस्था में ब्रह्म ऐसे कहने वाले श्रीकृष्ण माया से मोहित होकर बहिर्मुख समझे जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों का संग नहीं करना चाहिये, क्योंकि उससे बुद्धि नाश हो जाती है। जब शिव, ब्रह्मादिक प्रभु के नित्य सेवक हैं तथा शुक, सनकादिक नित्य प्रभु का भजन करते हैं तब तुच्छ जीव उनके साथ किस प्रकार एक हो सकता है। जीव अणु और अल्पज्ञ है। भगवान् सर्वज्ञ तथा परिपूर्ण हैं। नहीं जीव सर्वज्ञ परिपूर्ण हो सकता है व भगवान् अणु, अल्पज्ञ हो सकते हैं। नहीं दोनों अपने स्वधर्म्म को परित्याग कर सकते हैं। तो किस प्रकार भाग त्याग पूर्वक लक्षणा घट सकती है। जब परस्पर दोनों में नित्य विरुद्ध धर्म है तब किस प्रकार ऐक्य हो सकते हैं। तत्वमसि प्रभृति वाक्यों का समन्वय द्वैत में ही घटता है। नारायणादिक और श्रीकृष्ण स्वरूपतः अभिन्न होने पर भी रसाधिक्य के कारण श्रीकृष्ण की उपासना ही सर्वोपरि है। इस प्रकार श्रीकृष्ण के धाम, परिकर, लीलादिक समस्त ही सर्वोपरि जानना। प्रभु के धाम, परिकर, लीलादि समस्त ही नित्य हैं। उनका दिव्यत्व अनुभव केवल दिव्य ज्ञान से ही हो सकता है। चर्म्मचक्षुः से प्रपञ्च अनुभव होने पर भी वे समस्त वास्तविक प्रपञ्च नहीं हैं। जीव प्रभु की तटस्था शक्ति है। शक्ति शक्तिमान् अभेद है, इस अंश में दोनों का अभेद हो सकता है। विशेष जानना चाहें तो "नारायणभट्ट-चरितामृत" देखें।

श्रीगुरु गौरांग की पुनीत कृपा से हम इस ब्रजभक्तिविलास ग्रन्थ का सानुवाद प्रकाशित करने में समर्थ हुए। जिसमें महामना उदार हृदय सेठ (रामरिखदास जी परसराम पुरिया) बम्बई वालों की परिपूर्ण सहानुभूति हमें प्राप्त हुई। कोसी निवासी सेठ चेतराम (चतुर्भुज जी) की हार्दिक चेष्टा से यह महान् से महान् कार्य्य सम्पन्न हुआ है। धर्म्म परायण इन दोनों महानुभावों को हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं कि आप दोनों सर्वदा प्रभु के निकट में रहें तथा ब्रजयात्रा करने वाले सज्जनों का स्मरण पात्र बनें। इस ग्रन्थ की प्राचीन हस्तलिखित एक प्रति जो कि सम्वत् १८५१ में लिखी गई है बरसाने के निवासी गोस्वामी रेवतीलाल जी से पश्चात् वहाँ के निवासी प्रियवर गोस्वामी प्रियालालजी व गोपाल लाल जी से एक नूतन प्रति, वृन्दावन के निवासी गोलोक गत गोस्वामी राधाचरणजी की लाईब्रेरी से एक प्रति प्राप्त हुई। काशी सरस्वती विद्यापीठ लाईब्रेरी में तथा ब्रज के ब्रजवारीग्राम में पण्डित श्रीधरजी के पास भी एक एक प्रति मौजूद है। प्राचीन होने के कारण इन सब प्रतियों में संस्कृत दृष्टि से यथेष्ट लिपि प्रमाद है। तो भी "यादृशं पुस्तकं दृष्ट्वा तादृशं लिखितं मया" इस न्याय को अवलम्बन कर न जाने क्या पुराणों के प्रयोग होंगे इस कारण से सोधन करने में असमर्थ रहा। अनुवाद सोधन के विषय में मथुरा निवासी प्रियवर रामनारायणजी लोकसाहित्यप्रेस के मैनेजर से संपूर्ण सहायता मिली। इति शम्।

निज अनर्पित चरी प्रेम रस भरि-भरि, कृपा चषक में डारि पिबावत जग जन।
राधा-भाव चाखने को चाह सों चकित मति, पारिषद गण लै कै नाचें निज कीरतन॥
पतित निंदुक भंड अभिमानी रु पाखंड, प्रेम बस गावैं रोवैं ह्वै के सब शुद्ध मन।
तब मन कन्दरा के मन्दिर में राजहु है, शची जू का सरवस श्री हरि के गौर तन॥

विनीत—कृष्णदास।

अध्याय सूची—

कुसुमसरोवर,
(गोवर्द्धन)

प्रकाशक—
बाबा--कृष्णदास.

❀ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ❀

卐 भाषाभागवत 卐

(समाहात्म्य प्रथम एवं द्वितीय स्कन्ध)

महाप्रभु-गौरांगदेववीथिपथिक—

श्रीश्रीरसजानि वैष्णवदासजी विरचित

झूलनतृतीया
सम्वत् २०१७

प्रकाशक—
कृष्णदासबाबा,
कुसुमसरोवर निवासी (मथुरा)

॥ बड़े बाबाजी श्रीश्रीराधारमणचरणदासदेवो जयति ॥

भज–निताइ गौर राधेश्याम ।
जप–हरे कृष्ण हरे राम ॥
श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द ।
हरे कृष्ण हरे राम राधे गोविन्द ॥

-कृष्णदास

भूमिका

प्रस्तुत भाषाभागवत के रचयिता श्रीरसजानिवैष्णवदास जी का संक्षिप्त परिचय यह है कि आप भक्तमाल के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीप्रियादास जी के पौत्र तथा परम भागवत श्रीहरिजीवन जी के शिष्य थे। स्वयं आपने भागवतमाहात्म्य के परिशिष्ट में लिखा कि—

श्रीप्रियादास रसरासि कौ पौत्र वैष्णवदास।
ताही कौ रसजानि तिन कीनौं नाम प्रकाश ॥
श्रीहरिजीवन गुरु कृपा पाय सोई रसजानि ।
श्रीभागवत माहात्म्य की भाषा करी बखानि ॥

आपने व्रजभाषा में छन्दोबद्ध कई ग्रन्थ लिखे हैं। जिनमें से (१) गीतगोविन्दरस (२) भाषाभागवत (समस्तस्कन्धों के) (३) भक्तमालमाहात्म्य (४) भक्तिरसबोधिनी (भक्तमाल की टिप्पणी) (५) भक्तिरत्नावली (भाषा) ये पाँच ग्रंथ प्राप्त हैं।

गीतगोविन्दरस में आपने अपने सम्प्रदाय के पूर्वाचार्य्य, रसिक शिरोमणि, रस के आचार्य्य श्रीजयदेवगोस्वामि जी के द्वारा विरचित प्रसिद्ध गीतगोविन्द संस्कृत काव्य का सरसता के साथ ब्रजभाषा में नाना छन्दों में सर्व साधारण बोधार्थ पद्यबद्ध अनुवाद किया है। इसका रचनाकाल सम्वत् १७७७ से पहले अनुमान किया जाता है। ग्रंथ की पुष्पिका में-

"दास वैष्णवदास यह रसिकन हित सुखरास ।
भाषा करि वर्नन कियो सुख हिय होय विकास ॥

इति श्रीगीतगोविन्द कविराज जयदेवकृत भाषायां वैष्णवदास रसजानि कृतायां द्वादश सर्गः संवत् १७७७ पौष बदी २ लिखितं "जयदेव" ॥ यदि इस समय को लिपीकार कृत माना जाता है तो इससे पहले ग्रंथ की रचना व प्रसिद्धि होना अवश्यम्भावी है। यदि यह ग्रन्थकार का उल्लेख है तो १७७७ सम्वत् मान

लेने पर कोई हानि नहीं है, क्योंकि ग्रंथकार के द्वारा भाषा-भागवत रचे जाने का समय १८२२ से लेकर १८३१ सम्वत् पर्य्यन्त है। प्रायः समस्त स्कन्धों की पुष्पिका में इसी समय का निर्देश दिया गया है, गीतगोविन्द की रचना के पश्चात् ही भाषा भागवत की रचना सिद्ध होती है। गीतगोविन्दरस के प्रारम्भ में—

वंदि कृष्णचैतन्य चंद दुति करे अनंद जो।
कहौं गीतगोविंद सुने होय महानंद सों ॥१॥
रसिक अशेषनि को नरेश जयदेव भेव वित।
कियौ अमल रसपान क्यों वे रस लहै समलचित ॥
ता रस कौ उद्धार सार सौरभ सरसानौ।
तिहि हित रसिक समूह व्यूह मधुकर घुमडानौ ॥

ग्रंथ की समाप्ति में—

श्रीमहाप्रभु चैतन्य तिनकी दया फली।
कलि अवतार सुधन्य पतितन वली भली ॥
जयति गीतगोविन्द गावहु रसिक अहो।
श्रीप्रियादास कवि भूप रसिकनि मुकुटमनी।
जग जस छयौ अनूप तिन की कृपा कनी।
जयति गीतगोविंद गावहु रसिक अहो ॥
श्रीहरिजीवन नाम मेरे गुरु सुमहा।
तिनकौं कर अभिराम नित मम शीश अहा ॥

गीतगोविन्द में जिस प्रकार द्वादश सर्ग हैं ठीक उसी प्रकार इसमें द्वादश सर्ग हैं। गीतगोविन्द की अष्टपदी जिम राग-रागिणियों से विरचित है वे सब इसमें यथा रूप ब्रजभाषा में उसी प्रकार मौजूद हैं। इसकी प्राचीन प्रति नंदकिशोरजी मुकुटवाले (वृन्दावन) के पास, गोस्वामि श्री अद्वैतचरणजी के पुस्तकालय में, हमारे पास भी मौजूद हैं। हमारी वाली प्रति अत्यधिक प्राचीन लिपी है। इन प्रतियों को देखकर इसकी

प्रेस कापी प्रस्तुत की गई थी। लगभग १५ वर्ष पहले हमने इसका प्रकाशन भी किया है।

वैष्णवदास जी के द्वारा विरचित दूसरा ग्रंथ भाषा भागवत है, जोकि समस्त भागवत का चौपाई छन्द में विशुद्ध ब्रजभाषा में लिखा गया है। प्रत्येक अध्याय के पहले दोहा छन्द से अध्याय का दिग्दर्शन किया गया है। इसके माहात्म्य तथा प्रत्येक स्कन्धों के प्रारम्भ में—

रसिकभूप हरिरूप पुनि श्रीचैतन्य स्वरूप।
हृदै कूप अनुरूप रस उफल्यो बहै अनूप ॥

इस प्रकार महाप्रभु की वन्दना की गई है। यह ग्रन्थ मूल भागवत का ज्यों का त्यों सरल अनुवाद है। मूलगत शुद्ध अनुवाद के कारण इसकी प्रसिद्धि उस समय काफी होगई थी। नाना स्थानों में इसकी प्राचीन प्रतियाँ मौजूद है। इसकी कई प्रति तो देहली में हैं। नन्दकिशोरजी मुकुट वाले के पास एक प्रति, मांट के पास सुरीर हेतराम पुस्तकालय में एक प्रति, मुरादाबाद में एक प्रति, हमारे पास भी एक प्रति मौजूद है। मुरादाबाद की प्रति को छोड़कर अन्य प्रतियों को मैंने देखा है। लगभग १५००० चौपाई से इसकी रचना हुई है। ग्रंथकार की विशाल विद्वत्ता इस रचना से स्पष्ट है। मैंने पहले इसके दशम, एकादश, द्वादश इन तीनों स्कन्धों का एक ही जिल्द में दूसरा भाग नाम से प्रकाशन किया है। सम्प्रति माहात्म्य के साथ प्रथम, द्वितीय स्कन्ध का प्रकाशन करने में वाध्य हुआ। तृतीय से नवम स्कन्ध का प्रकाशन करने की आगे महती इच्छा है। इच्छा तो थी कि प्रथम से नवम पर्य्यन्त एक ही साथ एक ही जिल्द में प्रथम भाग नाम से प्रकाशित करने की। परन्तु इस समय अर्थाभाव के कारण यह कार्य न हो सका। बहुत दिनों से प्रस्तुत माहात्म्य के साथ दोनों स्कन्ध छप कर प्रेस में रखे हुए थे। स्वल्प जीवन है, नाना प्रकार संकल्प विकल्प उठते

रहते हैं। अतः शीघ्र ही इसी रूप से दोनों को प्रकाशित करने में वाध्य हुआ।

इसके प्रकाशनार्थ अर्थ सहायता देने में दो व्यक्तियों का हाथ है। प्रथम स्कन्ध की अर्थ सहायता मुझे भक्तवर श्रीमान् आत्माराम मुजफ्फरनगर वालों के द्वारा प्राप्त हुई थी। दूसरे स्कन्ध के सहायक श्रीमान् केशवदेव जी (खंडेलवाल) जिनका गौलोकवास होगया है तथा जो मुझ पर अत्यधिक श्रद्धा रखते थे। ग्रंथकार का तीसरा ग्रंथ-भक्तमालमाहात्म्य है प्रारम्भ में—

"रसिक रूप हरिरूप पुनि श्री चैतन्य स्वरूप ।
हृदय कूप अनुरूप रस उझल्यौ बहे अनूप ॥

शेष में—प्रियादास अति ही सुखकारी। भक्तमाल टीका विस्तारी॥
तिनको पौत्र परम रंग भीनों। भक्तन हित महात्म यह कीनौं॥

इसमें ८१ चौपाई तथा १० दोहे मौजूद हैं एवं भक्तमाल की महिमा कही गई है।

ग्रंथकार की एक कृति "भक्तिरत्नावलीभाषा" है। यह श्रीविष्णुपुरी गोस्वामि के द्वारा संकलित भक्तिरत्नावली की भाषा है। यह ग्रंथ छतरपुर महाराज की लाइब्रेरी में है।

ग्रंथकार की पांचवीं कृति भक्तिरसबोधिनी टिप्पणी है यह भक्तमाल एवं प्रियादास जी की टीका का आधार लेकर रची गई है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि इसकी एक प्राचीन प्रति महाराज बनारस की लाइब्रेरी में सुरक्षित है। १३४०, १५ × ६ इंच। इसके मंगलाचरण में महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव के साथ उनके परिकरों की वन्दना है यथा-

"वन्देऽहं श्रीगुरोः श्रीयुतपदकमलं श्रीगुरून् वैष्णवांश्च साद्धैतं सावधूतं परिजनसहितंकृष्णचैतन्यदेवम्" इत्यादि।

गौड़ीय पक्ष में इतने पुष्ट प्रमाण रहते हुए भी रसजानिवैष्णवदास जी को निम्बार्की कह देना महान् भ्रम है।

—कृष्णदास बाबा

* श्रीश्रीगौरांगविधुर्जयति *

❀ भाषा भागवत महात्म ❀

दोहा—रसिक भूप हरि रूप पुनि, श्रीचैतन्य सरूप।
हृदै कूप अनुरूप रस, उझल्यौ बहै अनूप॥ १॥
श्रीप्रियादास रस रास कौ, पौत्र वैष्नवदास।
ताही कौं रस जानि कै, कीनो नाम प्रकास॥ २॥
श्रीहरि जीवन गुरु कृपा, पाय सोई रसजानि।
श्रीभागवत महात्म की, भाषा करी बखानि॥ ३॥
विष्णुरात श्रीवज्र हित, मुनि सांडिल्य बुलाय।
दूर कियौ संदेह कौ, या पहिले अध्याय॥ ४॥

देवी सरस्वती नारायन। वंदि नरोत्तम के पुन पायन॥
बहुर व्यास जु कौं सिरनाय। बर्नन करौं ग्रंथ सुख पाय॥

छप्पय ऊचुः—
अपनौ पौत्र परीछत आहि। गजपुर मैं दै राज सु ताहि॥
बज्रहि मथुरा मैं बैठाय। हरि के विरह धर्म सुत छाय॥
अहो उत्तराखंड गए जब। तिन दोऊ कैसे कहा कियौ तब॥

सूत उवाच—
धर्म पुत्र बन गवन कियौ जब। बज्रनाभ के देखन कौ तब॥
नृपत परीछत मथुरा आए। बज्रनाभ लखि प्रेमभिगाए॥
पुन काका के सन्मुख जाय। लै गए महलन सीस नवाय॥
नृपहू बज्रहि उर लपटायौ। कृष्नचंद्र ही मैं मन छायौ॥
रोहिन्यादि कृष्न तिय जितीं। नृप सिर नाय सु पूजी तितौ॥
पृथिवी पति जु परीछत आहि। तिनहू अति सनमान्यौ ताहि॥
सुख सो बैठि सु श्रमहि गमायौ। पुन नृप बज्रहि वचन सुनायौ॥

श्रीपरीक्षित उवाच—
हे सुत तुमरे पिता मुरारी। तिनने रच्छा करी हमारी॥
पुन मम पितरु पितामह जिते। दुख समूह ते राखे तिते॥

❀ श्रीगौरहरिर्जयति ❀

भक्तभूषणसन्दर्भः

व्रजाचार्य्य—

महामहिमश्रीश्रीनारायणभट्टविरचितः

(सानुवादः)
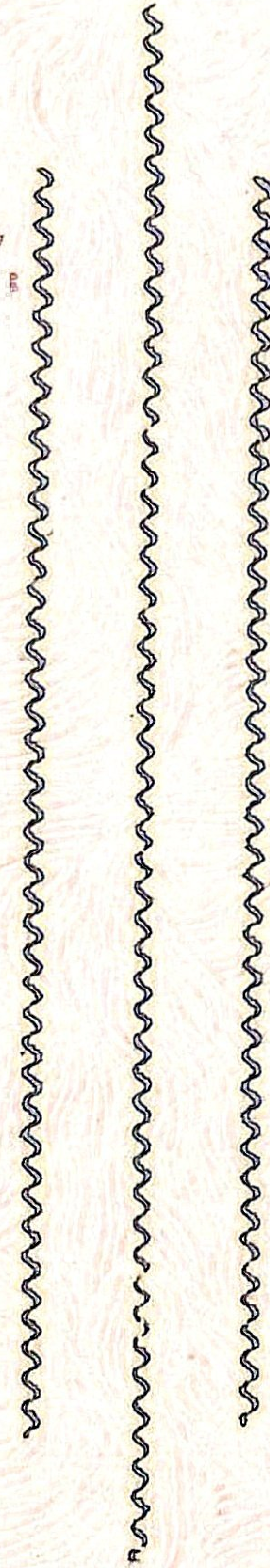
सम्वत् २०२१

प्रथमावृत्ति ५००

मूल्य १)

प्रकाशक व मुद्रक-

कृष्णदास बाबा

गौरहरि प्रेस, कुसुमसरोवर, राधाकुण्ड

श्रीश्रीभागवतसन्दर्भे

पञ्चमः

भक्तिसन्दर्भः

(प्रथमखण्डः)

*
—+—
*

प्रकाशक—

कृष्णदासबाबा

प्रकाशितग्रन्थसंख्या—१५१

षट्सन्दर्भात्मक-

श्रीभागवतसन्दर्भे

पञ्चमः

भक्ति-सन्दर्भः

[प्रथमखण्डः]

*
***
*
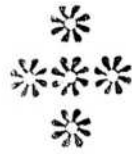
श्रीमज्जीवगोस्वामिचरणैः प्रणीतः

तथा

कुसुमसरोवरनिवासिना कृष्णदासेन

हिन्दीभाषया चानुदितः

प्रथमावृत्तिः—१०००

सम्बत् २०२६

गुरुपूर्णिमा

मूल्यम् ५) रुपये

प्रकाशकः—

कृष्णदासबाबा

(कुसुमसरोवरवाले)

वर्त्तमाननिवास

(वृन्दावन)

समर्पण-पत्र

हमारी प्राचीन साहित्य-सेवा में विशेष सहायक तथा श्रद्धा रखने वाले श्रीमान् जयदयालजी डालमिया एवं उनकी धर्मपत्नी उदार हृदयवाली श्रीमती कृष्णादेवी को हार्दिक धन्यवाद देकर उनको उत्साहित करते हैं।—

नित्यधामगत, श्रीश्रीविनोदविहारीगोस्वामीप्रभु-महाराज (कालीदह-निबासी) के पुनीत स्मरण में—

तथा गुरु-परम्परा प्राप्त उपजीव्य-चरणोंकी पुनीत सेवा में:- (१) श्रीश्रीनित्यानन्दप्रभु, (२) श्रीश्रीजान्हवाठाकुरानी, (३) श्रीवीरचन्द्रगोस्वामी, (४) श्रीरामचन्द्रगोस्वामी, (५) श्रीकिशोरीमोहनगोस्वामी, (६) श्रीराधावल्लभगो वामी, (७) श्रीराधारमणगोस्वामी, (८) श्रीराधामाधवगोस्वामी, (९) श्रीसत्यानन्दगोस्वामी, (१०) श्रीराधिकाप्रसादगोस्वामी, (११) श्रीकृष्णचैतन्यगोस्वामी, (१२) श्रीनित्यराधागोस्वामी, (१३) श्रीशंकरारण्यगोस्वामी, (१४) श्रीश्रीराधारमणचरणदास-बाबाजी महाराज (बड़े बाबाजी), (१५) नित्यधामगत-संकीर्त्तनप्रचारक-प्रेममूर्त्ति-निरन्तर अष्टसात्त्विकभावावली से विभूषित गुरुदेवमहाराज (श्रीश्रीरामदासबाबाजी महाराज), इस प्रथम भाग भक्ति-सन्दर्भ-रूप प्रस्तुत कृति को समर्पण करता हूँ। —कृष्णदास

मुद्रक :

मोहनचन्द्रगोस्वामी

मोहनप्रेस, वृन्दावन।

हमारी प्राचीन-साहित्य-सेवा में विशेष रुचि रखने वाले एवं नाना प्रकार सहायता देकर उत्साहित करने वाले तथा प्रस्तुत भक्ति-सन्दर्भ-प्रकाशन में परम हितैशी सहायकों की

❀ नामावली ❀

१. पूज्य स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज
२. श्रीहरिदासजी शास्त्री (६नवतीर्थ) कालीदह
३. श्रीदीनशरणदासजी (पत्थरपुरा, वृन्दावन)
४. श्रीचक्रपाणिजी महाराज (वृन्दावन)
५. श्रीयुक्तनित्यानन्दभट्टजी (वृन्दावन)
६. श्रीयुक्त अतुलकृष्णगोस्वामीजी, (वृन्दावन)
७. श्रीयुक्त गोस्वामीदामोदरलालजी महाराज (वृन्दावन)
८. श्रीमान् सेठ जयदयालजी डालमिया, (नई दिल्ली)
९. श्रीमान् लज्जाराम ललाम, प्रिन्सीपल, विद्यापीठ (वृन्दावन)
१०. श्रीमान् सेठ नन्दकिशोरजी भाभरीया (कलकत्ता)
११. श्रीहरिप्रसादजी-वेदान्ती, सीताराम-राधाकृष्ण-मंदिर (वृन्दावन)
१२. श्रीमान् रमणदासजी पंड्या, गोलपाड़ा, (मथुरा)
१३. श्रीमान् गोपालदासजी ड़ागा, (राधाकुण्ड)
१४. श्रीयुक्त भक्तिदीपकमहाराज, (वृन्दावन)
१५. श्रद्धेय बाबा रासबिहारीदासजी महाराज, बेणीपट्टी-द्वारभंगा (विहार)

—कृष्णदास

—※—

श्रीमाध्वगौड़ेश्वरग्रन्थमाला - ३४

❀ श्री श्रीगौराङ्गमहाप्रभुर्जयति ❀

श्रीमहामन्त्रव्याख्याष्टकम्

मावृत्ति १०००
विजयादशमी
म्वत् २०११

प्रकाशक—
कृष्णदास
(कुसुमसरोवर वाले)

❀ भूमिका ❀

हरेकृष्ण महामन्त्र के सम्बन्ध में उत्कर्ष विचार यह है कि-बत्तीस अक्षरात्मक हरे कृष्णादि सोलह नाममन्त्र को श्रीमन्महाप्रभु श्रीगौरांगचन्द्र ने महामन्त्र करके निर्देश किया तथा उसका मधुर उपदेश के द्वारा जगत में प्रचार कर जगवासी का महान् उपकार किया। आज कल जगवासी जिस "हरेकृष्ण" महामन्त्रका जप अनुष्ठानादि करते हैं उस पाठ को पढ़ाने वाले एक मात्र श्रीमन्महाप्रभु जी तथा उनके परिकर हैं। बिना अर्थ से मन्त्र निष्फल होता है, अतएव अर्थ जान कर मन्त्र का चिन्तमन-जपादि करना चाहिये। श्रीप्रभु ने "हरेकृष्ण" महामन्त्र का सामान्यतः जिस प्रकार अर्थ का उद्देश किया है, उनके परिकरों ने ठीक उस अर्थ को विस्तृत भाव से उपदेश देकर उसका सरस प्रचार किया। महाप्रभु के परिकरों में से प्राय सब ही इस मन्त्र का सरस अनुष्ठान करते थे। श्रीहरिदास ठाकुरादिक कतिपय महानुभाव नित्य तीन लाख मन्त्र का जप करके जल ग्रहण करते थे, यह सब ग्रन्थन में प्रसिद्ध है। ग्रन्थों में ऐसी कहावत है कि जो "लक्षेश्वर" अर्थात् एक लाख मन्त्र जाप नहीं करते थे उनके साथ महाप्रभु का व्यवहार नहीं रहा। फलतः प्रभु परिकर में सब कोई एक लाख मन्त्र का अनुष्ठान करते थे। अभी भी महाप्रभु के भक्त-वैष्णवगण उस उपदेश का पालन करते आ रहे हैं। अधिकांश वैष्णव-भक्त तो अपनी शक्ति के अनुसार एक लाख से लेकर तीन लाख पर्य्यन्त अवश्य जप किया करते हैं। फल में इस मन्त्र का प्रचार विस्तृत रूप से संसार में फैल गया।

कोई कोई कहते हैं कि—कलिसन्तरण उपनिषद् कथित "हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे" इस नाममाला को श्रीमन्महाप्रभु ने व्युत्क्रम रूप से अर्थात् उलट करके "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे" इस प्रकार से पाठ कर महामन्त्र नाम से प्रचार किया। परन्तु यह धारणा निर्मूलक है। वेद का वेदत्व उसकी अनुपूर्वी वर्णमाला पर निर्भर है। किन्तु विधेयक

मन्त्रों का तथा स्तुतिवाक्यों का विभक्ति-परिवर्तन व्याकरण महाभाष्य में पतञ्जलि उल्लेख करते हैं। अतएव भगवन्नाम में भेद न होने के कारण कलिसन्तरणोपनिषद् का मन्त्र भी भिन्न नहीं है। जप की अवस्था में उसकी आवृत्ति एकाकार हो जाती है। फलतः वेदपाठ के नियमों में अधिकारि विशेष ही उस का जप कर सकता है यह कोई बन्धन 'हरेकृष्ण" नाम को पूर्व में होने पर नहीं रहा। यहाँ पर और एक विचारणीय विषय यह है कि "कलिसन्तरण" में उस षोडशनामात्मक मन्त्र को नाम करके कहा गया है। यह मन्त्र है किम्वा उसकी यह दीक्षादिक विधि है इसका कोई उल्लेख नहीं है।

प्रायः कलिकाल में ब्राह्मण गण शूद्र की भांति अशुचि परायण होते हैं। आगम (तन्त्र) उक्त विधि के द्वारा उनकी शुद्धि हो सकती है, किन्तु वेदोक्त विधान के द्वारा शुद्धि असम्भव हो उठती है। विष्णुयामल में कहा है—

> अशुद्धा शूद्रकल्पाहि ब्राह्मणाः कलिसम्भवाः।
> तेषामागममार्गेण शुद्धि र्न श्रौतवर्त्मना॥

इसलिये कलिकाल में धर्म्म-कर्म्म साधन के लिये आगम अर्थात् तन्त्रोक्त विधान प्राधान्य रूप से सूचित होता है।

> कृते श्रुत्युक्त मार्गः स्यात् त्रेतायां स्मृतिभावितः।
> द्वापरे तु पुराणोक्तं कलावागमसम्भवः॥

श्रीमद्भागवत में—

> इति द्वापर उर्व्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम्।
> नानातन्त्रविधानेन कलावपि तथा शृणु॥

इस श्लोक की टीका में श्रीधरस्वामि का वचन यथा—

"नानातन्त्रविधानेनेति कलौ तन्त्रमार्गस्य प्राधान्यं दर्शयति"।

आगमोक्त मार्ग में सब का अधिकार होता है। वेदोक्त मार्ग में शूद्र का अधिकार नहीं है। जिस प्रकार वेद में शूद्रादिकों का अनधिकार जान कर श्रीवेदव्यास जी ने सर्व्व साधारणार्थ

पुराणों की रचना की ठीक उसी प्रकार कलिकाल में महाप्रभु ने वेदोक्त "हरे राम" महामन्त्र में शूद्रों का अनधिकार देख सर्व-साधारण हित के लिये तन्त्रोक्त "हरे कृष्ण" महामन्त्र का ग्रहण कर उसका प्रचार किया। सिद्धान्त यह है—वेद में "हरे राम" क्रम से पाठ है और पुराण तन्त्रादि में "हरे कृष्ण" क्रम से पाठ है। महाप्रभु ने कलि-पीड़ित जीवों का वेदोक्त मन्त्र में अधिकार न देख कर आगम (तन्त्र) उक्त "हरे कृष्ण" मन्त्र से ही सब का मंगल हो सकता है इसलिये उसका उपदेश देकर सब को कृतार्थ किया। साथ ही साथ उस "हरे कृष्ण" महामन्त्र के द्वारा निज परम गुप्त धन प्रेमरत्न का प्राणिमात्र में प्रदान कर प्रभु के अन्तरंग परिकर बनाय दिया। निज परम अन्तरंगा ल्हादिनी शक्तिरूपिणी श्रीराधिका के प्रेम का आस्वादनार्थ नन्दनन्दन आपका अवतार हुआ था। आप ने उस राधाभाव का सरस आस्वादन किया तथा प्राणिमात्र को यत्किञ्चित् आस्वादन कराया। यह वस्तु और किसी अवतार में असम्भव होता था। अतएव उन्हें "महाप्रभु" करके सब कोई कहा करते हैं। कलियुग का धर्म्म नाम संकीर्त्तन है। उस का भी स्वयं आचरण कर सब को सिखाया। "नाम संकीर्त्तन" को समक्ष रख कर आप का प्राकट्य हुआ था। बहुत से लोक "नामकीर्त्तन" का याजन किया करते हैं, परन्तु वे सब नाम संकीर्त्तन के परम पिता श्रीमन्महाप्रभु से अपरिचित हैं फलतः वे प्रेम धन से वञ्चित होते हैं। अतएव सब के लिये यह चाहिये कि—हरेकृष्ण महामन्त्र के आदि उपदेशक, नामसंकीर्त्तन के जन्मदाता, प्रेमावतार श्रीगौरांग महाप्रभु का आश्रय लेकर प्रेमधन से धनी होवें। महाप्रभु तो प्राणिमात्र के उपास्य हैं। बिना उनकी उपासना से प्रेम नहीं मिलता है। वे किसी एक सम्प्रदाय की वस्तु नहीं है। वे तो समस्त सम्प्रदाय के परम धन हैं।

महामन्त्र के सम्बन्ध में आगम (तन्त्र) पुराणों का वचन—

ज्ञानामृतसारे—

शिष्यस्योदङ्मुखस्थस्य हरेर्नामानि षोडश।

मंश्रव्यैव ततो दद्यान्मन्त्रं त्रैलोक्यमङ्गलम् ॥

ब्रह्मयामले—

हरिं विना नास्ति किञ्चित् पापनिस्तारकं कलौ ।
तस्माल्लोकोद्धारणार्थं हरिनाम प्रकाशयेत् ॥
सर्व्वत्र मुच्यते लोको महापापात् कलौ युगे ।
हरेकृष्णपदद्वन्द्वं कृष्णेति च पदद्वयम् ।
तथा हरेपदद्वन्द्वं हरे राम इति द्वयम् ।
तदन्ते च महादेवि ! राम राम द्वयं वदेत् ।
हरे हरे ततो ब्रूयाद्धरिनाम समुद्धरेत् ।
महामन्त्रञ्च कृष्णस्य सर्व्वपापप्रणाशकमिति ॥

राधातन्त्रे वासुदेव उवाच—

शृणु मात महामाये विश्वबीजस्वरूपिणि ।
हरिनाम्नो महामाये क्रमं वद सुरेश्वरि !

देव्युवाच—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥
द्वात्रिंशदक्षराण्येव कलौ नामानि सर्व्वदम् ।
शृणु च्छन्दः सुतश्रेष्ठ हरिनाम्नः सदैव हि ॥
छन्दोहि परमं गुह्यं महत्पदमनव्ययम् ।
सर्व्वशक्तिमयं मन्त्रं हरिनाम्नः तपोधन ॥
हरिनाम्नोऽस्य मन्त्रस्य वासुदेव ऋषिः स्मृतः ।
गायत्री छन्द इत्युक्तं त्रिपुरा देवता मता ॥
महाविद्या सुसिद्ध्यर्थं विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।
एतन्मन्त्रं सुतश्रेष्ठ ! प्रथमे शृणुयान्नरः ॥
श्रुत्वा गुरुमुखात् पुत्र दक्षकर्णे तपोधन ।
आदौ च्छन्दस्ततो मन्त्रं श्रुत्वा शुद्धो भवेन्नरः ॥
द्वादशाभ्यन्तरे श्रुत्वा कर्णशुद्धिमवाप्नुयात् ।
कर्णशुद्धिं विना पुत्र महाविद्यामुपास्य च ।

नारी वा पुरुषो वापि तल्लक्षणान्नारकी भवेत् ॥

तत्रैव त्रिपुरावाक्यम्—

हरिनाम्ना विना पुत्र दीक्षा च विफला भवेत् ।
गुरुदेवमुखाच्छ्रुत्वा हरिनाम पराक्षरम् ।
ब्राह्मण-क्षत्र-विट्-शूद्राः श्रुत्वा नाम पराक्षरम् ।
दीक्षां कुर्य्युः सुतश्रेष्ठ महाविद्यासु सुन्दर ॥

तथाहि ब्रह्माण्डपुराणे राधाहृदयखण्डे द्वैपायनं प्रति लोमहर्षणवाक्यम्—

यत्त्वया कीर्त्तितं नाथ ! हरिनामेति संज्ञितम् ।
मन्त्रं ब्रह्मपदं सिद्धिकरं तद्वद नो विभो ! ॥

द्वैपायन उवाच—

ग्रहणाद् यस्य मन्त्रस्य देही ब्रह्ममयो भवेत् ।
सद्यःपूतः सुरापोऽपि सर्व्वसिद्धियुतो भवेत् ॥
तदहं वोऽभिधास्यामि महाभागवतो ह्यसि ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥
इत्यष्टं शतकं नाम्नां त्रिकालकल्मषापहम् ।
नातः परतरोपायः सर्व्ववेदेषु विद्यते ॥

तत्रैव वृषभानुं प्रति देव्या आदेशः—

गृहाण हरिनामानि यथाक्रममनिन्दितम् ।
पुलिने विरजा नद्या पुण्ये देवर्षिसेविते ॥
क्रतुर्नाम मुनिः श्रीमांस्तपते तपताम्वरः ।
तत्र गत्वा महावाहो ! हरिनामानि संशृणु ॥
इति मन्त्रं प्रदायैव तदा स भगवान् क्रतुः ।
इदमाह वचः पथ्यं भूयो हरिमनुस्मरन् ।
अतः परं महाबाहो जप विद्यां समाहितः ॥ इति ॥

अनन्तसंहितायाम्—

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥
षोडशैतानि नामानि द्वात्रिंशद्वर्णकानि हि ।
कलौ युगे महामन्त्रो सम्मतो जीवतारणे ॥"
"उत्सृज्यैतन्महामन्त्रं ये त्वन्यत्कल्पितं पदम् ।
महानामेति गायन्ति ते शास्त्रगुरुलङ्घिनः ॥"

महामन्त्र सम्बन्ध में वैदिक प्रमाण–

तथाहि कलिसन्तरण–उपनिषदि ।

नारदः पुनः पप्रच्छ तन्नाम किमिति ? सहोवाच हिरण्यगर्भः—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

इति षोडशनाम्नां कलिकल्मषनाशनं नातः परतरोपायः सर्व्ववेदेषु विद्यते ॥

तथाहि अथर्व्ववेदे पिप्पलादशाखायाम्–

स्वानन्दात् मूलमन्त्रेण सर्व्वं ल्हादयते विभुः ।
द्वे शक्ती परमे तस्य ल्हादिनी सम्विदेव चेति ॥

स वा एतं मूलमन्त्रं जपति हरिरिति कृष्णः इति राम इति च ।

अत्र श्लोको भवति–

मन्त्रो गुह्यः परमो भक्तिवेद्यो नामान्यष्टावष्ट च शोभनानि ।

हरे कृष्ण महामन्त्र का उपदेशक श्रीमन्महाप्रभु गौरांगदेव हैं इसका कुछ प्रमाण हम यहाँ पर उपस्थित कराते हैं–

श्रीपाद रूपगोस्वामिजी अपनी "स्तवमाला" ग्रन्थ में कहते हैं–

हरेकृष्णेत्युच्चैः स्फुरितरसनो नामगणना–
कृतग्रन्थिश्रेणी–सुभगकटिसूत्रोज्ज्वलकरः ।
विशालाक्षो दीर्घार्गल–युगल–खेलाञ्चितभुजः
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम् ॥

श्रीपाद प्रबोधानन्दसरस्वतीजी ने भी श्रीचैतन्यचन्द्रामृत नामक अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में ऐसा ही कहा–

बध्नन् प्रेमभरप्रकम्पितकरो ग्रन्थीन् कटीडोरकैः

संख्यातु निजलोकमङ्गल–हरेकृष्णेति नाम्नां जपन् ।
अश्रुस्नातमुखः स्वमेव हि जगन्नाथं दिदृक्षुर्गता–
यातैर्गौरतनु विलोचनमुदं तन्वन् हरिः पातु वः ॥

इसकी रसिकास्वादिनी टीका में–

"हरिनाम–महामन्त्रः संख्यया जप्य इति शिक्षयतो"

श्रीपादरघुनाथदास गोस्वामिजी ने "स्तवावली" नामक ग्रंथ में कहा है–

निजत्वे गौडीयान् जगति परिगृह्य प्रभुरिमान्
हरेकृष्णेत्युच्चै र्गणनविधिना कीर्त्तयत भोः ।
इति प्रायां शिक्षां जनक इव तेभ्यः परिदिशन्
शचीसूनुः किं मे नयनसरणीं यास्यति पुनः ।

श्रीचैतन्यभागवत में नागरिकजनों के लिये प्रभु का उपदेश इस प्रकार वर्णन किया है—

आपने सभारे प्रभु करेन उपदेश ।
कृष्णनाम महामन्त्र शुनह विशेष ॥
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥
प्रभु वले कहिलाम एइ महामन्त्र ।
इहा गिया जप सभे करिया निर्व्वन्ध ॥ मध्यखण्ड २३ अ०

श्रीचैतन्यशतक में श्री सार्व्वभौमभट्टाचार्य्य का वचन–

विषण्णचित्तान् कलिघोरभीतान् संवीक्ष्य गौरो हरिनाममन्त्रम् ।
स्वयं ददौ भक्तजनान् समादिशत् कुरुष्व संकीर्त्तननृत्यवाद्यैः ॥

श्रीचैतन्यशतक में—

अनु ब्रह्माण्डयोर्मध्ये चैतन्येन समाहृताम् ।
हरेकृष्णरामनाममालां भक्तिपरायणाः ॥

तत्रैव–हरेर्नामप्रसादेन निस्तरेत् पातकीजनः ।
उपदेष्टा स्वयं कृष्णचैतन्यो जगदीश्वरः ॥
कृष्णचैतन्यदेवेन हरिनामप्रकाशितम् ।

येन केनापि तत्प्राप्तः धन्योऽसौ लोकपावनः ॥

श्रीचैतन्यचरितमहाकाव्य में आनन्दवृन्दावनचम्पूकार श्रीकविकर्णपूर महोदय ने कहा—

तत: श्रीगौराङ्गः समवददतीव प्रमुदितो
हरे कृष्णेत्युच्चै र्वद मुहुरिति श्रीमयतनुः ॥

गोविन्दकडचा में—

वाहु पसारिया प्रभु ब्राह्मणे तुलिला ।
तार परे भक्ति भरे गान आरम्भिला ॥
ब्राह्मणेर घर जेन हैल वृन्दावन ।
हरिनाम शुनिवारे आइसे ग्राम्यजन ॥
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

महाजनपद—

मथिया सकलतन्त्र हरिनाम महामन्त्र,
करे धरि जीवेरे बुझाय ॥

हरिनाममङ्गल नामक ग्रन्थ में संग्रहीत महज्जन के पद—

"हरे कृष्ण महामन्त्र उपदेश कराइया
तुमि आमार आमि तोमार वले" ।
"हरि भजन पहु करिल उद्धारे ।
अत ए से महामन्त्र याचिल सभारे ॥"
"आचण्डाल पतित जीवेर घरे घरे जाइया ।
हरिनाम महामन्त्र दिच्छे विलाइया ॥"

श्रीचैतन्यमङ्गल में—

"हरे कृष्ण नाम सेइ वले निरन्तर ।"
"प्रसन्न श्रीमुखे हरे कृष्ण कृष्ण वलि ।
विजय हैला गौरचन्द्र कुतूहली ॥"
"हरे कृष्ण हरे कृष्ण वलि प्रेम सुखे ।
प्रत्यक्ष हैला आसि अद्वैत सम्मुखे ॥"

—: विज्ञप्ति :—

१–श्रीपादजीवगोस्वामि जी की "हरिनामव्याख्या"

यह व्याख्या श्रीमान् केशवदास जी "भागवतनिवास" रमण-रेती वाले के द्वारा मुझे प्राप्त हुई थी, जोकि पहले सङ्गीत–माधव व चैतन्यचन्द्रामृत के साथ प्रकाशित हो गई है।

२–श्रीपाद श्रीलरघुनाथदासगोस्वामि जी कृत "हरिनाममहामन्त्रव्याख्या"

३–श्रीमन्महाप्रभु के परिकर श्रीवक्रेश्वर पण्डित गोस्वामि की परम्परा में श्रीगोपालगुरु जी की "हरिनाममहामन्त्रव्याख्या"

ये दोनों व्याख्या पहले बंगानुवाद के साथ बंगाक्षर में प्रकाशित हुई हैं तथा अनेक प्राचीन पुस्तकालय से इनकी प्रति प्राप्ति हो रही है।

४–श्रीयुक्त हरिदासठाकुर तथा श्रीअद्वैतप्रभु का प्रसंगरूप सोलहनामबत्तीसाक्षरात्मक "महामन्त्रव्याख्या"

यह व्याख्या अन्यत्र "मुरारी कडचा" के अन्तर्गत उपलब्ध हो रही है। श्रीगुरुदेव बाबाजिमहाशय के द्वारा प्रकाशित "साधक-कंठहार" में इसका प्रकाशन पहले हो गया है। सम्प्रति डाक्टर पूर्णचन्द्र जी, आगरा (प्रतापपुरा) निवासी के द्वारा रचित हिन्दी भाषा अनुवाद के साथ देवाक्षर में इसका प्रकाशन हुआ है।

५–श्रीचैतन्यदास जी विरचित "महामन्त्रव्याख्या"

यह व्याख्या श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्त्ती महोदय के द्वारा विरचित "हरिनामार्थदीपिका" का संक्षेप रूप है। पहले पदकल्पतरु नामक संगृहीत ग्रन्थ में यह प्रकाशित हुई है।

६—"श्रीहरिनामषोडश" अथवा मन्त्रषोडश ।

चतुः संप्रदाय (खालसा) के अन्तर्गत माध्वगौड़ेश्वर संप्रदाय के श्रीमहन्त श्रीरासबिहारीदास जी महाराज (मालसर) के द्वारा "श्रीगोकुलानन्द जी मन्दिर, वृन्दावन से इसकी एक कापी तथा बन्धुवर श्रीश्यामगोपालदास जी से दूसरी प्राप्त हुई ।

७—श्रीहरेकृष्णराममहामन्त्रकवचम् ।

कालिदह निवासी बाबा श्रीकिशोरीदास जी महाराज के शिष्य श्रीमान् शंकरलाल जी के पास एक प्राचीन प्रति तथा श्रीमान् श्यामगोपालदास जी के पास एक प्रति मुझे देखने में मिली ।

८—महामन्त्रविधिः

यह व्याख्या श्रीयुक्त नरहरि सरकारठाकुर महोदय के मुखपद्म से विनिर्गत हुई थी, जो कि श्रीखण्डवासी, चिरस्मरणीय, गौरनिष्ठ श्रीराखालनन्द शास्त्री के द्वारा "भक्तिचन्द्रिका" में पटल रूप से प्रकाशित हुई है ।

बाबा किशोरीदास महाराज कालीदह निवासी के आग्रह से तथा उनके अनुगत शिष्य "मुजफ्फरपुर" निवासी श्रीमान् आत्माराम जी की सम्पूर्ण अर्थ सहायता से यह "महामन्त्रव्याख्याष्टक" प्रकाशित होकर प्रेमी सज्जनों के समक्ष उपस्थित है । आशा है प्रेमी सज्जन इसका पठन-पाठन कर मेरे परिश्रम को सार्थक करेंगे। अनेक खोज करने पर भी श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्त्ती जी की हरिनामार्थदीपिका मुझ को प्राप्त नहीं हुई । किसी सज्जन के पास हो तो सूचित करें ।

विनीत—

कृष्णदास,

(कुसुमसरोवर वाले)

❀ श्री श्रीगौरांगविधुर्जयति ❀

श्रीमाधुरीवाणी

श्री श्रीमद्रूपगोस्वामीजी के प्रिय शिष्य श्रीमाधुरीजी कृता
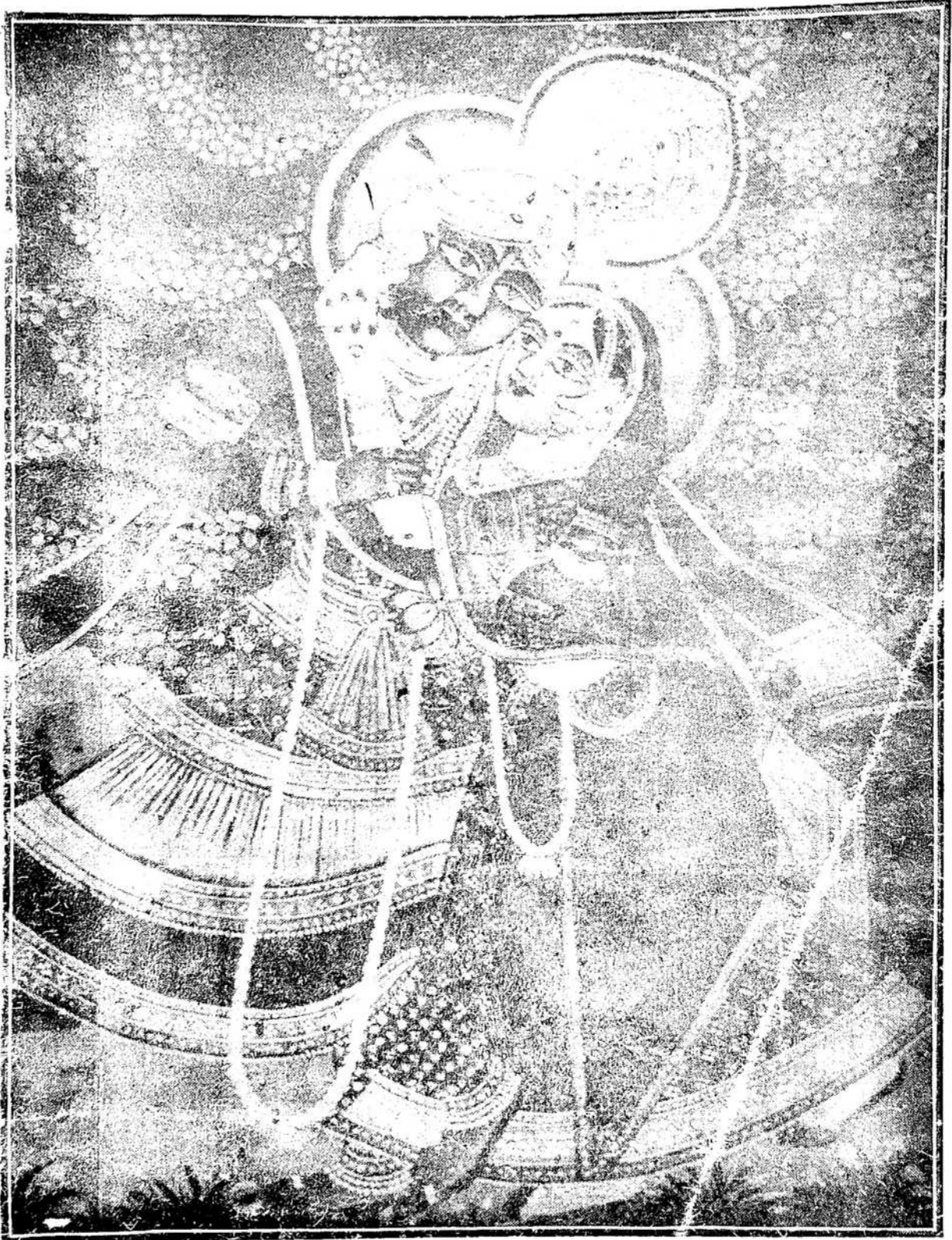
प्रकाशक—बाबा—कृष्णदास

पुस्तक मिलने का पता :—

(१) श्री रामनिवास खेतान का दूकान
सबामणशालिग्राम मन्दिर के नीचे
लोईबाज़ार, (वृन्दावन)

(२) लाला चेतरामजी, कोसीकलाँ, मथुरा

(३) बाबा कृष्णदास,
कयरप—बाबा आनन्ददासजी
कृष्णगंगा आस्थान
(मथुरा)

❀ श्री गौरांगविधुर्जयति ❀

श्री माधुरी बाणी

श्री श्री रूपगोस्वामी चरण के प्रियशिष्य

श्री माधुरी जी कृता

श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द ।
हरेकृष्ण हरेराम राधे गोबिन्द ॥
भज-निताई गौर राधेश्याम ।
जप-हरे कृष्ण हरे राम ॥

परम रसिक वर पूज्य श्री गौरांगदास जी के कृपा-पात्र, सेठ वनखण्ड के आत्मज, कोसी (वरसाना) निबासी चतुर्भुज (हरि-सम्बन्धि नाम चैतन्यदास उपनाम चेतराम जी) के संपूर्ण आर्थिक सहाय से मुद्रिता

ता० १४-३-३६
गौरपूर्णिमा
प्रथमावृत्ति १०००
मूल्य ।।=)

प्रकाशक
बाबा कृष्णदास
कुसुमसरोवर
पो० राधाकुण्ड
जि० मथुरा

श्री माधुरीजी की गुरु परम्परा

श्रीमन्नारायण, श्रीब्रह्मा, श्रीनारद, श्रीवेदव्यास, श्रीमध्वाचार्य्य,
श्रीपद्मनाभ, श्रीनरहरि, श्रीमाधव, श्रीअक्षोभ,
श्रीजयतीर्थ, श्रीज्ञानसिन्धु, श्रीमहानिधि,
श्रीपुरुषोत्तम, श्रीव्यासतीर्थ, श्रीलक्ष्मीपति,
श्रीमाधवेन्द्र

|

श्रीईश्वर

|

श्री राधाकृष्ण मिलित विग्रह
श्रीकृष्ण चैतन्य
महा प्रभु

|

तस्य पार्षद श्री रूप गोस्वामी महोदय

|

श्री माधुरी जी

केसरीसिंह यादव, कल्याण प्रिंटिंग प्रेस, राजामण्डी, आगरा।

❀ भूमिका ❀

ब्रजमाधुरी सागर में माधुरी जी का स्थान बहुत ऊँचा है। आप श्री रूप गोस्वामि चरण के शिष्य, ब्रजनिष्ठ परमरसिक महान् आत्मा हुए। मथुरा गोवर्द्धन मार्ग पर अड़ींग नामक ग्राम है। वहाँ से लगभग ढ़ाई कोश दक्षिण दिशा में माधुरी-कुण्ड विद्यमान है। वहाँ आप का भजन स्थान है आप के नाम से ही वह स्थान माधुरी कुण्ड नाम से विख्यात है। गोस्वामी श्री नारायण भट्ट जी द्वारा विरचित ब्रजभक्ति-विलास ग्रंथ के मत में श्री प्रियाजू की अति सुहावनी माधुरी नाम्नी सखी के विहारस्थल के कारण उस स्थान तथा कुण्ड का नाम माधुरीकुण्ड है। कुण्ड के पास एक सुन्दर मन्दिर है। मथुरा निवासी कृष्णगंगा स्थान के महन्त बाबा श्री बलरामदास जी की देख रेख में है। वाणीकार के जन्म तथा तिरोभाव समय का ठीकर पता नहीं मिलता है। किन्तु केलि माधुरी नामक ग्रंथ के अन्तिम दोहा से निश्चित किया जा सकता है कि आप का स्थिति काल सम्बत् सोलह सौ से लेकर सम्बत १७०० पर्य्यन्त है।

दो०—सम्बत सोलह सो असी सात अधिक हियधार।
केलि माधुरी छटि लिखी श्रावण वदि बुधबार॥

आपके द्वारा विरचित ग्रंथों से निश्चित पता चलता है। कि आप श्री रूप गोस्वामी जी के कृपा पात्र शिष्य थे।
यथा—श्री चैतन्य सुदृष्टि तें विविध भाँति अनुराग।
पिय प्यारी मुख कमल को पायो प्रेम पराग॥ ३०७॥

रूप मंजरी प्रेम सों कहत बचन सुख रास ।
श्री बंशीवट माधुरी होहु सनातन वास ॥ ३०८ ॥
बंशीबट माधुरी

वही रूप मंजरी ही ब्रज में प्रसिद्ध श्री रूप गोस्वामीजी हुए।
सदा सनातन रूप विराजै । बरनत ही जिय अति ही लाजै ॥
केलिमाधुरी ।

विपिन सिंधु रस माधुरी कृपा करी निज रूप ।
मुक्ता मधुर बिलास के निज कर दिये अनूप ॥ १२६ ॥
केलिमाधुरी

आपके द्वारा विरचित ग्रंथ समूह—

उत्कण्ठामाधुरी, बंशोवटविलासमाधुरी, केलिमाधुरी, वृन्दावन बिहारमाधुरी, दानमाधुरी, मानमाधुरी, होरी माधुरी, प्रियाजू की बधाई प्राप्त हैं । बंशीबटबिलासमाधुरी, तथा वृन्दावनबिहारमाधुरी का नामान्तर बंशीबटमाधुरी, व वृन्दावन माधुरी है। अनुमान किया जाता है कि इनके अतिरिक्त और भी अनेक पद होंगें । आपने प्रत्येक माधुरी में अपने इष्ट एवं उपास्यदेव भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु का मंगलाचरण किया है । यथा—

उत्कण्ठामाधुरी में

श्री चैतन्य स्वरूप को मन बच करूँ प्रणाम ।
सदा सनातन पाइये श्री वृन्दाबन धाम ॥ १ ॥
गौरनाम अरु गौरतनु अन्तर कृष्ण स्वरूप ।
गौर साँवरे दुहुन को प्रगट एक ही रूप ॥ २ ॥

बंशीबट माधुरी में—

चारु चरण चैतन्यचन्द्र मन बच कर ध्याऊँ ।
सदा सनातन रूप बास वृन्दावन पाऊँ ॥ १ ॥

केलिमाधुरी में—

श्री चैतन्य चरण चित धरों। वन विनोद कछु वरनन करों॥

वृन्दावनमाधुरी में—

कृष्ण रूप चैतन्य की सदा सनातन केलि।
गिरिवन पुलिन निकुंज गृह द्रुम द्रोणी वन बेलि॥१॥

दानमाधुरी में—

निशिदिन चित चिन्तत रहों श्री चैतन्य सरूप!
वृन्दावन रस माधुरी, सदा सनातन रूप॥ १॥

मान माधुरी में—

कृष्ण रूप चैतन्य घन, तन शत मुकुर प्रकाश।
सदा सनातन एक रस, विहरत विपिन विलास॥१॥ इति।

उत्कण्ठा माधुरी में ३ कवित्त २०३ दोहा। वंशीवट-माधुरी में ३६ कवित्त ५ सवैया १४ रोला ३२ चौपाई १ सोरठा २२० दोहा। वृन्दावन माधुरी में १२ कवित्त २ सवैया ३१ चौपाई ३ सोरठा ४५ दोहा। केलि माधुरी में ६ कवित्त ६२ चौपाई १ छन्द १ सवैया ११ सोरठा १ छप्पै १५ दोहा ६ रोला। दान माधुरी में १७ कवित्त ३ सोरठा १६ दोहा। मान माधुरी में १६ कवित्त १५ सवैया ६ सोरठा ६ दोहा। होरी माधुरी में ६ पद तथा प्रिया जू की बधाई में दो पद हैं। उत्कण्ठा माधुरी में वाणीकार की असहनीय विरह वेदना, तीव्र अनुराग, उत्कण्ठामयी चरम चाह की झलक विशद रूप से वर्णित है। जो महान् करुण रस से भरी हुई है। ग्रंथकार ने निज हृदय नन्दन वन से चाह कल्पलतिका को उखाड़ कर सरस दिखाया है जो भाव पुष्प तथा प्रेम रूप आश्चर्य्य फल से सुसज्जित है तथा जिसके पोर पोर सरस शृङ्गार रस से सुरसित हैं जिसके रूप, रस गन्धादि से आकृष्ट

होकर रसिक भ्रमरगण व्रज उपवन में झुंड के झुंड भ्रमण करते हैं, तथा जो राग रूप राजा के आधीन है और वैधी भक्ति रूप सुदृढ़ प्राचीर से वेष्टित है। वाणीकार की विरह वेदना श्री रघुनाथदास गोस्वामी जी रचित विलाप कुसुमाञ्जली को द्योतक है। जान पड़ता है कि उत्कण्ठा माधुरी की रचना विलाप कुसुमाञ्जली के आधार पर हुई है। यहाँ पर कुछ दोहे हम उद्धृत करते हुए समन्वय दिखाते हैं—

उत्कण्ठा माधुरी में—

श्री वृन्दावन स्वामिनी करि सुदृष्टि इहि ओर।
वृष्टि करौ अनुराग की कृपा कटाक्षन कोर॥
अहो लड़ैती बिन कहे जानि लेउ जिय बात।
चरण तिहारे संग बिन मोहि न कछू सुहात॥
पलक ह्वै रहे कोटि सम अलप कलप सम होय।
जो उपजै जिय में सदा समझि सकै नहिं कोय॥
कहि कहि काहि सुनाइये सहि सहि उपजै शूल।
रहि रहि जिय ऐसे जरै दहि दहि उठै दुकूल॥
विरह अग्नि उर में बढ़ी तप्यौ अवनि तनु जाय।
सुरत तेल तापर परै कह किहि भाँति सिराय॥
यह उत्कंठा की लता चली वेगि मुरझाय।
संग दामिनी श्यामघन जो बरषै नहिं आय॥
रोम रोम तन जरि उठै बरि बरि उठै शरीर।
कब छिरकोगे आनि कै कृपा कटाक्षन नीर॥
गिरिवन पुलिन निकुंज गृह सकों देखि नहिं नैन।
सदा चकित देखत फिरों कहुँ न धरत चित चैन॥
कालिन्दी कर वत लगै चक्र लगे शशि भाय।
जो कबहूँ उन सुखन की परै सुरति जिय आय॥

पवन लगे पाहन मनों सेज लगै सम भान।
भोजन जल ऐसौ लगै गरल कियौ जनु पान॥
फूल लगै फलका हिये वसन सिली मुख मोहि।
सबहि सौंज उलटी परी, विना एक पिय तोहि॥
इत्यादि १० से ३० पर्य्यन्त देखिये।

इस प्रकार तीव्रानुराग न होने से साधक किंवा सिद्ध भक्तों को व्रज प्राप्ति असम्भव है। यही वाणीकार ने दर्शाया है। श्री सनातन गोस्वामिचरण ने भी निज वृहद्भागवतामृत नामक ग्रंथ में श्री गोपकुमार-प्रबन्ध के छल से व्रज प्राप्ति का पूर्व स्वरूप इस प्रकार दिखाया है। यथा—

तत्रैवोत्पद्यते दैन्यं तत्प्रेमापि सदा सतां।
तत्तच्छून्यमिवारण्य सरिद्गिर्य्यादिपश्यतां॥
सदा हाहारवाक्रान्तवदनानां तथा हृदि।
महासन्तापदग्धानां स्वप्रियं परिमृग्यताम्॥ख० २।५
सदा महार्त्या करुणस्वरैरुदन्नयामि रात्रीर्दिवसांश्च कातरः।
न वेद्मि यद्यद् सुचिरादनुष्ठितं सुखाय वा तत्तदुतार्त्तिसिन्धवे॥
ख० २।६।

श्री रघुनाथदास गोस्वामीपाद ने स्वरचित विलापकुसुमाञ्जलि में इस प्रकार विरह वेदना की झलक तीव्र रूप से दरसाई है।

त्वदलोकनकालाहिर्दंशैरेव मृतं जनं।
त्वत्पादाब्जमिलल्लाक्षाभेषजैर्देवि जीवय॥
देवि ते चरणपद्मदासिकां विप्रयोगभरै दावपावकैः।
दह्यमानतराकायवल्लरीं जीवय क्षणं निरीक्षणामृतैः॥
व्याघ्रतुण्डायते कुण्डं गिरीन्द्रोऽजगरायते।
शून्यायितं गोष्ठं सर्व्वं जीवातु रहितस्य मे॥

हे देवि ! हे स्वामिनी जू । तुम अपने अदर्शन रूप काल सर्प के तीव्र दंशनों से मृत प्राय इस जन को चरण कमल संयुक्त महावर रूप अमृत रस से जीवित करो। देवि ! तुम्हारे वियोग रूप दावाग्नि से जलती हुई मेरी शरीर रूप लता को दर्शन रूप अमृत सिंचन से बचाओ । हे जीवनाधार आप से रहित मेरे लिये राधाकुण्ड बघेर का मुख, गोवर्द्धन अजगर सर्प के तुल्य और समस्त व्रज शून्यमय हो रहा है।

यदि प्राणवल्लभ का सरस आलिंगन इस देह में नहीं हुआ तो अवश्य देहान्तर में प्राप्त होगा। यथा—

या होरी के खेल को खेल कहूँ ह्वै जांउ।
कै सौंधौ ह्वै दुहन कों अंग अंग लपटाँउ॥
कै गुलाल ह्वै लाल के परों लोचननि जाय।
कै पिचकारी प्रिया की हूजे कौन उपाय॥
कै केशर के रंग में कीजे जाय प्रवेश।
तब क्यों हू कछु पाइये वा सुख को लव लेश॥
इत्यादि ९९ से १०६ दोहा देखिये। उत्कण्ठा माधुरी॥

यहाँ श्री रूपगोस्वामी द्वारा विरचित पद्यावली का एक श्लोक रसिकों के सामने रखते हैं। यथा—

पञ्चत्वं तनुरेतु भूतनिवहाः स्वांशे विशन्तु स्फुटं
धातारं प्रणिपत्य हन्त सिरसा तत्रापि याचे वरं।
तद्वापीषु पयस्तदीयमुकुरे ज्योति स्तदीयागंन
व्योम्नि व्योम तदीयवर्त्मनि धरा तत्तालवृंतेऽनिलं॥

प्राण वल्लभ के विमल पावन सरोवर में जल, शरत् चन्द्रमा नामक दर्पण की कांति में कांति, आगँन के आकाश में आकाश; विहार मार्ग में मार्ग, मधुमारुत नामक वीजना में

पवन बन कर प्रियतम को सुख दूँगी। यह केवल तत्सुख का तात्पर्य है।

कविवर सूरदास जी ने भी कहा है:—

का यह सूर अँजिर अवनि तनु तजि अगास प्रिय भवन समैं हौं।
वाय बीज वापी जल क्रीडा तेज मुकुर महँ सब सुख लैहौं॥

बंशीबट विलासमाधुरी में वृन्दावन तथा जमुनातट की सुहाबनी शोभा का वर्णन करते हुए प्रिया प्रियतम के बंशीवट कुञ्ज में विविध विलास रस को दिखाया है। उसमें एक परम आस्वादनीय विषय वर्णन किया है—यमुनाजी में नौका विहार करने के समय नाव पर श्री प्रियाजू के कोमल कमल के कर्ण फूल पर मुग्ध होकर एक भ्रमर मधुर गुंजार करता हुआ घूमने लगा श्री स्वामिनी जू भयातुर हो उसे अपनी सुकुमार भुज-लता द्वारा उड़ाने की चेष्टा करने लगी, परन्तु अपने प्रयास में असफल रहीं। तब श्री लाल जू ने अपने हस्त कमल से भौंरे को उड़ा कर कहा।

सावधान ह्रू जे प्रिये विकल होत केहि काज।
मधुसूदन तौ गृह गयौ लीने संग समाज॥

इतनी-सी बात सुनकर हा क्या मेरे प्राणवल्लभ अन्तर्द्धान हो गये हाय हाय में अभागी हूँ। हे मधुसूदन! हा मधुसूदन! आप कहाँ चले गये इस प्रकार उच्च स्वर से विलाप करने लगीं। यह रस शास्त्र में प्रेम वैचित्री अवस्था करके वर्णित है। उज्वलनील-मणि प्रभृति ग्रंथ देखने से इसका पता चलता है। इस माधुरीवाणी में से बहुतसी लीलाएँ चुन चुन कर ब्रज के रासमण्डलीकार लीलानुकरण द्वारा भक्तमण्डली को सुख दिया करते हैं श्री ब्रजलाल बौहरे जी अपनी मण्डली द्वारा यह सब लीलाऐं अति सुन्दर भाव से दरसाते थे।

श्री रूप गोस्वामी प्रभृति आचार्य्य चरणों का यह हार्दिक आशय था।

ब्रजभाषा के प्राचीन कवियों में श्री माधुरी जी मुख्यतम हैं इसमें रंचक मात्र सन्देह नहीं हैं। जिन्होंने माधुरी-वाणी नहीं देखी किम्वा नही सुनी वह सब माधुरी जी के सम्बन्ध में अथवा उनकी वाणी के सम्बन्ध में अपरिचित हैं, किंतु एक-बार देखने से उन्हें अवश्य कहना होगा कि माधुरीवाणी सर्वोपरि है। मिश्र-बन्धु विनोदकार ने माधुरी जी को साधारण कवियों में जो लिखा है सो अपरिचित तथा बिना अनुसंधान के कारण ही, ज्ञात होता है स्यात् विनोदकार ने यह वाणी नहीं देखी होगी। यदि आप एक बार देखते तो इस प्रकार कभी नहीं लिखते। अधिक क्या कहूँ यह वाणी सामने उपस्थित है, रसिकगण स्वयं विचार करलें। इस माधुरीवाणी में विशेषता यह है कि इसके प्रत्येक पद श्री रूपादिक छः गोस्वामियों द्वारा विरचित श्लोक समूह के आधार तथा भाव को लेकर रचे गये हैं। इसमें एक भी ऐसा पद नहीं है जो छः गोस्वामी जी के आधार पर नहीं रचा गया हो। ग्रन्थ वृद्धि के कारण हम यहाँ प्रत्येक पदका समन्वय नहीं कर सके। रसिक पाठकगण इन पदों को लेकर छः गोस्वामी रचित श्लोकों से मिलाकर आनन्दानुभव करें।

केलिमाधुरी में प्रिया प्रियतम के दिव्य केलिका का अलौकिक वर्णन है।

श्री वृन्दावन माधुरी में श्रीबन का सरस वर्णन है—

देखहु प्रिये विपिन की शोभा। उपजत है कछु मन की लोभा।
छाँडहु लता मान घर संग। ह्वै है कछुक रंग में भंग॥
कहुँ सुरँग दारिम सुमनाली। कहुँ रस भरे करक फल पाली।

कहूँ तमाल कदम्ब रसाला। कहुँ डोलत मधुपन की माला ॥
कहुँ बोलत कोकिल कल-बानी। लोलत कहूँ लता सरसानी।

इन सब का आधार रूप श्री रूप गोस्वामी जी के श्लोक देखिये।

क्वचिद्भृंगीगीतं क्वचिदनिल भंगी शिशिरता।
क्वचिद्वल्लीलास्यं क्वचिदमलमल्लीपरिमलः ॥
क्वचिद्धाराशाली कनक फल पाली रस भरो।
हृषीकाणां बृन्दं प्रमोदयति बृन्दावनमिदम् ॥

श्री बिदग्ध माधव नाटक में।

विहार सबै वन को तन में जुर्‌यौ रमि कै मम प्राणन में ॥
कदली कुसुमावलि कुंदलता, विकसे अलि अम्बुज आनन में।
शुक सारस कोक कपोत सिखी प्रगटी पिकु पंचम गानन में ॥
नव वैन कुणे सुरे रंग खरे विहरें नित काम के कानन में ॥माधुरी

बर्होल्लासे वसति शिथिलां केशभारः सुकेश्याः
पश्याऽयेतामलकविततिं चारु भृंगावलीषु
स्मेरास्येन्दो रुदयति कला फुल्लहेमाब्जकोशे
नेत्राञ्चल्याश्चकितहरिणी चातुरी माधुरीभूः ॥
श्रीमन्नासा सुतिल कुसुमे बंधुजीबाधरश्रीः
कुन्दे दन्तावलि विकसितं कैरवे चारुहास्यं।
बल्लीवृन्दे तनुरनुपमा गुच्छसत्कुड्मलादौ
लक्ष्मीर्वक्षोरुह मुकुलयो र्बाहुवल्ली मृणाले ॥
पीनश्रोणि विपुलपुलिने कोमलोरुकदल्यां
रक्ताम्भोजे करचरणयोः कापि शोभा विभाति।
वृन्दारण्य ! त्वयि निबसति व्यस्तरूपा प्रिया मे
सामस्त्येनोल्लसति तु ममाऽत्राति धन्यांक देशे ॥

वृन्दावन शतक

इस प्रकार श्री रघुनाथदास गोस्वामी के रचित मुक्ता-चरित, श्री कविराज गोस्वामी रचित गोविन्द लीलामृता-दिक समस्त गोस्वामी ग्रंथों में भीवर्णित है।

दानमाधुरी में रसराज श्रीकृष्ण हास्य परिहास रस के आस्वादन के लिये स्वयं दानी बनकर श्री जी और ललिता-दिक सखीयों से दान की याचना करते हुए विविध हास्य परिहास कर रहे हैं। यह सब विषय श्री रूप गोस्वामी बिरचित दानकेलिकौमुदी तथा श्री रघुनाथदासगोस्वामी विरचित दानकेलिचिंतामणि प्रभृति ग्रंथों में सरस वर्णित है। मानमाधुरी में श्री राधिका जी अपने प्राणाधार प्रियतम श्रीकृष्ण के श्यामल अंग के कोटिदामिनी चमकन में अपने श्री अंग का प्रतिविम्ब देख अन्य नायिका भ्रम से मानिनी हो बैठीं। जब सखियों के बहु प्रकार यत्न से मान शैथिल्य नहीं हुआ तब श्री ललिता जी की युक्ति से प्रियतम अपने श्री अंग को महीन वस्त्र से ढक कर प्रिया जी के चरणों में नमित हो बैठ गये। तब श्री राधिका ने प्रतिबिंब को न देख शिथिल मानिनी तथा लज्जिता हो प्रियतम को आलिंगन किया। यह सब लीला श्री रूपगोस्वामि प्रभृति पूर्वाचार्य्य रचित उज्वल नीलमणि प्रभृति ग्रंथ देखने से पता लगता है।

इस के अतिरिक्त होरी माधुरी भी परम प्रशंसनीय वस्तु है। होरी माधुरी के पद समूह बरसाना तथा नन्दगाँव के मन्दिर में रंगीली के समय गाये जाते हैं। माधुरी जी की होरी ब्रज में प्रसिद्ध है। ब्रज के प्राचीन भजनानंदी महा-त्माओं के पास प्रायः हस्तलिखित माधुरी बाणी देखने में आती है। ब्रज के प्रसिद्ध महात्मा नित्यलीला प्राप्त श्री बाबा रामकृष्णदास जी महाराज को यह वाणी परम प्रिय

थी। आप नित्य पाठ में इस वाणी को लेते थे तथा अनुगत वैष्णव गण को नित्य पाठ करने को उपदेश देते थे। माधुरी सचमुच ही माधुरी है। पहिले मैंने जयपुर में यह वाणी छपवाई थी। किन्तु जल्दी तथा अनवधान के कारण छपाई में अशुद्धियाँ बहुत रह गयी थीं। अतः रसिकों के लिये पठन पाठन में बहुत असुविधा होती थी। इस लिये रसिकों से क्षमा चाहता हूँ। सम्प्रति पूज्य माननीय (बड़े गुरुभ्राता) बाबा श्री गौरांगदास जी की कृपा इंगित से तथा व्रज के भजनानन्दी प्राचीन वैष्णवों के औत्सुक्य से पुनर्वार यह ग्रंथ प्रकाशन करने में वाध्य हुआ हूँ। छन्द पाठ अशुद्ध न हो इसका यथा सम्भव ध्यान रखा गया है। परन्तु प्राचीन वाणी होने के कारण बहुत स्थानों में सन्देह रह गया। तथापि तीन चार प्राचीन पुस्तकें मिलाकर पाठ देखा है यदि फिर भी अशुद्धि रह गयी हो तो तृतीय संस्करण में शुद्ध कर प्रकाशित करने की चेष्टा करेंगे। प्रत्येक में कुछ ना कुछ पाठ भेद है। पूज्य गौरांगदास जी के कृपापात्र वरसाना (कोसी) निवासी, सेठ बनखण्डि के सुपुत्र, गौरनिष्ठ, लाला चतुर्भुज (हरिसम्बन्धिनाम चैतन्यदास) (उपनाम चेतराम जी) के संपूर्ण आर्थिक सहाय से इस कठिन समय में यह ग्रंथ रत्न पुनः प्रकाशित हुआ है। प्रभु से प्रार्थना यह है कि आप अपने मनोवाछित इच्छा की प्राप्त करें। परिशेष में आगरा प्रतापपुरा निवासी डाक्टर पूर्णचन्द्र शर्म्मा तथा नमकमन्डी आगरा निवासी हरिभक्त गोपालदास जी को धन्वबाद देता हूँ कि आप दोनों सर्व प्रकार सुविधा सहाय देकर ग्रंथ मुद्रण में फल भागी हुए हैं।

विनीत—**वैष्णवदासानुदास कृष्णदास** (कुसुमसरोवर)

श्रीमाध्व-गौडीय सुभाषित रत्न भण्डार

महाकाव्य विभाग—श्रीगोविन्दलीलामृत, श्रीकृष्ण-भावनामृत, श्रीचैतन्यचरितामृत महाकाव्य, श्रीमाधव महोत्सव, श्रीगौरकृष्णोदयमहाकाव्य, संकल्पकल्पद्रुम।

खंडकाव्यविभाग—प्रेमपत्तन, आश्चर्य्यरासप्रबन्ध, चमत्कारचन्द्रिका, प्रेमसम्पुट, व्रजरीतिचिन्तामणि, संकल्पकल्पद्रुम, (विश्वनाथ) मुक्ताचरित, श्रीकृष्णान्हिक कौमुदी।

दूतकाव्यविभाग—हंसदूत, उद्धवसन्देश, शुकदूत,

नाटक विभाग—श्रीजगन्नाथवल्लभनाटक, विदग्धमाधव, ललितमाधव, दानकेलिकौमुदी, चैतन्यचन्द्रोदयनाटक, दानकेलिचिन्तामणि, संगीतमाधवनाटक, प्रेमाख्यनाटक।

चम्पूविभाग—श्रीगोपालचम्पू, श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू, श्रीगौरागंचम्पू, मधुकेलिवल्ली, राधामाधवोदय, रामरसायन, कौतुकांकुर, प्रहसनकाव्य, शृंगारहारावली।

अलंकारविभाग—अलंकारकौस्तुभ, काव्यकौस्तुभ, साहित्यकौमुदी, भक्तिरसामृतशेष, भक्तिरसामृतसिन्धु, उज्वलनीलमणि, भक्तिरसतरंगिनी।

छन्दः शास्त्र विभाग—छन्दः कौस्तुभ, छन्दः समुद्र।

व्याकरण विभाग—हरिनामामृतव्याकरण, प्रयुक्ताख्यातचन्द्रिका, धातुसंग्रह, सूत्रमालिका, शीघ्रबोध व्याकरण।

दर्शनशाखा—गोविन्दभाष्य, सिद्धान्तरत्न (भाष्यपीठक) प्रमेय रत्नावली, वेदान्तस्यमन्तक, प्रमाणलक्षण, कथालक्षण, तत्वसंख्यान, तत्वविवेक, तत्वोद्‌यत।

सिद्धांतग्रंथ—षट्‌सन्दर्भ, वृहद्भागवतामृत, लघुभागवता-

मृत, श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाश, भक्तिसिद्धान्तरत्न, श्री राधा-कृष्णार्चनदीपिका, श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुबिन्दु, उज्वलनील-मणिकिरण, वृहद्भागवताभृतकण, रागवर्त्मचन्द्रिका, ऐश्वर्य्य-कादम्बिनी (विश्वनाथ), ऐश्वर्य्यकादम्बिनी (बलदेव), माधुर्य्यकादम्बिनी, माध्वसिद्धान्तसार, सर्वसंवादिनी ।

कडचाविभाग—"मुरारिकडचा" किंवा चैतन्यचरितामृत, गोविन्ददास जी का कडचा, स्वरूप गोस्वामी जी का कडचा,

शतकविभाग—आर्य्याशतक, चैतन्यशतक, नवद्वीप-शतक, श्यामानन्दशतक, वृन्दाबनशतक ।

भाष्यविभाग—भगवद्गीताभाष्य, ब्रह्मसूत्रभाष्य, अणु-भाष्य, ऋग्भाष्य, ऐतरेयोपनिषद भाष्य, तैत्तरीयभाष्य, इसावास्य भाष्य, काठकोपनिषद भाष्य, छान्दोग्यभाष्य, आथर्वणीयोपनिषदभाष्य, तलवकारोपनिषदभाष्य, राधा-माधवभाष्य, गायत्रीभाष्य ।

संहिताविभाग—विष्णुसंहिता,

वृत्तिविभाग—तत्वोद्योतटीका की वृत्ति, कठोपनिषद् की वृत्ति, केनोपनिषद की वृत्ति, छान्दोग्य की वृत्ति, माण्डुक्य की वृत्ति, गौरविनोदिनी वृत्ति ।

टिप्पनी विभाग—व्याकरण की टिप्पिनी, न्यायशास्त्र की टिप्पनी ।

तात्पर्य्य विभाग—गीतातात्पर्य्यनिर्णय, श्रीभागवत-तात्पर्य्य, महाभारततात्पर्य्य ।

खण्डनविभाग—उपाधिखण्डन, मायावादखण्डन, प्रपञ्च-मिथ्यात्वानुमानखण्डन, न्यायसुधा, न्यायामृत ।

स्मृतिविभाग—हरिभक्तिविलास, सत्क्रियासारदीपिका, संस्कारदीपिका, साधनदीपिका, पद्धतिप्रदीप, श्री कृष्णाभिषेक,

भक्तिचन्द्रिकापटल, सदाचारस्मृति, तन्त्रसारसंग्रह, साधनदीपिका।

व्याख्या विभाग--वृहद्वैष्णवतोषणी, वृहद्भागवतामृत की दिग्दर्शिनी, हरिभक्तिविलास की दिग्दर्शिनी, लघु वैष्णवतोषणी, क्रमसन्दर्भ (वृहत और लघु) ब्रह्मसंहिता टीका, गोपालतापिनी की टीका, दुर्गमसंगमनी (भक्तिरसामृत सिन्धु की), लोचन रोचनी, (उज्वल नीलमणि की) सारंगरंगदा (कर्णामृत की टीका), योगसारस्तव की टीका, कविकर्णपूरकृत भागवत की टीका, दशश्लोकीभाष्य, रसिकास्वादिनी, राधाकृष्णार्चनदीपिका, गायत्रीव्याख्याविवृति, श्रीकृष्णवल्लभा, सारार्थदर्शिनी भक्तहर्षिणी, सारार्थवर्षिनी, भक्तिसारप्रदर्शिनी, दानकेलिकौमुदी की टीका, ललितमाधवटिप्पनी, विदग्धमाधव की विवृति, आनन्दचन्द्रिका, वैष्णवानन्दिनी, हंसदूत की टीका, सुखवर्त्तनी, सुवोधिनी, श्रीचैतन्यचरितामृत की टीका, गोपालतापनी का भाष्य, ईशोपनिषद का भाष्य, गीताभूषणभाष्य, लघुभागवतामृत की टिप्पनी, (सारंगरंगदा और रसिकरंगदा, तत्वसन्दर्भ की टीका, स्तवमाला विभूषणभाष्य, छन्दः कान्तिमाला, कृष्णभावनामृत की टीका, स्तवावली काशिका, सदानन्दविधायिनी, वालतोषणी, संशयशातनी (भागवत की), रसिकरंगदा (पद्यावली की), नामार्थसुधा, अर्थरत्नाल्पदीपिका, (रसामृत की) रसिकाल्हादिनी (भागवत की) तत्वोद्योत की टीका, तत्वसंख्यान की टीका, तत्वविवेक की टीका, प्रपंचमिथ्यात्वानुमानखण्डन की टीका, मायाबाद खण्डन की टीका, विष्णुतत्वविनिर्णय की टीका, ईशावास्य की टीका, प्रश्नोपनिषद की टीका, उपाधिखण्डन की टीका, विजयध्वजीटीका। (क्रमशः)

पूर्वत :—

विरुदावली विभाग—गोविन्दविरुदावली, गोपालविरुदावली, निकुंजकेलिविरुदावली, गौरांगविरुदावली, श्रीकृष्णविरुदावली।

महात्म्य विभाग-मथुरामहात्म्य, व्रजभक्तिविलास, वृन्दाबनमहिमामृत, बृन्दावनलीलामृत, वृहद्‌व्रजगुणोत्सव, व्रजप्रदीप।

परिचय विभाग—गौरगणोद्देशदीपिका, वृहत्कृष्णगणोद्देशदीपिका, लघुकृष्णगणोद्देशदीपिका, श्रीपण्डितगोस्वामीशाखानिर्णयामृत, नरहरिशाखानिर्णय, रघुनन्दनशाखानिर्णय, गौरगणचद्रिका, चैतन्यसंहिता।

सन्दर्भ विभाग—श्रीकृष्णचैतन्यसन्दर्भ, श्रीगदाधरसन्दर्भ, षट्सन्दर्भ, भक्तिभूषणसन्दर्भ।

स्तोत्र विभाग—स्मरणमंगलस्तोत्र, स्तवावली, स्तवमाला, स्तवामृतलहरी, लीलास्तव, निकुञ्ज रहस्यस्तव, नरसिंहनखस्तोत्र, द्वादशस्तोत्र, कृष्णप्रेमामृतस्तोत्र, युगलपरिहारस्तोत्र, श्रीरूपसनातनस्तोत्र, गौरांगलीलामृत।

शिक्षा विभाग—शिक्षाष्टक, मनःशिक्षा।

रहस्य विभाग—वृषभानुपुररहस्य, नन्दीश्वरचन्द्रिका, श्रीचैतन्यरहस्य।

प्रार्थना विभाग—वृहत्प्रार्थनामृततरगिंणी, नरोत्तमठाकुर महाशय की प्रार्थना, प्रेमभक्तिचन्द्रिका।

उत्सव विभाग—व्रजोत्सवचन्द्रिका, व्रजोत्सवाल्हादिनी, व्रजोत्सवचन्द्रिका।

चरित विभाग—श्रीचैतन्यचरितामृत, (बंगभाषा) श्रीचैतन्यचरितामृत (व्रजभाषा) श्रीचैतन्यभागवत, चैतन्यमंगल, अद्वैत-

प्रकाश, अद्वैत मंगल, प्रेमविलास, कर्णानन्द, नरोत्तमविलास, श्रीनिवासचरित्र, रसिकमंगल, भक्तमाल, गौरलीलामृत, प्रेमामृत, जयदेवचरित्र, अद्वैतविलास, चैतन्यविलास, श्रीकृष्णचैतन्योदयावली, बाल्यलीलासूत्र, अनुरागवल्ली, भक्तिरत्नाकर, श्रीसीताचरित्र, भक्तचरितामृत, श्रीचैतन्यमहाभागवत, अमियनिमाईचरित, चरितसुधा।

गीति काव्य—गीत गोविन्द, संगीत माधव।

सञ्चित ग्रंथ—पद्यावली, भक्तिरत्नावली।

पदावली विभाग—(बंगभाषा में) क्षणदागीतिचिन्तामणि, श्री मुरारीगुप्त की, श्री ज्ञानदास की, श्रीवृन्दावनदास ठाकुर की, कृष्णदास कविराज की, श्रीनरहरि सरकार ठाकुर की, श्रीलोचनदास की, श्री रामानन्दवसु की, श्रीवासुदेव घोष की, श्रीवंशीवदन की, श्रीनयनानन्द की, श्रीदेवकीनन्दन की, श्रीशिवानन्द की, श्री यदुनन्दन की, श्री यदुनन्दनदास की, श्री परमानन्दजी की, श्री बलरामदास की, श्री कानुदास की, श्रीदुःखी कृष्णदास की, श्री गोविन्द कविराज की, श्रीगोविन्द चक्रवर्त्ति की, श्री कविशेखर की, राजानृसिंह देव की, श्रीगोविन्द आचार्य्य की, श्री रामचन्द्र कविराज की, राजावीर हाम्वीर की, रायवसंत की, मोहनदास की, वल्लभदास की, श्रीकविवल्लभ की, श्रीराधावल्लभ की, श्रीहरिवल्लभ की, श्रीवलदेवदास की, श्रीप्रेमदास की, श्रीदिव्यसिंह की, श्रीगतिगोविन्द की, श्रीजगदानन्द की, श्रीराधामोहन की, श्रीघनश्याम की, श्रीनरोत्तमदासठाकुर की, श्रीवैष्णवदास की, श्रीमुकुन्दानन्दजी की, श्रीपीताम्बरदासजी की, श्रीमुकुन्ददासजी की, श्रीचन्द्रशेखरजी की, श्रीराधारमणचरणदासदेव की।

अनुवाद विभाग—श्री रूपचिन्तामणि, पाटपर्य्यटन,

गोकुल मंगल, जगन्नाथमंगल, जगन्नाथ विजय, गोविन्द विजय, गोविन्द मंगल, मुकुन्दमंगल, कृष्ण प्रेम तरंगिणी।

पद्धति विभाग—श्री गोपालगुरुपद्धित, श्री ध्यानचन्द्र गोस्वामीकृतपद्धति, भावनासारसंग्रह, साधनामृतचन्द्रिका और पद्धति।

विविध विभाग—(उत्कलभाषा में)—

महाभावप्रकाश, चैतन्यचन्द्रोदय, चैतन्यचन्द्रोदय कौमुदी, चैतन्यभागवत, चैतन्यविलास, ब्रह्माण्डमंगल, चैतन्यवली, जगन्नाथचरितामृत, प्रेमतरंगिणी, प्रेमलहरी, ललितलोचना, गौरचिन्तामणि, युगलरसामृत लहरी, तत्वतरंगिणी, प्रेम-चिन्तामणि, रासपञ्चाध्यायी, कृष्णगर्भगीता, गोपीचिन्ता, भक्तिरत्नावली, उपासना चन्द्रोदय, पूर्णतम चन्द्रोदय, श्रीकृष्ण-तत्वचन्द्रोदय, नवानुराग, व्रजविहार, मुकुन्दमाला, कृष्ण-चन्द्रानन चम्पू, प्रेमरस चद्रिका, मुक्ति चिन्तामण, भजन तत्व, कृष्णकर्णामृत, उडियाभागवत, चैतन्यचरितामृत, कोलाहल-चौतिशा, कलाकौतुक, प्रेमसुधानिधि, विदग्धचिन्तामणि। इन के अतिरिक्त और प्राचीन तथा अर्वाचीन असंख्य ग्रन्थ विद्यमान हैं। ग्रन्थ वृद्धि के कारण समस्त नहीं लिखे गये। समय के अनुसार उद्धृत करेंगे।

—कृष्णदास

॥ इति ॥

॥ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ॥

गौडीयग्रन्थगौरव:—

प्रकाशितग्रंथसंख्या—११५—११६

श्रीमाधवदासजी की वाणी

तथा

आदर्शजीवनी

अर्थसहायक—

बाबा श्रीगौरगोविन्ददासजी के शिष्यगण

सम्वत्—२०२०

मूल्य— १)

प्रकाशक: व मुद्रक:—

कृष्णदासबाबा

गौरहरिप्रेस, कुसुमसरोवर

भूमिका

—०—

प्रस्तुत बाणीकार श्री माधबदासजी के बारे में भक्तमालकार श्रीनाभाजी एवं भक्तमाल-टीकाकार श्रीप्रियादासजी ने अपने उन ग्रन्थों में परिचय दे कर विशेष प्रकाश डाला है। भक्तमाल के ७० संख्यक छप्पय में नाभाजी ने कहा है—

पहले बेद विभाग कथित पुरान अष्टदस।
भारतादि भागवत मथित उद्धारच्यौ हरि जस।
अब सोधे सब ग्रन्थ अर्थ भाषा विस्तारच्यौ।
लीला जै जै जैति गाय भव पार उतारच्यौ॥
जगन्नाथ इष्ट वैराग्य सींव करुनारस भीज्यौ हियो।
बिनै व्यास मनो प्रगट ह्वै जग को हित माधो कियो॥

अर्थात् पहिले बेद-ब्यासजी ने बेद का विभाग, अठारह पुराण, महाभारत–एवं भागवत की रचना कर उनका मथन के द्वारा हरि जस का उद्धार किया। अब वे माधवदास रूप में प्रकट होकर उन समस्त शास्त्रों का सोधन कर भाषा में उन सब का अर्थ विस्तार से लिखने लगे जिसका गान कर सब कोई भवसागर से उतर गये। जगन्नाथ जी जिन के इष्ट थे जिन्होंने वैराग्य-सीमा का आचरण कर दिखलाया तथा जिन का हृदय करुणारस में भीजा हुआ था। मानो जगत के हित के लिये वेदव्यासजी का मन माधवदास जी रूप में प्रकट हुआ। प्रियादासजी ने भक्तिरसबोधिनी टीका में (३१५-३२६) वारह कवित्त में उनको करुणामय जीवन का विस्तार पूर्वक लिखा। वे जाति के ब्राह्मण थे। स्त्री की मृत्यु हो जाने पर उनके मन में प्रवल वैराग्य आ गया। यद्यपि पुत्र को पालन करने

का भार उन पर आ पड़ा तो भी प्रभु ही सबका पालन करते हैं जो पालनादि में अपने को अभिमान रखता है वह मूर्ख है ऐसा मन में सोच कर गृहादि त्याग कर नीलाचल श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र में आकर समुद्रतट में निवास करने लगे। क्षुधा पिपासा का विचार न करते हुए श्री जगन्नाथ के भजन में जुट गये। एकबार बिना कुछ खाये उन को तीन दिन बीत गये परन्तु तनिक भी पीड़ानुभव नहीं हुआ। श्रीजगन्नाथ जी बड़े सोच विचार में पड़ गये। आपने लक्ष्मी जी के द्वारा शयन भोग की वस्तुओं को भेजा। लक्ष्मीजी सोने के थाल में भोग लेकर पैरों के नूपुरों की झन झन ध्वनि से दिशाओं को झमकाती हुई पहुँची। माधवदासजी ध्यानमें इस प्रकार मग्न थे कि उन को कुछ प्रतीत न हो सका केवल बिजली सी चमक का अनुभव हुआ। लक्ष्मी जी सामने में थाल धर कर चली गई पश्चात में उन्होंने जगन्नाथजी का प्रसाद देखकर अत्यन्त प्रसन्नता के साथ भोजन किया एवं वहाँ ही थाल रख दी। उधर प्रातःकाल होने पर पुजारियों ने थाल न देखकर इधर उधर ढूड़ने लगे उन्होंने माधवदासजी के सामने थाल देख कर उन को पकड़ लिया एवं बेतोंसे प्रहार किया। बैंत के वे प्रहार जगन्नाथ जी के श्री अंग में उखड़ आये। तदुपरान्त श्रीजगन्नाथ जी के निर्देश के अनुसार वे सब भयभीत हो गये एवं माधवदासजी से क्षमा प्रार्थना करने लगे। तब से माधवदासजी की कीर्त्ति जगह जगह फैल गई। वे अपनी प्रशंसा सुनकर लज्जित हो सिर झुका लेते। माधवदासजी ध्यान में इस प्रकार निमग्न हो जाते थे। कि उन्हें शरीर का ध्यान नहीं रहता था,कभी कभी वे मन्दिर में रह जाते थे कि किसी को खबर नहीं पड़ता था। एकबार शीतकाल के दिन आप मन्दिर में उघाड़े रह गये, जब रात्रि को ठंड अधिक लगी तब बजाय उनके स्वयं जगन्नाथ जी काँपने लगे। आपने स्वयं अपनी रजाई माधवदास जी को ओढ़ने को दे दी।

एकबार माधवदासजी को संग्रहणी हो गई थी, समुद्र के किनारे पड़े हुए थे, दस्त अधिक बढ़ जाने पर बार-बार जल का आवश्यक पड़ा। आप उठने में अशक्त थे। तब जगन्नाथ जी सेवक रूप बन कर हाथ में जल पात्र ले कर उपस्थित हो जाते थे। आपने अपने कर कमलों से उन के मल-मूत्र से सने हुये शरीर का धौत किया करते थे। प्रभु अपने भक्तवात्सल्य में आकर अपनी ईशता को भी भूल जाते हैं। माधवदास जी की कीर्त्ति जब चारों ओर फैल गई तब वे प्रसिद्धि के भय के मारे एक स्थानमें न रहकर भिक्षा माँगने लग गये। एक दिन भिक्षा करते हुए एक बाई के घर पहुँचे एवं भिक्षा माँगने लगे बाई ने खीझकर पोता फेंक के मारा। वे पोता लेकर चल दिये। पोताके कपड़े को साफ कर बत्ती बनाकर जगन्नाथ जी के दीपक में लगा दिये। और दिनों से उस दिन मन्दिर में अधिक प्रकाश हो उठा तब तो उस बुढ़िया के हृदय का अंधकार (अज्ञान) दूर हो गया। उसने माधवदास जी के पाँव पकड़ कर क्षमा प्रार्थना की। एकबार एक प्रकांड पण्डित दिग्विजय करते हुए पुरी में पहुँच कर पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये बुलाया। पण्डितों ने माधव दासजी के पास उसे भेज दिया। वहाँ पहुंच कर उसने शास्त्र विचारार्थ माधवदासजी को पीड़ित किया। माधवदासजी शास्त्रार्थ किये बिना "हम हारे आप जीते" यह लिख कर दे दिये। उस पण्डित ने पत्र लेकर काशी पहुँच कर पण्डितों को दिखाया। तो उस में लिखा था कि माधवदासजी जीते पण्डित हारा। तब वह पण्डित रीस कर पुन: जगन्नाथपुरीमें आकर माधवदास जी से शास्त्रार्थ के लिये ललकारा। माधवदास जी पहले की तरह 'तुम जीते मैं हारा' ऐसा लिख दिये। पण्डित ने कहा तुम गधे पर चढ़ो। तुम्हारे कानों में जूतियाँ बांध कर समस्त शहर में तुम को घुमाया जावेगा। माधवदासजी ने "स्नान कर आता हूँ" ऐसा कह कर चल दिये। तब श्रीजगन्नाथजी माधवदासजी का रूप

धारण कर वहाँ आ गये। उन्होंने उस पण्डित को जीत कर गधे पर चढ़ाकर और कानों में जूतियाँ बाँधकर समस्त शहरमें फिराया। श्रीमाधवदास जी पुरी धाम में निवास करते हुए श्रीकृष्ण की व्रज लीलाओं का गान किया करते थे। वृन्दावन दर्शन के लिये आप की इच्छा हुई। बृन्दावन के लिये आप चल दिये मार्ग में एक गाँव आया। वहाँ एक भक्त बाई रहती थी आप उसके अतिथि बने। बाई ने रसोइ करवा कर बड़े प्रेम से प्रसाद पवाया। प्रसाद पाने के समय बाई ने देखा कि माधवदासजी के सामने एक सुन्दर श्यामल बालक खड़ा है। उसे देखकर बाई के आखोंसे आँसू आने लगी। माधवदास जी ने उस का कारण पूछा। बाई ने कहा कि यह श्यामल सुन्दर बालक किसका है जो आप बहका लाये। इसके बालक के बिना इसकी माता कैसे जीवित रहेगी। माधवदास जी समझ गये कि श्री कृष्ण ने वालक रूप से वाई को दर्शन दिये।

अब माधवदासजी वहाँ से चलकर एक दूसरे गाँवमें पहुंचे। वहाँ एक महाजन भक्त रहता था। जिसकी भेट पुरी में माधवदासजी से हुई थी। उस समय उसने अपने घर में आने की प्रार्थना की थी। माधवदासजी उसके घर आये। परन्तु वह दैवयोग से अन्यत्र कहीं चला गया था। उस की भक्तिमती स्त्री ने माधवदास जी का बड़ा सत्कार किया। माधवदास जी वहाँ से चल दिये। बाद में वह महाजन आयकर सुना कि माधवदास जी आये थे। तव उसने मिलने को दौड़ा। अपने घर लौट चलने की माधवदास जी से प्रार्थना की माधवदास जी उसे समझा बुझा कर घर भेज दिये। अब माधवदास जी बृन्दावन आ गये। बृन्दावन की मन मोहन शोभा का दर्शन किया। एक दिवस आप विहारी जी के दर्शन में आये। एवं चनों का भोग धरा कर पाने लगे। श्री स्वामी जी ने अनेक प्रकार के भोजन बनाकर विहारी जी का ध्यान किया। विहारी जी बोलने लगे कि माधवदास जी ने चना भोग धराया

हमें अरुचि हो गई।तुम उनको बुलाकर मेरा प्रसाद ग्रहण कराओ। तब स्वामी जी माधवदासजी को ढूढ़ लिये। उन्हें प्रसाद पवाया। बृन्दावन में कुछ दिन निबास कर आप ब्रज की अन्य-लीला स्थलियों का दर्शनार्थ चल दिये। आप भांडीरवट में पहुँचे। वहाँ खेमदास करके एक साधु रहता था। उसके वहाँ आप अतिथी हुए उसने रात में रूखा-सूखा भोजन दे छिपा कर खीर खाने की चाही। जब कि उसने अपने लिये खीर परोसी तब उसने देखा कि खीर में हजारों कीड़े रम रहे हैं। बह समझ गया कि माधवदास जी से कपट करने का यह परिणाम है। तब तो उसने माधवदास जी से क्षमा प्रार्थना की। बृन्दाबन से माधवदास जी हरियाना में पहुँचे वहां किसी आश्रम में कुछ दिन रह कर लीलाओं का श्रवण करने लगे। उस आश्रम में गायों का गोबर थापते थे। जब वहां के रहने वाले सन्तों का "यह माधवदास है" ऐसा पता चल गया तब वे पुनः नीलाचल के लिये लौट गये। उनका अधिकांश जीवन जगन्नाथपुरी में बीता। प्रेमावतार महाप्रभु श्रीगौरांगदेब के परमगुरु श्रीमाधवेन्द्र पुरी ही माधवदासजी के दीक्षागुरु थे। महाप्रभु के दीक्षा गुरु श्रीपाद ईश्वरपुरी थे। इस नाते से माधवदासजी महाप्रभु के चाचा गुरु लगते हैं। निःसन्देह माधवदास जी की उम्र महाप्रभु की उम्र से अधिक थी। उन्होंने नीलाचल में रह कर महाप्रभु की लीला-खेला का सरस अनुभव किया था। ब्रजभाषा के प्रसिद्ध वाणीकार श्रीहरिराम व्यासजी एवं उन के पिता सुमोखन शुक्लजी उन माधवदास जी के शिष्य थे। दोनों ही उन से कृष्णमन्त्र की दीक्षा ली थी। हरिरामव्यासजी के शिष्यत्व सम्बन्ध में साम्प्रदायिकता के कारण कुछ भ्रान्तधारणा फैल गई। जिसका मूल कारण रसिक अनन्यमाल् नामक एक कल्पित पुस्तक है। यह एक भक्तिमार्ग में चलने वाले महानुभावों की शुद्ध ऐतिहासिक जीवनी में बिरोध डालने

वाली पुस्तक है। जिसको भूतपूर्व गोस्वामी रूपलाल ने आगरा के हरजी बणीया के द्वारा मत्सरता से लिख कर एवं भगवंतमुदित जी जो कि गौड़ीय सम्प्रदाय के अनुगत है उन के नाम से आरोपित करके कुछसंख्या में हस्तलिखित प्रस्तुत करा कर उन कापियों को यत्र तत्र लाईब्रेरियों में रख दी। उस में नाना कल्पना की गई। उसमें सब से अधिक कल्पना यह है कि-श्रीचैतन्यमहाप्रभु के परिकर व शिष्य श्रीप्रबोधानन्दसरस्वती जी, पूर्वोक्त हरिरामव्यास जी आदि महानुभाव श्रीहितहरिवंशजीके शिष्य हुए हैं। उस में स्वामी हरिदासजी को भी हरिवंश जी के अनुगत होना बतलाया गया है। अस्तु हरिरामव्यास जी ने नवरत्न व स्वधर्म पद्धति नामक एक ग्रन्थ संस्कृत में लिखा है जिस का प्रकाशन सम्बत् २००९ में हो भी गया है। स्वयं व्यास जी उस ग्रन्थ में अपनी गुरुपरम्परा इस प्रकार देते हैं-

"लक्ष्मीपतिस्ततः श्रीमान्माधवेन्द्रयतीश्वरः।

ईश्वरस्तस्य माधोश्च राधाकृष्णप्रियोऽभवत्।
तस्याहं करुणापात्रं हरिरामाभिधोऽभवमिति" ॥

लगभग तीन सौ वर्ष पहले श्रीनिबासआचार्य प्रभु के परम प्रसिद्ध शिष्य श्रीलालदास महोदय ने वंगभाषा में पयारादि छन्द से नाभाजी कृत भक्तमाल का आधार लेकर अति सुन्दर भक्तमाल लिखी है। उस में कहा गया है:—

"श्री मन्माधवेन्द्र पुरी गोस्वामीर।
शिष्य श्री माधव नाम शिष्य शान्त धीर॥
ताँर शिष्य श्रील हरिराम जे गोसाञि।
अतएव तार वंश माध्वी सम्प्रदाइ॥

वृन्दाबनकथा नामक पुस्तक के २३६ पृष्ठ पर पुलिनविहारी दत्तजी लिखते हैं—

देखिये "बुन्देलखण्डेर अन्तर्गत ओडछा बा ऊर्चा ग्रामे हरिरामव्यास नामे एक जन ब्राह्मण बास करितेन। तिनि माधवेन्द्रपुरीर शिष्य श्री माधबनामक एक जन सन्यासीर निकट मन्त्र ग्रहण करिया वैष्णवधर्मे दीक्षित छिलेन इत्यादि"
व्यास जी के ठाकुर युगलकिशोर जी बृन्दाबनस्थ किशोरी बन (व्यासघेरा) में विराजमान हैं। व्यासवंशी गोस्वामी गण यहाँ निबास करते हैं। वे सब माध्व गौड़ीय से सम्बन्ध रखते हैं तथा उन की दीक्षा, शिक्षा, भजन परिपाटी, तिलकादिकों का धारणादि-क्रिया माध्व-गौड़ीय रीति से होती है। अस्तु प्रस्तुत विषय में हम आलोचना करते हैं कि-इस संकलन में- बाललीला, जानरायलीला, जनमकरमलीला, रथलीला, ध्यानलीला, स्वयम्बरलीला, रघुनाथलीला, नारायनलीला, परतीतिपरीक्षा, ग्वालिनीझगरो, एवं कुछ फुटकर पद सन्निवेशित हैं।
बाललीला में ६६ दोहे, जानरायलीला में १३२ चौपाई, जनमकरमलीला में १०० दोहे, रथलीलामें १६० दोहे, ध्यानलीला में७६ दोहे, स्वयम्बर लीला में २३४ दोहे, रघुनाथलीला में २७६ दोहे, नारायन लीला में २६३ दोहे मौजूद हैं। बाललीला में ब्रजगोपियाँ जसोदा माता के निकट एकत्र होकर श्रीकृष्ण के दधिचौर्य्यादि चंचलता की प्रशंसा गर्भ निन्दा के द्वारा वर्णन करती हुई अन्तरमें प्रसन्नता लाभ करती हैं। इसमें इसका सरस वर्णन है। जानरायलीला में भागवत स्थित कुछ लीलाओं का निर्देश किया गया है। जनमकरमलीला में- श्रीकृष्ण के ब्रजसम्बन्धितलीला रस का बर्णन है। रथलीला में रथयात्रा का सरस बर्णन है। ध्यानलीला में श्री कृष्ण का ध्यान, स्वयम्बरलीला में रुक्मिणी स्वयम्बर का बर्णन, रघुनाथलीला में संक्षेप से रामलीला का बर्णन, नारायणलीला में समस्त भागबत का संक्षेप से बर्णन है। प्रीतिपरीक्षा में श्रीकृष्ण प्रेम-परीक्षा के लिये गोपी वेष बनकर श्री राधिका के निकट

जाते हैं एवं राधिका की सखी बन जाते हैं। दोनोंमें प्रेम का विवेचन, तर्क, वितर्क, समाधान किया जाता है॥ ग्वालिनीझगरो में जब कि ब्रजगोपियाँ दूध दही लेकर वेचने को जाती हैं तब मार्ग में श्रीहरि से भेट होता है। श्रीकृष्ण दानी बनकर दान माँगते हैं दोनों पक्ष में प्रीति कलह होता है।

काशी नागरीप्रचारिणीसभा की लाईब्रेरी में-

६६४।५०३, ग्वालिनीझगरो, १७०५। ६६६, जगन्नाथ महात्म्य ८०६।५६८, जनमकरमलीला, ये तीनों मौजूद हैं। वृन्दावन सर्वेश्वरपुस्तकालय की एक हस्त लिखित कापी जोकि सं१७७६में लिपिबद्ध हुई है। इस कापी में बाललीला, जानरायलीला, जनमकरमलीला, ध्यानलीला, रथलीला, स्वयंवरलीला, नारायनलीला, रघुनाथलीला, मौजूद है। पाटना गुलजारबाग गोस्वामि कृष्णचैतन्यजी के पुस्तकालय में-"परतीतिपरीक्षा" मुझे देखने को मिली। हमारे संग्रह में-नारायणलीला का २ कापी, रघुनाथलीला का १ कापी है। इसके अतिरिक्त मदालसाआख्यान भी उन्हीं के नाम से ख्यात है। उन्होंने महाभारत और इतिहासकथासारसमुच्चय नामक जैसे बिशाल् संस्कृत ग्रन्थों का ब्रजभाषा में अनुबाद किया है। इन सब का खोज होनी चाहिये। अस्तु- इस माधबदास जी की बाणी के साथ एक ही जिल्द में बाबागौरगोविन्ददास जी का जीवन चरित्र उन्हीं बाबा के शिष्यों के उत्साह से प्रकाशित होकर संलग्न किया जाता है। जिसको राधाकुण्ड निवासी श्रद्धेय पञ्चानन शास्त्री ने बङ्गभाषा में प्रस्तुत कर हमें दिये हैं। प्रेमी भक्तसमाज दोनों का पठन पाठन कर सुखानुभब करेगा यह हार्दिक इच्छा है।

बैष्णव दासानुदास

कृष्णदास बाबा

* श्री गौरचन्द्राय नमः *

श्री मुरलीमाधुरी

संकलनकर्ता एवं प्रकाशक

कृष्णदास

(कुसुमसरोवर वाले)

ृत्ति]

मथुरा

[मार्गशीर्ष शु० ११
संवत २०१५

भज निताइ गौर राधेश्याम ।
जप हरे कृष्ण हरे राम ॥

गुरुगौरांगनिष्ठ, वृन्दावनशतकादि ग्रन्थों के
सरस अद्वितीय वक्ता, परम रसिक, बड़े
गुरुभ्राता श्री श्रीगौरांगदास जी
महाराज के पुनीत स्मरण में
यह संग्रह समर्पित है

मुद्रक—जगदीशप्रसाद अग्रवाल, एम. ए, बी कॉम. दी एज्यूकेशनल प्रेस, आगरा।

दो शब्द

श्रीमुरलीधारी की मुरली की माधुरी को कौन नहीं जानता जिसने चराचर जगत् को मोहित किया था तथा जो श्रीकृष्ण की परम सहायकारिणी थी। श्रीकृष्ण में प्रेममाधुरी, लीलामाधुरी, स्वरूपमाधुरी तथा वेणुमाधुरी ये चार गुण विलक्षण रूप से मौजूद थे जिनका अन्य अवतारों में अभाव था। भक्तिरसामृतसिन्धु में श्रीपाद रूपगोस्वामीजी ने कहा है—

सर्वाद्भुतचमत्कारलीला-कल्लोलवारिधिः।
अतुल्यमधुरप्रेममण्डितप्रियमण्डलः॥
त्रिजगन्मानसकर्षी मुरली कलकूजितः।
असमानोर्द्धरूपश्री-विस्मापितचराचरः॥
लीला प्रेम्णा प्रियाधिक्यं माधुर्य्ये वेणुरूपयोः।
इत्यसाधारणं प्रोक्तं गोविन्दस्य चतुष्टयम्॥

मैंने स्वान्तःविनोदार्थ नित्यपाठ के लिए जिन माधुरियों का समस्त गोस्वामी-ग्रन्थ से विस्तरित संग्रह किया था उन के नाम वेणुमाधुरी, वृन्दावनमाधुरी, भक्तिमाधुरी, प्रेममाधुरी, गौरांगमाधुरी, अष्टयाममाधुरी, अलंकारमाधुरी, रसमाधुरी इत्यादि हैं। सम्प्रति प्रभु की प्रेरणा से इनमें से वेणुमाधुरी का प्रकाशन करना आवश्यक समझा। इस संग्रह में समस्त गोस्वामी-ग्रन्थ की मधुर श्लोकावली एक ही साथ एक ही भाव पर मिलेगी। कथक-समाज को यह संग्रह परम सहायक होगा। किमधिकम्, यह संग्रह सब के समक्ष उपस्थित है। आशा है रसिकसमाज इसका सरस अवलोकन कर मुझे चिरकृतज्ञ करेंगे। इस प्रकार के अन्य अनेक संग्रह मेरे पास मौजूद हैं। समय पर उन सबका प्रकाशन करने की इच्छा है। आगे अन्तर्यामी प्रभु की जैसो इच्छा होगी।

मोक्षदा एकादशी
२१-१२-५८

कृष्णदास
(कुसुमसरोवर वाले)

॥ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ॥

गौड़ीयग्रन्थगौरवः—

प्रकाशितग्रंथसंख्या—११४

श्रीमाधवेन्द्रपुरी एवं वल्लभाचार्य्यं

लेखक—

श्रीराधाश्यामवागची

हिन्दीभाषानुवादकः—

श्रीबिश्वम्भरगोस्वामीजी (वृन्दावन)

प्रकाशकः व मुद्रकः—
कृष्णदासबाबा

सम्बत्—२०२०
मूल्यम्— २५ नये पैसे

गौरहरिप्रेस, कुसुमसरोवर

भूमिका

—○—

परमपूज्य पाद श्रीमाधवेन्द्रपुरी एवं बल्लभाचार्य जी की जीवनी के सम्बन्ध में नाना रूप में भिन्न २ ग्रंथों में वर्णन हैं। किंतु शृंखलाबद्ध एवं निष्पक्ष इस संबंध में कोई ग्रंथ नहीं है। उस अभाव को दूर करने के लिये अपनी क्षुद्र मानस की आमोद प्रिय वृद्धि पर आश्रित होकर सर्व साधारण के उपकार के हेतु अनेक दिनों की अभिलाषा पूर्ण करने के लिये इस कार्य में अग्रसर हुआ हूं। यह जो कुछ भी मैंने सफलता प्राप्त की है वह बुद्धिमान भक्तों के ऊपर विचार करने के भार छोड़ दिया है।

कुछ कठिन विषय के संकलन का कार्य बहरमपुर निवासी परम भागवत श्रीयुक्त भगवानदास गुजराती महाशय की व्यक्तिगत एवं उनकी दी हुयी गुजराती, हिन्दी, संस्कृत एवं ब्रजभाषा प्रभृति ग्रंथों की सहायता यदि वे न करते तो मैं यह कार्य करने में असमर्थ था।

श्रीमाधवेन्द्र पुरी एव वल्लभाचार्य के संबंध में कतिपय ग्रंथ आलोचना पूर्वक देखे। जिन में अनेकों स्थान स्व कपोल कल्पित है।

विद्वान गणों के आकर्षण के निमित्त एक दो ग्रंथों के नाम तथा स्थान निम्नलिखित में उल्लेख हुआ है जैसा—

(१) गुसाई जी (विट्ठलनाथजी) की २५२ वैष्णवन की वार्त्ता नामक ग्रंथ में २५१ की वार्ता में श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी को उक्त गुसाई जी (विट्ठलनाथ जी) के शिष्य रूप में वर्णित हैं। एवं अनेक प्रकार के स्वकपोल कल्पित भाव से उल्लि-

खित है। माधवेन्द्रपुरी के मृत्यु के जितने वर्ष पीछे गुसाईंजी का जन्म हुआ है उससे उनके शिष्य होना प्रमाणित नहीं होता है।

(२) (क) वल्लभाचार्य की निज वार्ता ग्रंथ में जो लिखा है वि०सं० १५४८ में वल्लभाचार्य ने श्रीबृन्दाबन पधार कर श्रीकृष्ण-चैतन्यदेव को सुवोधिनी नामक ग्रंथ सुनाया किंतु श्रीचैतन्यदेव का जन्म वि० सं० १५४२ में हुआ एवं वे वि० सं० १५७२ के पूर्व वृन्दाबक नहीं गये। इस लिये उक्त विक्रम सं० १५४८ की सारी बात अमान्य (अलीक) है।

(ख) उक्त निजवार्ता ग्रंथ में श्रीवल्लभाचार्य व जीवगोस्वामी के बीच जो बाद विवाद (वाद-विसम्बाद) का प्रसंग है उसका समय वि० सं० १५४८ उल्लिखित है। श्रीजीवगोस्वामी का जन्म वि० सं० १५६८ में है और वि० सं० १५९१ में उनका बृन्दावन आगमन है। उस समय श्रीवल्लभाचार्य इस पृथ्वी पर वर्त्तमान नहीं थे।

(ग) उक्त निजिवार्ता में और भी उल्लेख हैं कि श्रीवल्लभाचार्य जब श्रीधाम द्वारका तीर्थ यात्रा में गये थे, तब वहां उनकी मूर्ति नहीं थी। और बुढ़ाना नामक एक भक्त उस मूर्ति को डाकोर जी नामक एक ग्राम में ले गया था। तब इस मन्दिर में कोई मूर्ति न होने के कारण से वहां के पण्डों ने वल्लभाचार्य से अन्य मूर्ति स्थापन करने का अनुरोध किया। उन्होंने भूमि के गर्भ में से एक मूर्ति बाहर निकाल कर उस मन्दिर में स्थापना की। किंतु यह बात सत्य नहीं है। कारण कि यह घटना उनके जीवन के ३०० वर्ष पूर्व पहले घटी थी। तब श्रीबिल्वमङ्गल ठाकुर महाशय विद्यमान थे। उनके नाम के स्थान पर बल्लभाचार्य का नाम कल्पित कर दिया गया।

(३) (क) वल्लभाचार्य बैठक चरित्र नामक ग्रंथ में यह सब

विषय लिखा है। उसे पढ़ कर बालकों की सी बात मालूम होती है। उदाहरण स्वरूप कई एक प्रसंग लिखे जाते हैं जैसे—

दूसरी बैठक में उल्लेख है कि श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ने एक समय अपने मन में विचारा कि मैं श्रीनाथ जी की सेवा पूजा करूँगा। किंतु अर्न्तयामी भगबान श्रीनाथ जी ने उनको आदेश दिया कि यह तुम्हारा अधिकार नहीं है। वह अधिकार वल्लभाचार्य का है। तुम्हारा भजन का अधिकार है।

(ख) चौथी बैठक में उल्लेख है कि जब गोपालभट्ट गोस्वामी नारायण-शिला की सेवा पूजा करते थे, तब उनकी सेवा करते करते एक दिन उनकी मूर्ति पूजा की प्रबल इच्छा हुयी। यह श्री-चैतन्यदेव के सामने प्रगट की और वे अपनी असमर्थता प्रगट करते हुये बोले कि—"वल्लभाचार्य की इच्छा करने पर नारायण शिला से स्वरूप मूर्ति प्रगट कर सकते हैं।" इसके बाद भट्ट गोस्वामी ने अपनी इच्छा वल्लभाचार्य के सामने व्यक्त की। उन्होंने उस शालिग्राम शिला में से श्रीराधारमण की मूर्ति के दर्शन कराये। उक्त प्रसंग सम्पूर्ण साम्प्रदायिक एव कल्पित है। जिस समय शालिग्राम शिला में से विग्रह प्रगट हुआ उस वि० सं० १५९२ में प्रगट रूप में बल्लभाचार्य इस धाम में ही नहीं थे।

(ग) तेरहवी बैठक में उल्लेख है कि जो श्रीराधिका ने कृष्ण प्रेमामृत ग्रंथ लिखकर बल्लभाचार्य को दिया। उनसे केशव काश्मीरी तथा चैतन्यदेव ने यह ग्रंथ मांगा। किंतु यह ग्रंथ श्री-चैतन्यदेव को दिया। यह भी स्वकपोल कल्पित है। क्यों कि ब्रजधाम में बल्लभाचार्य और चैतन्य देव का कभी भी मिलन नहीं हुआ।

जब चैतन्यदेव ब्रजधाम में तीर्थ तात्रा करने को गये थे तब वे चारनाट में थे। जब चैतन्यदेव ब्रज में लौट कर आये तब वे

प्रयाग के पास अरैल ग्राम में थे। उस समय बल्लभाचार्य (वल्लभ भट्ट) चैतन्यदेव को निमंत्रण कर अपने घर ले गये।

(घ) दसवीं बैठक में उल्लेख है कि श्रीचैतन्यदेव ने गोवर्द्धन में मानसी गंगा के तट पर भजन आरम्भ करने के समय यह संकल्प किया जब तक यह गंगा जल दूध के रूप में परिवर्तित नहीं होगा तब तक इसी स्थान पर भजन करेंगे। इस प्रकार ६ मास व्यतीत होने पर बल्लभाचार्य ने वहां आकर जैसे ही अपने कमण्डल में से जल के छींटा उनके नेत्रों पर दिये वैसे ही उन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त हुयी और उस जल में दूध के दर्शन करने लगे। यह सब अमान्य कारण है। क्यों कि चैतन्यदेव ने इस स्थान पर केवल एक रात्रि वास किया।

(ङ) इक्कीसवी बैठक में उल्लेख है कि भाण्डीरवन में बल्लभाचार्य के साथ माधवेन्द्रपुरी के परम गुरु श्रीव्यासरायतीर्थ के साथ अनेक आलोचना के बाद व्यासराय जी ने उनको शिष्य होने के लिये कहा। तब उनने विचार करने के लिये एक दिन का समय मांगा। इस बीच में रात्रि के समय बल्लभाचार्य के कई एक शिष्यों ने व्यासराय जी को मुगदर द्वारा मारा। फिर व्यासराय जी बल्लभाचार्य के शरणापन्न हुये। यह सब बात जिसने लिखी है उन्होंने निज सम्प्रदाय के गौरव वृद्धि को छोड़ कर और कोई सत्य कारण नहीं है। किंतु अन्य प्रामाणिक ग्रंथों की आलोचना से इस गौरव रक्षा नहीं हो सकती सम्भवतः यह समझने का उन्होंने विचार नहीं किया।

जो हो निज सम्प्रदाय के उत्कर्ष के लिये किसी महापुरुष को ऐसी अयुक्ति पूर्ण प्रमाणों के आधार पर ठहरान ज्ञानवान लेखकों का उचित नहीं है। यह बुद्धिमान पाठक विवेचना करेंगे।

श्रीव्यासराय तीर्थ के शिष्य नारायणेन्द्र तीर्थ के निकट श्री-

वल्लभाचार्य ने सन्यास ग्रहण किया। इस लिये वे वल्लभाचार्य के परम गुरु हुये। श्रीनाथ जी की प्रगट वार्ता एवं गोवर्द्धन नाथ की प्रगट वार्ता नामक इन दो ग्रंथों में श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी को बड़े ही हीन भाव से वर्णन किया है। वल्लभाचार्य के जीवन काल में उनकी जीवन के संबंध में उनके किसी शिष्य एवं पुत्र की कोई लिखित पुस्तक नहीं है। किंतु बाद में उनके पुत्र विट्ठलनाथ के जीवन कालमें उनके[विट्ठलनाथजी]गदाधरदास नामक एक शिष्य ने सम्प्रदायप्रदीप एवं गोपालदास नामक अन्य शिष्य ने बल्लभाख्यान नामक ग्रंथ की रचना की ऐसा उल्लेख है। किंतु वह भी मिथ्या कारण है। गदाधरदास ने श्रीवृन्दाबन में गोविन्दजी के मन्दिर में बैठकर यह ग्रंथ लिखा था। यह उनके निजी ग्रंथ में स्वयं उनका कथन हैं। किंतु यह मन्दिर वि० सं० १६४७ में जयपुर के राजा मानसिंह द्वारा निर्मित है। उसके पूर्व ही विट्ठलनाथ जी ने यह धाम त्याग कर दिया।

गोपालदास के उस बल्लभाख्यान रचना संबंध में पुष्टि सम्प्रदाय के ग्रंथ में लिखा हुआ है कि यह गोपालदास पहले गूंगे थे। किंतु विट्ठलनाथ जी की कृपा से यह बोलने लगे और इस समय उन्होंने विट्ठलनाथ जी के सामने 'वल्लभाख्यान' की रचना की। उक्त ग्रंथ के ९ वे आख्यान में विट्ठलनाथ जी के सप्तपुत्र और सप्तपुत्रबधू का उल्लेख है। किंतु उनके जीवन काल में उनके कनिष्ट पुत्र घनश्याम जी का विवाह नहीं हुआ था। इसलिये यह प्रमाणित होता है कि यह विट्ठलनाथ जी के तिरोभाव हो जाने के पीछे यह ग्रंथ लिखा गया है।

वल्लभाचार्य की सम्प्रदाय के जितने भी ग्रंथ हैं उनमें उनके जन्म सम्बन्ध में दो मत हैं। एक मत से उनका जन्म वि०

सं० १५२६ और दूसरे मत में वि० सं० १५३५ में है। किंतु वि० सं० १५२६ के बारे में प्रमाण मिलते हैं वल्लभाचार्य ने काशी में माधवेन्द्रपुरी के निकट विद्या अभ्यास किया इसके बहुत से ग्रंथों में प्रमाण है एवं पुरीजी वि० सं० १५३५ में काशी छोड़ कर ब्रजधाम में चले गये थे इसके बहुत प्रमाण हैं। इस लिये उनका विद्याभ्यास उनके पूर्व ही हुआ था। अतएव दोनों मतों के बीच में पूर्व मत ही प्रबल है।

वि० सं० १५३५ में उनका जन्म हुआ यह पहले द्वारकेश लाल जी [मूल पुरुष के लेखक] ने लिखा है। इसके पूर्व और किसी ने नहीं लिखा। गोकुलनाथ जी के शिष्य गणों के ग्रंथों में वि० सं० १५२६ में देखा जाता है।

द्वारकेशलाल जी का वि० सं० १५३५ में उल्लेख करने का कारण अनुमान होता है कि यह केवल बल्लभालार्य की माहात्म्य बृद्धि के लिये है एसा जानना। श्रीमाधवेन्द्र पुरी के गोपालदेव (श्रीनाथजी) का प्रकट १५३५ वि० संवत् में जिस मास एवं जिस दिन जिस समय कहा गया है उन्होंने बल्लभाचार्य जी का प्रगट लीला ठीक उसी रूप में लिखा है।

रामानुज, मध्वाचार्य, निम्बाकाचार्य एवं विष्णुस्वामी थे चार वैष्णव सम्प्रदाय के बीच में बर्तमान बल्लभाचार्य की पुष्टि सम्प्रदाय विष्णुस्वामी जी परम्परा में कही गयी है।

पहले बल्लभाचार्य जी विष्णुस्वामी संप्रदाय में थे इसका उनके बालकाल के जीवनचरित्र में प्रमाण है किंतु बाद में जो सुबोधिनी नामक भागवत की टीका रचना की उसमें तृतीय स्कंध "भक्तियोगं चतुर्विधं" इत्यादि श्लोक की टीका में उन्होंने विष्णुस्वामी संप्रदाय के मतावलम्बी को तामसी प्रकृति वाला कहा है और अपने को निगुर्ण उपासक कह कर विष्णुस्वामी संप्रदाय से अलग रखा है।

वल्लभाचार्य एवं माधवेन्द्रपुरी की सम्पूर्ण जीवनी न प्राप्त हो सकने पर भी जो पाईगयी सत्य प्रतीत हुयी वही लिखी गयी है।

बुद्धिमान पाठक गणों से यह सविनय प्रार्थना है इस सफल ग्रंथ में वह मूल मिथ्या व प्रमाद मालूम पड़े तो उसे कृपा कर सूचित करें तो हम उनके बड़े कृतज्ञ होंगे।

जो इस ग्रंथ के मूल उत्साही है तथा जो मेरे परम मित्र हैं उनके विशेष अनुरोध से यह ग्रंथ की भूमिका लिखी गयी है। किंतु किसी उपयुक्त व्यक्ति के ऊपर यह भार होता तो पाठक गण विशेष लाभ उठाते।

इति—

वहरमपुर, मूर्शिदावाद
२७ शे आषाढ़ १३४४

विनीत
श्री राधाश्याम बागची
व्याकरण तीर्थ, काव्यरत्न
वहरामपुर—मुर्शिदावाद

१३२

सानुवाद

श्रीमहाप्रभुग्रन्थावली

(१) शिक्षाष्टकं (२) प्रेमामृतरसायनस्तोत्रं
(३) युगलपरिहारस्तोत्रं
(४) श्रीराधारसमञ्जरी

प्रेमावतार

श्रीमन्महाप्रभुकृष्णचैतन्यदेवमुखपद्म
विनिर्गता

प्रथमावृत्ति १०००
संवत २००६
बसन्त पञ्चमी
न्यौछावर ।–)

प्रकाशक व अनुवादकः-
कृष्णदास बाबा,
कुसुमसरोवर, (गोवर्द्धन)

दो शब्द—

देखौ आली गौर मेघ उल्लास ।
श्रीअद्वैत पवन पुरवाई करुना विजुरी विलास ॥ १ ॥
अन्तर श्याम घटा प्रगटत है अरुनांवर परकास ।
नामधुनी गरजत प्रेमामृत बरसत हैं रसरास ॥ २ ॥
कबहूँ परत वैबर्ण्य इन्द्रधनु धुरवा अश्रु निकास ।
उपजत है रोमांच सस्य वहु निरखत पूरै आस ॥ ३ ॥
पोखत चातिक रसिक भक्तजन हरत हैं विरह हुतास ।
नव अनुराग नदी उमगी है कर्म धर्म तट नास ॥ ४ ॥
देत बहाय त्रास लज्जा तृन कपट पंक नहिं तास ।
श्री बृन्दाबन प्रेमसिंधु मिल गुन मञ्जरी सुखवास ॥ ५ ॥

आज प्रेमावतार, प्रेमदाता, करुणावरुणालय, नाम संकीर्त्तन के पिता, राधाराधारमण मिलित विग्रह, जगन्नियन्ता, जगदाधार, भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु जी के मुखकमल विनिर्गत स्तोत्र चतुष्टयी प्रकाशित हो रही है। श्रीप्रभु ने जगत् में अवतार लेकर ब्रह्मादुर्ल्लभ जो सर्वोच्च महान् प्रेम धन को प्राणिमात्र में प्रदान किया है उससे जगत् सर्वकाल के लिये अवश्य आभारी रहेगा। यदि श्रीमहाप्रभु पृथिवी में प्रगट नहीं होते तो प्रेमवस्तु को कौन जानता ? कलिकाल में नाम संकीर्त्तन ही एक मात्र परम उपाय है, इसे कौन समझता ? श्रीवृन्दाबन रस माधुरी में कौन का मनः निमग्न होता ? तथा श्री राधिका को कौन जानता ? उपरोक्त समस्त वस्तु श्रीमहाप्रभु की देन है।

इस विषय में बृन्दावनशतककार श्रीप्रबोधानन्द सरस्वति ने श्रीचैतन्यचंद्रामृतनामक स्वनिर्म्मित ग्रंथ में कहा है—

प्रेमा नामाद्भुतार्थः श्रवणपथगतः कस्य नाम्नां महिम्नः,

को वेत्ता कस्य वृन्दावनविपिनमहामाधरीषु प्रवेशः ।
को वा जानाति राधां परमरसचमत्कारमाधुर्य्यसीमा
मेकश्चेतन्यचंद्रः परमकरुणया सर्वमाविश्चकार ॥

इस पर पदकर्त्ता की वाणी भी—

यदि गौराङ्ग ना हत किमेने हइत केमने धरिताम दे ।
श्रीराधार महिमा, रससिंधु सीमा जगते जानात के ॥
मधुर बृंदाबिपिन माधुरी प्रवेश चातुरी सार ।
वरज युवती भावेर भकति शकति हईत कार ॥

श्रीकृष्ण तो केवल प्रेम का आस्वादन करने के कारण ही प्रभु हैं । उसी प्रेम महाधन का प्राणिमात्र को आस्वादन कराने के कारण वे महाप्रभु हैं । सब कोई उन्हें महाप्रभु करके पुकारते थे । वे रूढ़िबृत्ति से महाप्रभु करके प्रसिद्ध हुए । प्रेमावतार आप की प्रेम पराकाष्ठा का कहाँ तक वर्णन हो सकता है । वे कभी तो उत्कट प्रेम के आवेग में आकर कूर्म्माकार हो जाते थे, कभी श्रीविग्रह के जोड़ समूह के छूट जाने पर लम्बायमान हो जाते थे, कभी तपायमान सुवर्ण पिंड के बराबर बन जाते थे, तो कभी नेत्र कमल से पिचकारी की तरह इस प्रकार अश्रुधारा छूटती थीं, जिससे कि पृथ्वी में पनारे बह जाते थे । इस विषय में श्रीप्रियादास जी ने कहा है—
"आवै कभू प्रेम हेम पिंडवत तन होत कभू संधि संधि छूटि अंग बढ़ि जात है । और एक न्यारी रीति अश्रु पिचकारी मानौ उभै लाल प्यारी भाव सागर समात है ।"

यहीं उनके लिये प्रयुक्त महाप्रभु शब्द का सार्थक होता है । अन्य अन्य अवतारों में इस प्रकार होना तो दूर रहा स्वयं उनके कृष्णस्वरूप में भी इसका अभाव था । स्वयं ब्रजविहारी, नन्दनन्दन उस अभाव की पूर्त्ति के लिये ही तो गौरांग रूप से

प्रकट हुए थे। वह यह था कि-श्रीराधिका का प्रेम कैसा है? उस प्रेम में कैसी मधुरिमा है और उस प्रेम सुख में आकर रधिका जी कैसी विभोरा हो जाती थीं? इने तीनों वाञ्छाओं की पूर्ति के लिये श्री नन्दनन्दन व्याकुल हो जाते थे। इसलिये ही आप राधा भाव से विभावित होकर उनकी सुवर्ण गौर कान्ति से अपने को ढँक कर मनोहर गौराङ्ग रूप से नवद्वीप में प्रकट हुए, और भी श्रीकृष्ण की एक महान् इच्छा थी कि मैं उसी राधा प्रेम को प्राणिमात्र में वितरण करूँगा, जिसे कभी किसी ने नहीं दिया। फिर उस समय युगावतार का समय भी आ पड़ा। कलिकाल का एक मात्र धर्म्म नाम संकीर्त्तन है। उसी के द्वारा ही प्रेम वितरण हो सकता है, ऐसा विचार करके युगावतार को साथ में ले भक्त भाव से स्वयं भक्ति के आचरण करते हुए वह प्रभु ने सब को सिखाया कि कलियुग में नाम कीर्त्तन के द्वारा ही प्रेम प्राप्त हो सकता है:—

निज कृष्ण भये गौराङ्ग महाप्रभु भाव राधिका लीनोरी।
दर्पन में अवलोकि मुख निज कुंवर मनोरथ कीनोरी॥
ए विधि आस्वाद करै अपनी सुख परहित में चित दीनोरी।
श्री गोपालदास प्रभु प्रगटे प्रेम सुधारंगरस भीनोरी॥

भक्तमाल के टीकाकार श्रीप्रियादास जी के गुरु, परमरसिक, कवि चूडामणि श्रीमनोहर जी के एक सुललित पद दे कर अपनी विज्ञप्ति शेष करते हैं—

निशि दिन इहे शोच मेरे उर।
कोन काज ब्रजराज कुवरवर धारयौ गौर कलेवर॥ १॥
मुख को परम सदन वृन्दावन परिजन निपट सनेह।
सो सुख छाडि वसत नदीया पुर समझि परत नहीं यह॥ २॥
संकीर्त्तन रस संतत विलसत कौन माधुरी तामें।

भोगी रस सृंगार सार तजि लोभी होय रहे या में ॥ ३ ॥
जा को भाव करि ऐसी सो सबतें अधिकाई ।
इह अनुमान मनोहर तन मन चरण कमल वलि जाई ॥ ४ ॥

अहो इस विषय को लेकर परमरसिका देवी मीरा ने कैसा सरस पद गाया है-यह पद मीरा के पद संग्रह में गीता गोरखपुर से छप चुका है—

अबतौ हरी नाम लौ लागी ।
सब जग को यह माखन चोरा नाम धरयौ वैरागी ॥ १ ॥
कित छोड़ी वह मोहन मुरली कित छोड़ी सब गोपी ।
मुंड मुँडाई डोरि कटि बाँधी माथे मोहन टोपी ॥ २ ॥
मात यशोमति माखन कारण बाँधे जाके पाँव ।
श्याम किशोर भयो नवगोरा चैतन्य जाके नाँव ॥ ३ ॥
पीताम्बर को भाव दिखावे कटि कौपीन कसै ।
गौर कृष्ण की दासी मीरा रसना कृष्ण बसै ॥ ४ ॥

महाप्रभु के चरण उपासक, अनेक पदों के रचयिता, रसिकवर आनन्दघन जी ने कहा है—

श्री चैतन्य दयानिधि धीर ।
कलिकालीन मलिन दीन जन पावन करन परम गंभीर ॥
पूर्णचंद्रनदनंदन को उदै सदा उमगन की भीर ।
बोहित नाव चढ़ाये बहुत जन प्रेम मगन कर पठाये तीर ॥
भाव तरंग अभंग विभंग गति महामधुर रसरूप शरीर ।
निज जन रतन जाल युत राजत धुन हुंकार उसांस समीर ॥
त्रिविध तापते जरे जीव जे शीतल किये परस पद नीर ।
करुना दृष्टि बृष्टि सों सींचे जय जय आनन्द मुदीर ॥

आपका प्रकाटयकालसं० १५४२तथा अन्तर्द्धानका समय सं० १५६० है। फाल्गुन पूर्णिमा सन्ध्या के समय ग्रहण के योग में आपका

शुभ प्रादुर्भाव है। पिता मिश्रपुरन्दर श्रीजगन्नाथ,माता श्रीशचीदेवी हैं। वाल्य काल में विविध बालक्रीड़ा व विद्याविनोदादिक परम उपासनीय वस्तु हैं। कैशोर व नवयौवन में उन प्रभु के द्वारा नवद्वीप व समस्त बंगाल में हरिनाम संकीर्त्तन से गूँज उठा और समस्त जगत् प्रेम का पात्र बना। सब कोई वैष्णव हुए, चौबीस वर्ष की अवस्था में आप सन्यासाश्रम का ग्रहण कर नीलाचल में आये। छै वर्ष यावत् गमनागमन, तीर्थ पर्य्यटन, वृन्दावन यात्रादिक लीयाएँ कीं। शेष अठारह वत्सर नीलाचल में रहकर स्वरूप गोस्वामी, रायरामानन्दादिक अन्तरङ्ग पार्षदों के साथ राधा भाव का मधुर आस्वादन किया।

तब जगत् प्रेमवन्या में बह गया। इधर आपने रूप, सनातनादिक गोस्वामिगणों में अपनी शक्ति का संचार कर ब्रज के लिये भेजा। वे सब ब्रज में आकर लुप्ततीर्थों का प्राकट्य, तथा अनेकानेक ग्रंथों का निर्माण के द्वारा राधातत्त्व, कृष्णतत्व, प्रेमतत्त्व, रसतत्त्व, ब्रजतत्वादिकों का प्रचारण कर भक्ति की महिमा को सर्वत्र फैलाने लगे! महाप्रभु के स्वनिर्म्मित मतव्यञ्जक कोई विस्तृत ग्रन्थ नहीं हैं। उन्होंने विद्याविलास के समय कलापव्याकरण की एक टीका लिखी थी, परंतु वह प्राप्त नहीं है। आपने न्याय की एक टीका की भी रचना की थी, किन्तु उसे रघुनाथशिरोमणि के जो कि उस समय जगत् प्रसिद्ध अद्वितीय नैयायिक पण्डित थे उनके मनस्ताप समझ कर नौकाविहार के समय गंगागर्भ में बहा दिया था। शिक्षाष्टक उनके मुख पद्म विनिर्गत, जग प्रसिद्ध वैष्णवों का परम धन है।

"निजप्रेमामृत व कृष्णप्रेमामृत" स्तोत्र उन्हीं प्रभु के मुख पद्म से विनिर्गत हुआ था। सर्वत्र प्रचीन प्रतियों में

श्रीकृष्णचैतन्यदेव के नाम से यह देखने में आरहा है। उदाहरण रूप:—

१—काशी सरस्वती विद्यापीठ—नं० ६४६ (१३) प्रेमामृतस्तोत्र।
"इति श्रीकृष्णचैतन्यमुखपद्मविनिसृतं निजप्रेमामृतं स्तोत्रं सम्पूर्णं।

२—वराहनगर—श्रीभागवताचार्य्य पाटवाडी, ग्रन्थागार, (कलिकत्ता) महाप्रभुकृत—नं० ४७।

३—काशी, नागरी प्रचारिणी सभा—नं० १७।२। कृष्णचैतन्यदेवविरचित प्रेमामृतस्तोत्रं।

४—वृन्दावन, राधारमण जी मन्दिर, गोस्वामि श्रीमधुसूदन सार्वभौम के ग्रन्थागार—

" निजप्रेमामृतस्तोत्रं—श्रीकृष्णचैतन्यदेव-मुख-पद्म विनिर्गतं"। इसमें श्रीवल्लभाचार्य्य जी के आत्मज श्रीविठ्ठलेश जी के द्वारा विरचित अति सुन्दर सुविस्तृत व्याख्या है। इस व्याख्या का प्रारम्भ में—"अथ श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्र-मुख पद्म - विनिसृतं निजप्रेमामृतं लिख्यते" अन्त में—"इति श्रीमच्छ्रीकृष्णचैतन्यचन्द्र मुखपद्माद्विनिसृतं निजप्रेमामृत व्याख्या समाप्तम्"।

५—श्रीवृन्दाबन गोस्वामि श्रीबनमालीलालजी के ग्रन्थागार में-
"इति श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रमुखपद्म विनिसृत निजप्रेमामृतस्तोत्रं"

६—जयपुर—श्री सरसमाधुरी जी के द्वारा प्रकाशित नित्यपाठ संग्रह में—श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रमुखपद्मविनिर्गत " निज प्रेमामृतस्तोत्रं"

७—मेरे पास मौजूद एक प्राचीन प्रति में—'श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रमुखपद्मविनिर्गत "निजप्रेमामृतस्तोत्रं"

इन सब प्राप्त प्रमाणों से निःसन्देह यह सिद्ध हुआ है

कि यह स्तोत्र महाप्रभु कृष्णचैतन्यदेवके द्वारा विरचित है। अन्य किसी के द्वारा नही है । यदि अन्यत्र कोई किसी के नाम से छाप दिया हो यह ठीक नहीं समझा जायगा । उनके द्वारा कहा हुआ युगलपरिहार नामक स्तोत्र भी हमें प्राप्त हो रहा है। हम भी "नित्यक्रियापद्धति" नामक संगृहीत पुस्तक में शिक्षाष्टक, निजप्रेमामृतस्तोत्र, युगलपरिहार स्तोत्र का प्रकाशित कर चुके हैं। वराहनगर ग्रंथमन्दिर श्रीभागवताचार्य्य पाटवाडी और अन्यत्र बहु स्थलों में से यह स्तोत्र महाप्रभु के नाम से मिलता है। परमाराध्य श्रीगुरुदेव बाबाजिमहाराज के द्वारा प्रकाशित "साधककंठमाला" नामक नित्यक्रिया संगृहित पुस्तक में शिक्षाष्टक, प्रेमामृत स्तोत्र, युगलपरिहारस्तोत्र कई संस्करण में मुद्रित हो चुके हैं।

"राधारसमञ्जरी" नामक श्रीराधा महिमा परक एक स्तोत्र भी प्राप्त हुए हैं। बृन्दाबन श्रीगोस्वामि विजयकृष्णजी के पुस्तकालय में से उनके आत्मज गोस्वामि अतुलकृष्ण जी के द्वारा दो प्राचीन प्रतियाँ प्राप्त हुईं। गोस्वामि नीलमणि के ग्रंथागार भक्तिविद्यालय वृन्दाबन में एक प्रति, गोस्वामि श्रीकृष्णचैतन्यजी (पाटना)के पुस्तकालय में एक प्रति,श्रीगोस्वामि राधाचरणजी (बृन्दाबन) के पुस्तकालय में एक प्रति, वराहनगर, श्रीभागवताचार्य्यजी के पाटवाडी में एक प्रति, गिरिराज तरहटी निवासी बाबा श्रीअच्युतानन्ददास जी के पास एक नूतन प्रति मौजूद है। उन सब प्रतियों को देखकर मन में तीव्र इच्छा हुई कि इसे भी महाप्रभुग्रंथावली में प्रकाशित करें। गुरुगौराङ्गगणों की पुनीत कृपा से बहुत दिनों की यह वासना आज पूर्ण हुई है। इसमें केवल मूलानुसार हिन्दिभाषा रखी गई है। आशा है प्रेमीरसिक गण इस महाप्रभुग्रंथावली को अपनाकर कंठहार

कर रखेंगे। इच्छा तो प्रबल थी कि महाप्रभु गौराङ्गदेव के द्वारा विरचित निजप्रेमामृत व कृष्णप्रेमामृत स्तोत्र की श्रीविट्ठलेश की टीका के साथ छपाने की। परन्तु यह स्तोत्र श्रीविट्ठलेश की टीका के साथ मणीलाल इच्छाराम देशाई गुजराती पत्रिका आफिस बम्बई में छप चुका है, ऐसा सुनकर छपाने का विरत रहा। अभी तक यह पुस्तक मेरे हस्तगत नहीं हुई है। हाँ प्राचीन हस्तलिपी पुस्तक का दर्शन सौभाग्य मिला है। इति।

परिशेष में हम मथुरा, गौघाट, लक्ष्मीगलि निवासी पण्डित श्रीनारायण देव कौशिकी को धन्यवाद देते हैं कि आपने इस ग्रंथ के अनुवाद संशोधन कार्य्य में सहाय देकर चिर-बाधित किया।

वैष्णवदासानुदास—

कृष्णदास।

भज—निताई गौर राधेश्याम ।

जप—हरे कृष्ण हरे राम ॥

परमाराध्य, संकीर्त्तन प्रचारक, प्रेममयविग्रह, श्रीराधा-
रमणचरणदासदेव (बड़े बाबाजी) के अनुगत,
नित्यधामगत, श्रीगुरुदेव बाबाजिमहाराज
१०८ श्री बाबा (रामदासजी) के
पुनीत स्मरण में यह ग्रन्थ
समर्पित है।

❀ दो शब्द ❀

ब्रज की गौरव वृद्धि करने वाले महात्माओं में नारायण-भट्ट का सर्वोपरि महत्व है, किन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहास में उनका अत्यन्त अपूर्ण और त्रुटिपूर्ण वर्णन मिलता है। यहां तक कि उनका जन्म-संवत् भी अशुद्ध लिखा गया है।

नारायण-भट्ट की सातवीं पीढ़ी में एक जानकीप्रसाद-भट्ट (जन्म सम्वत् १७२२) हुए हैं। उन्होंने संस्कृत में "श्री नारायणभट्टचरितामृतम्" की रचना सं० १७७० के लगभग की थी। उक्त ग्रन्थ में नारायणभट्ट का आद्योपान्त जीवन-वृत्तान्त अत्यन्त विस्तार पूर्वक लिखा गया है। ग्रन्थ के अन्त में लेखक ने बतलाया है कि इसकी रचना उन्होंने अनेक ग्रन्थों के अव-लोकन के उपरान्त की है और इसके वर्णन के सम्बन्ध में उन्हें कोई भ्रम अथवा सन्देह नहीं है। इस ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि इसकी रचना में उस समय की प्रचलित किंवदन्तियों और अनु-श्रुतियों का भी आधार लिया गया है, फिर भी नारायणभट्ट के जीवन-वृत्तान्त के लिये यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

"श्री नारायणभट्टचरितामृतम्" से ज्ञात होता है कि उनका जन्म सं० १५८८ की वैशाख शुक्ला १४ (नृसिंहचौदस) को दक्षिण के मदुरा नगर में हुआ था। वे भृगुवंशी दीक्षित ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम भास्करभट्ट और माता का नाम यशोमती था। उनके बड़े भाई का नाम गोपालभट्ट था। उन का घराना माध्व-मतावलम्बी कृष्णोपासक वैष्णव था।

उनकी प्रारम्भिक शिक्षा दक्षिण में हुई थी। वे इतने प्रतिभाशाली थे कि उन्होंने अल्पायु में ही यथेष्ट ज्ञानोपाजन कर लिया था[illegible] बाल्यावस्था से ही कृष्ण-भक्त और ब्रज-वृन्दावन के अ[illegible] थे। कहते हैं, उन्होंने १२ वर्ष की अवस्था में ही अपने प्रथम ग्रन्थ "ब्रजप्रदीपिका" की रचना दक्षिण में की थी। इसके उपरान्त वे ब्रज में निवास करने के लिये घर से चल दिये।

वे ढाई वर्ष तक अनेक तीर्थों की यात्रा करते हुए सं० १६०२ में ब्रज में पहुँचे। उन दिनों वृन्दावन, राधाकुण्ड आदि ब्रज के पुण्यस्थलों में अनेक गौड़ीय - भक्तों का निवास था। वे चैतन्य महाप्रभु की प्रेरणा से भक्ति-ग्रन्थों की रचना, कृष्ण-भक्ति और हरि-कीर्तन का प्रचार तथा ब्रज के लुप्त-तीर्थों के उद्धार का काम कर रहे थे। ये सब कार्य कालान्तर में नारायण-भट्ट द्वारा पूर्णता को प्राप्त हुए। चैतन्यमहाप्रभु के प्रिय - पार्षद श्रीगदाधरपण्डितगोस्वामी के शिष्य कृष्णदास - ब्रह्मचारी थे। वे सनातन गोस्वामी के आदेशानुसार राधाकुण्ड में श्री मदन-मोहन जी की सेवा करते थे। नारायण-भट्ट ने उक्त ब्रह्मचारी जी से दीक्षा ली और राधाकुण्ड के गौड़ीय भक्तों के साथ निवास करते थे। उनका ब्रजागमन इस पुण्यभूमि के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। उन्होंने जीवन पर्यंत विविध भाँति से ब्रज की गौरव-वृद्धि का यत्न किया और उसमें सफलता प्राप्त की।

उनके महत्व पूर्ण कार्यों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(१) श्रीमद्भागवत और वाराहपुराणादि में श्रीकृष्ण-लीला के जिन स्थलों का उल्लेख मिलता है, उन्हें काल के प्रवाह से लोग भूल गये थे। उन्होंने अनुसन्धान पूर्वक उन्हें पुनः प्रकट

किया। उनके इस महत्व पूर्ण कार्य का उल्लेख नाभाजी ने "भक्तमाल" में इस प्रकार किया है :—

> गोप्य स्थल मथुरा-मण्डल, जिते वाराह बखाने।
> ते किये नारायण प्रगट, प्रसिद्ध पृथ्वी में जाने॥

(२) ब्रज के वन, उपवन, तीर्थ और देवी-देवताओं की महिमा तथा भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति के प्रचारार्थ उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की।

(३) ब्रज के आध्यात्मिक और भौतिक रूप के प्रदर्शन के लिए तथा वहाँ के वन-वैभव का आनन्द प्रदान करने के लिए उन्होंने "ब्रज-यात्रा और "वन-यात्रा" का प्रचार किया। इससे प्रति वर्ष देश में सहस्रों नर-नारियों को ब्रज के समग्र रूप के दर्शन करने का सुयोग प्राप्त हुआ।

(४) भावुक भक्तों को राधा-कृष्ण की सरस लीलाओं से आनन्दित करने के लिए उन्होंने "लीलानुकरण" के रूप में "रास" का प्रचार किया और ब्रज के अनेक स्थानों में रास-मण्डलों का निर्माण कराया। इससे ब्रज के गायन, वादन, नृत्य और नाट्य विषयक प्राचीन कलाओं का पुनरुद्धार हुआ। भक्त-माल के टीकाकार प्रियादास जी ने इस सम्बन्ध में लिखा है:—

> भट्ट श्री नारायण जू, भये ब्रज-परायन,
> जाँय जहाँ गाये, तहाँ ब्रज करि ध्याये हैं।
> ठौर-ठौर रास के विलास लै प्रकास किये,
> जिये यों रसिक जन, कोटि सुख पाये हैं॥

राधाकुण्ड नामक स्थान में १२ वर्ष तक निवास करने के अनन्तर वे ब्रज के ऊँचेगाँव चले गये। वहाँ उन्होंने गृहस्थ जीवन आरम्भ किया। उनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम दामोदर - भट्ट

था, जिनका जन्म सं० १६१५ में हुआ था। नारायणभट्ट ने ऊँचेगाँव में बलदेव जी और बरसाने में लाड़िलीलालजी प्रगट कर सेवा प्रचलित की थी, जो अभी तक उनके उत्तराधिकारियों और शिष्यों के अधिकार में है। उनके शिष्यों में नारायणदास श्रोत्रिय मुख्य थे। उनके वंशज बरसाने के गोस्वामी हैं, जिनको लाड़िली जी के मन्दिर की सेवा का अधिकार प्राप्त है।

उन्होंने पूर्णायु प्राप्त की थी। उनका देहावसान १७वीं शताब्दी के अन्त में भाद्रपद शुक्ला १२ (बामन द्वादशी) को ऊँचेगाँव में हुआ था, जहाँ उनकी समाधि बनी हुई है। इस समाधि पर प्रति वर्ष चैत्र कृष्णा ५ को बरसाने के गोस्वामियों द्वारा "समाज" का आयोजन होता है। उस अवसर पर गायक गण भट्ट जी को अपनी श्रद्धाञ्जली अर्पित करते हैं।

श्री नारायणभट्ट जी के द्वारा रचित ग्रन्थ—१. भक्तिरसतरङ्गिणी, २. ब्रजभक्तिविलास, ३. ब्रजोत्सवचन्द्रिका ४. ब्रजोत्सवाह्लादिनी, ५. ब्रजप्रदीपिका, ६. ब्रजमहोदधि, ७. वृहत् ब्रजगुणोत्सव, ८. ब्रजप्रकाश, ९. भक्तिविवेक, १०. साधनदीपिका, ११. भक्तभूपणसंदर्भ, १२. रसिकाह्लादिनी (भागवत की टीका), १३. धर्मप्रवर्तिनी , १४. लाड़िलेयाष्टक, १५. प्रेमांकुरनाटक, १६. सिद्धान्तचूड़ामणि , १७. नीतिश्लोकानि , १८. ब्रजरत्नदीपिका, १९. भक्तिरहस्य, २० धर्मप्रबोधिनी, २१. राधाविनोद काव्यस्य टीका आदि।

"श्री नारायणभट्ट – चरितामृत" से ज्ञात होता है कि उन्होंने ६० ग्रन्थों की रचना की थी। १ ग्रन्थ दक्षिण में, ७ ग्रन्थ राधाकुण्ड में और ५२ ग्रन्थ ऊँचेगाँव में रचे गये थे। दक्षिण में रचा हुआ ग्रन्थ "ब्रजप्रदीपिका" है। राधाकुण्ड में रचे हुए

ग्रन्थ ब्रज-भक्ति-विलास, ब्रज-दीपिका, ब्रजोत्सव-चन्द्रिका, ब्रज-महोदधि, ब्रजोत्सवाह्लादिनी, वृहत् ब्रज-गुणोत्सव तथा ब्रज-प्रकाश हैं। ऊँचेगाँव में रचे हुए ग्रन्थों में से भक्तभूपण-सन्दर्भ, भक्तिविवेक, भक्तिरसतरङ्गिणी, साधनदीपिका, भागवत की रसिकाह्लादिनी टीका और प्रेमांकुर नाटक प्रमुख हैं।

ये समस्त ग्रन्थ संस्कृत भाषा में हैं। इनमें ब्रज की महिमा और उनके पुण्य स्थानों का विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है, तथा वैष्णव भक्ति की शास्त्रीय विवेचना और सरस व्याख्या की गई है। इसमें कई ग्रन्थ वृहत् आकार के हैं। उनके बड़े ग्रन्थों में "ब्रजभक्तिविलास" "वृहत् ब्रगुणोत्सव" और भागवत की रसिकाह्लादिनी टीका विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

उनके प्रमुख ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

१. ब्रजभक्तिविलास—इस वृहत् ग्रन्थ में १३ अध्याय हैं, जिनमें ब्रज के समस्त वन, उपवन, तीर्थ-स्थल, लीला-स्थल और देवी-देवताओं का विस्तार पूर्वक वर्णन है। इसकी रचना सं० १६०६ में राधाकुण्ड के तट पर हुई थी। इसे हिन्दी टीका सहित बाबा कृष्णदास ने प्रकाशित किया।

२. ब्रजोत्सवचन्द्रिका—इसमें ब्रज के उत्सवों का विस्तृत वर्णन है। इसकी रचना भी राधाकुण्ड के तट पर सं० १६१२ में हुई थी। इसकी प्राचीन हस्त लिखित प्रति बरसाना में है। बाबा कृष्णदास ने मूलमात्र इसका प्रकाशन किया है।

३. ब्रजोत्सवाह्लादिनी—इस वृहत् ग्रन्थ का उल्लेख ब्रज-भक्ति विलास में हुआ है। इसमें तिथियों बार ब्रज के उत्सवों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन है। इसकी भी हस्त लिखित प्रति बरसाना में सुरक्षित है।

४. भक्तभूषण सन्दर्भ--इसमें जीव तत्व, जगत् तत्व और ईश्वर तत्व का निर्णय किया गया है। उक्त बाबा के द्वारा इस का भी प्रकाशन हुआ है।

५. वृहत्-व्रज-गुणोत्सव--व्रज-भक्ति-विलास में इस ग्रन्थ का संकेत मिलता है। उससे ज्ञात होता है कि यह २६ हजार श्लोकों के वृहत् आकार का ग्रन्थ है, जिसमें वृहत् व्रज-यात्रा के समस्त स्थानों का विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है। यह ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका।

६. भक्ति-विवेक--इसमें नाम श्रेष्ठ निर्णय, धाम श्रेष्ठ निर्णय और भक्त श्रेष्ठ निर्णय नामक तीन प्रकरण हैं, जिनमें क्रमशः श्रीकृष्ण की नाम-महिमा, व्रज का श्रेष्ठत्व और व्रज-बासियों की महिमा वर्णित है। उक्त बाबा ने प्रकाशित किया है।

७. भक्तिरसतरङ्गिणी—इसमें 'उल्लास' नामक ५ अध्याय हैं। द्वादश रसों में मुख्य मधुर रस का इसमें साङ्गोपाङ्ग वर्णन हुआ है। इसकी रचना में भी रूप गोस्वामी कृत 'भक्ति-रसामृतसिंधु' और 'उज्वलनीलमणि' का आधार लिया गया है। इसे हिन्दी टीका सहित उक्त बाबा कृष्णदास ने प्रकाशित किया है।

८. साधन-दीपिका--इसमें साधनरूपा भक्ति का विवेचन और वैष्णवों के विधि-प्रतिषेध तथा व्रतादि का निर्णय है।

९. प्रेमांकुरनाटक-- "श्रीनारायणभट्टचरितामृत" में इस नाटक का नामोल्लेख और संक्षिप्त परिचय मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि इसमें श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का

नाटक रूप में कथन किया गया है। इसकी कोई प्रति अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है।

१०. रसिकाह्लादिनी–यह श्रीमद्भागवत की टीका है। इसकी सम्पूर्ण प्रति अभी तक प्राप्त नहीं हुई है, किन्तु दशमस्कन्ध के आरम्भ से रास पंचाध्यायी तक की प्रति मिल चुकी है।

उक्त ग्रन्थों से भट्ट जी का प्रकांड पाण्डित्य और व्रज के प्रति उनका उत्कट अनुराग प्रकट होता है। ये ग्रन्थ उस समय लिखे गये थे, जब व्रज के सम्बन्ध में लोगों को बहुत कम जानकार थी। भट्ट जी ने इन्हें लिखने में कितना परिश्रम किया होगा, इसके विचार मात्र से ही उनके प्रति आदर से नत-मस्तक होना पड़ता है। इतना समय हो जाने पर भी व्रज के परिचयात्मक ग्रन्थों में अब भी इनका सर्वश्रेष्ठ स्थान है। उनकी समस्त रचनाएँ संस्कृत में हैं। कहते हैं, उन्होंने व्रजभाषा में भी कुछ रचनाएँ की थीं, किन्तु उनकी कोई भी प्रामाणिक कृति अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है।

उन ग्रन्थों का प्रकाशन उक्त बाबा कृष्णदास ने महती चेष्टा पूर्वक कर रहे हैं। जैसा कि व्रज के लुप्ततीर्थों का उद्धारादि कार्य्य भट्ट जी के द्वारा हुआ है तैसा ही उक्त बाबा के द्वारा नारायणभट्टजी का चरित्र उद्टंकन किया गया है। बहुत से लोग भट्टजी को जानते ही नहीं थे परन्तु बाबा ने कई ग्रन्थों का उद्धार कर उनको जाग्रत कर दिया। प्रस्तुत रसिकाह्लादिनी टीका बड़ी सरस व भावपूर्ण रचना है। कहीं कहीं अन्य गोस्वामियों की टीका के साथ विलक्षणता देखने में आती है। इस समय इस प्रकाशन होना आवश्यक था, नहीं तो यह लुप्त हो जाती। इसका की कापी (हस्तलिखित) उक्त बाबा को गोस्वामी प्रियालालजी

(बरसाने वाले) के द्वारा नीमराना (जहां भट्टजी के वंशज़ रहते हैं) से प्राप्त हुई थी। आशा है कि रासप्रेमी रसिक विद्वान्‌-जन इस का सरस आस्वादन करें व करावें।

अगर यह हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित होती तब रास प्रेमी जनता का बड़ा उपकार होता। अस्तु कालान्तर में यह कार्य्य हो भी सकता है। नारदावतार भट्टजी जब कि संकेत में अपने प्रकटित राधारमण विग्रह के समक्ष वीणा लेकर रास-पंचाध्यायी गाते थे तब उन को भागवत की टीका करने को राधारमण जी ने आदेश किया। उन राधारमण की प्रेरणा से वे इस में प्रवृत्त हुए। अस्तु—

विनीत

प्रभुदयाल मीतल

साहित्यसंस्थान (मथुरा)
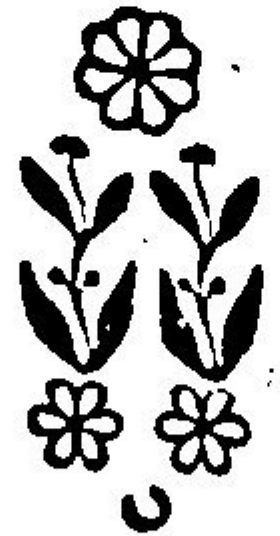
❀ श्रीरासपञ्चाध्यायी ❀

✻ एकोनत्रिंशोऽध्यायः ✻

श्रीशुक उवाच

भगवानापि ता रात्रीः शारदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥१॥

श्रीरसिकाल्हादिनी टीका

वन्दे गुरुं कृपासिन्धुं सच्चिदानन्दविग्रहम्।
प्रापुर्भागवतं ज्ञानं वहवो यदनुग्रहात् ॥१॥
सर्ववेदान्समुन्मथ्य क्षीरवार्द्धेरिवामृतम्।
तच्छ्रीभागवतं ज्ञानं प्रोक्तं भगवता स्वयम् ॥२॥
तत्सारभूत-निखिला पंचाध्यायी निगद्यता ॥

तत्र तावत् दशमस्कन्धार्थो निरोधो निर्णीतः,अतोऽत्र पञ्चाध्यायां श्रीकृष्णप्रियवर्गयोः परस्परनिरोधोऽनुवर्ण्यते, स तु इतररसाभिभवपूर्वकं विलासात्मकं प्रेमनि देहेंद्रियमनसा स्थितिः निरोध इति, प्रेमलक्षणं रसार्णवे-"स प्रेमा भदेरहितं यूनोर्यद् भाववंधनमिति"।

अत्र प्रेम्नि श्रीकृष्णप्रियबर्गयोः क्षीरनीरवदाश्लेषः सामरस्यान्न्यूनाधिकभावेन विवेक्तुं न शक्यते, तदुक्तं—

स्वांतयोः सर्वभावेन सेव्यसेवकयोस्तथा।
क्षीरनीरवदाश्लेषो विषयाधारता तथा ॥
अङ्गनामपि तादृक्त्वं स प्रेमा विनिगद्यते।
द्वाविंशतिविधः श्लेषो विज्ञेयोऽत्र सुबुद्धिभिः ॥

:-:०:❀: श्रीश्रीगौरहरिर्जयति :❀:०:-:

❀ रसचन्द्रिका ❀

कविवरहरदेवजीविरचित

(ब्रजभाषा में)

सम्वत् २०२२

मूल्यम्— 3 10

प्रकाशक—

कृष्णदासबाबा

कुसुमसरोवर,

राधाकुंड

(मथुरा)

भूमिका

कृष्ण-भक्ति की चैतन्य-सम्प्रदाय-धारा में शताधिक कवि हुए जिनकी एक वृहत् सूची मैंने "संतवाणी" पटना में प्रकाशित कराई थी। पश्चात् श्रीप्रभुदयाल जी मीतल ने कवियों के संक्षिप्त जीवन-वृत्त और उनकी रचनाओं के परिचय को प्रस्तुत कर हिन्दी जगत् का भारी उपकार किया। वस्तुतः बाबा कृष्णदास जी महाराज महान्त ग्वालियरमंदिर, कुसुमसरोवर ने ही व्रज भाषा की इस विलुप्त धारा का प्राकट्य किया और विद्वानों को अनुसंधान के लिए दौड़ा दिया। प्रस्तुत ग्रंथ उनके द्वारा प्रकाशित व्रजभाषा ग्रन्थों की ही एक कड़ी है। बहुत दिनों से इस ग्रंथ के प्रकाशन की वे चेष्टा में थे। वृन्दावन निवासी श्रीमान् नंदकिशोरमुकुट वाले से उन्हें वह कापी मिलि है। ग्रंथ का संक्षिप्त परिचय देना अपना कर्तव्य समझते हैं॥

हरिदेवजी जाति के अग्रवाल-वैश्य थे। संवत् १८६२ में आप का जन्म और संवत् १९१९ की ज्येष्ठ शुक्ला ११ को आपका शरीर पात हुआ था। मिश्रबन्धु विनोद के अनुसार उनका जन्म काल सं०१८३० और कविता काल सं०१८५७ है किन्तु यह प्रामाणिक नहीं। इनके पिता का नाम रतिराम जी था और वे वृन्दावन में परचूनी की दूकान करते थे। पिता अच्छे काव्य-प्रेमी थे अतः उन्होंने अपने पुत्र हरिदेव के लिए प्रारम्भ से ही उपयुक्त वातावरण बनाया और उन्हें व्यवस्थित काव्य-शिक्षा प्रदान कराई। इनमें काव्यरचना की प्रतिभा थी जिसे इन्होंने अनुशीलन और कवि-समागम से और भी विवर्धित कर लिया। रीतिकालीन कविता में जिस बहुज्ञता, शास्त्र-ज्ञान और शैली के दर्शन होते हैं वह हरिदेव जी के काव्य में भी विद्यमान है। अंतिम चरण में रीति साहित्य वृन्दावन की रसभूमि को अप्रभावित न रख सका। रीतिकालीन ग्वाल-जैसे कवि का सम्पर्क उन्हें मिला ही था। वे भी कुशाग्र बुद्धि के थे॥

इनके द्वारा रचित ५ ग्रंथों का पता चलता है—(१) रसचद्रिका (२) छन्दपयोनिधि (३) काव्यकुतूहल (४) रामश्वमेध और (५) वैद्यसुधाकर। मिश्रबंधुओं ने "छन्दपयोनिधि" और "नायिकालक्षण" का उल्लेख किया है। वस्तुतः रसचन्द्रिका ही नायिका भेद का ग्रंथ ज्ञात होता है। कहा नहीं जा सकता कि रसचन्द्रिका से पृथक् कोई "नायिकालक्षण" ग्रंथ भी हरिदेव जी ने रचा था॥

रसचद्रिका के प्रत्येक प्रसंग की समाप्ति पर हरिदेव जी ने स्वयं को "श्रीराधिका-रमण पदारविंद मकरंद पानानंदित अलिंद श्रीरतिराम आत्मज" कहा है। आज भी इनकी वंशपरम्परा श्रीराधिकारमण चरणाश्रित है। इस ग्रंथ के अन्त में भिन्न हस्त लेख में जो छन्द संकलित है वह इस बात का प्रमाण है कि ये गौडश्वरसम्प्रदाय में दीक्षित थे॥

काव्यकुतूहल, रामाश्वमेध और वैद्यसुधानिधि में से रामाश्वमेध श्रीनंदकिशोर मुकुटवालों के पास सुरक्षित है किन्तु उसके लेखक के विषय में प्रामाणिक रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। वैद्यसुधानिधि की हस्तप्रति बाबाकाशीदास जी, वृन्दावन रासमंडल के पास कही जाती है। नीचे इनके दो ग्रन्थों का हम परिचय प्रस्तुत करते हैं-(१) छन्दपयोनिधि-पिंगल के आधार पर ब्रजभाषा में रचित यह एक सुंदर रचना है। इस ग्रंथ का सम्वत १९६३ में खेमराज श्रीकृष्णदास के द्वारा "श्रीवैंकटेश्वर-स्टीम" प्रेस में प्रकाशित हुआ था। वृन्दावन निवासी महन्त कन्हैयालाल का अनुवाद भी इसके साथ है। इस रचना में आठ "तरंग" हैं, जिनमें छन्दशास्त्र के विभिन्न अंगों का बिशद वर्णन हुआ है। प्रथम तरंग में छंद लक्षण, द्वितीय में लघु-गुरु लक्षण, तृतीय में गण-निरूपण, चतुर्थ और पंचम में प्रस्तारादि अष्टांग वर्णन, षष्ठ में गणों और वर्णों के फलाफल तथा सप्तम और अष्टम तरंगों में क्रमशः मात्रा छंदों एवं वर्ण छंदों का सविस्तार विवेचन है। छन्दशास्त्र का ज्ञान पाने के लिए यह उपादेय

ग्रंथ है। कुल छन्द ५४४ हैं॥

रसचन्द्रिका—यह नायिका भेद और रसभेद का सुन्दर ग्रंथ है। कवित्त दोहा और सवैया छंद का कवि ने प्रयोग किया है। राधा और कृष्ण को लक्षित कर नायिका तथा नायक के भेद-विभेदों का सानुप्रासिक ललित शैली में वर्णन किया गया है। "भक्तिरसामृतसिंधु" और "उज्ज्वलनीलमणि" की परम्परा में न रख कर हम इसे लौकिक काव्यशास्त्रों की शैली में ही रखेंगे। फिर भी कवि शृंगारी कवि नहीं है! शृंगार के उज्ज्वल रूप का ही वह वर्णन कर मनोविनोद करना चाहता है। राधा-ठकुरायन के पायन को विलोक कर ही वह रचना-प्रवृत्त हुआ है। वृन्दावन की (उपास्यस्थलो) प्रारम्भ में अभ्यर्थना है फिर कालिंदी नदी की। रसों के भेदों का वर्णन देकर आलम्बन और उद्दीपन तथा अनुभावों को वर्णित किया गया है नायिकालक्षण, वसुगुणों का लक्षण, वसुगुणों का निरूपण, रूपलक्षण, गुनलक्षण, शीललक्षण, प्रेमलक्षण, कुललक्षण, वैभवलक्षण, भूषणलक्षण दिखा कर अनुरूप उदाहरण प्रस्तुत किए है। राधिका के रूप का उदाहरण द्रष्टव्य है-"कोमलता अरविंदन मैं मकरंद मैं है मुख वास बसेरो" ...... ।
इत्यादि सवैया द्वारा (पृ० ४ स० १९) में सुन्दर वर्णन है।

अष्टांगवती नायिका, कर्मभेद से नायिका-स्वकीया, अज्ञात-यौवना, ज्ञात-यौवना, नवोढ़ा, विश्रब्धा, मुग्धा, मध्या तथा उसके भेद प्रौढ़जीवना, वक्रवचना, प्रौढ़स्मरा, सुरत-विचित्रा, मध्या-सुरतान्ता, मध्याधीरा, मध्या-अधीरा, मध्याधीराधीरा, प्रौढ़ा लक्षण उसके भेद—प्रौढ़ा उन्नतकामा, लज्जाजितप्रौढ़ा, तथा सुरतान्त पश्चात प्रौढ़ा के धीरादि भेद बताने के बाद कवि ने परकीया के लक्षण बता कर सुदंर उदाहरण दिए हैं। परकीया के विषय में वे लिखते हैं-

रसिक जनन की परकीया, जग में जीवन जान।
जाके पद रज कन कहूँ, पावत तिया न आन॥ पृ० १७ दो० ५

(घ

परकीया भेदों में ऊढा और अनूढ़ा और फिर ऊढ़ा के षट् भेदों में गुप्ता-भूत सुरतगोपना, भविष्यसुरतगोपना वर्त्तमानसुरतगोपना, विदग्धा-बचनविदग्धा तथा क्रियाविदग्धा, लक्षिता-स्नेहलक्षिता और सुरतलक्षिता, मुदिता-अनुशयना-भूत-भविष्य-वर्तमान तीन भेद बताकर रसचन्द्रिका में नायिका भेद के पश्चात् कुलटा का बर्णन छोड़ दिया है। उससे विरसता आने की सम्भावना थी। सुरति-दुखता, यौवनगर्विता, रूपगर्विता, गुणगर्विता, शीलगर्विता, प्रेमगर्विता, कुलगर्विता, वैभवगर्विता, भूषनगर्विता वर्णन के वाद मानिनी का वर्णन है। कालभेद से वसुनायिकाओं के भेद वताए गए हैं। इनमें स्वाधीनपतिका, मुग्धास्वाधीना, मध्या स्वाधीना, प्रौढ़ास्वाधीना, परकीयास्वाधीना, वासकसज्जा और उस के भेद, उत्का और उस के भेद, खंडिता और उसके भेद, कलहांतरिता और उसके भेद, अभिसारिका और उसके भेद, विप्रलब्धा और उसके भेद, प्रोषितपतिका तथा उसके भेद पश्चात् उत्तमा, मध्यमा, कनिष्ठा, जाति भेद से नायिकाओं के भेद-पद्मिनी, चित्रणी आदि, नायक के लक्षण उसके प्रकार अनुराग, उद्दीपन, सखी उनके कृत्य, सखा और उसके भेद, दूती उसके भेद और कृत्य, षट्ऋतु वर्णन, अनुभाव, और लीलाहावादि उसके भेद, सात्विकभाव, संचारीभाव और अन्त में रसों का वर्णन हैं। भयानक रस तक पोथी लिखी हुई है, पश्चात् अपूर्ण है। ऐसा लगता है कि यह श्रीहरिदेवजी की साहित्यसाधना का चरम परणति है। हस्त लेख बहुत सुन्दर है। बीच में लेख परिवर्तन भी है। अन्ततः यह रचना साहित्यिक मूल्य की है। आशा है विद्वानों छापे की भूलों को ध्यान में न लाकर इसके काव्यरस का आस्वादन करेंगे। विशिष्ट मूल्यांकन कभी अन्यत्र प्रस्तुत करेंगे।

नरेश बंसल—
हिन्दी विभागाध्यक्ष, श्रीगणेशडिग्री कालेज
कासगंज (उ० प्र०)

❀ श्रीश्रीराधिकारमणो जयति ❀

❀ अथ रसचन्द्रिका लिख्यते– ❀

कवित्त—अमल कमल से है विमल अनूप पद,
सजल जलज सी नखाल दरसत है।
जन मन मलिंद है मोह मद माते तहाँ,
आनंद ऊछेह दिन रैंन सरसति है॥
कवि हरिदेव उघरैं ही के कपाट कोटि,
का के द्रिगता के छवि छाँह परसत हैं।
सुंदरि सिवाजू कैं मंगल करन हार,
मोद भरे गोद में गणेस दरसत हैं॥१॥

कवित्त—मृदुल अनूप अरुनाई भरे राजैं चारु,
अमल अमोल नखपांति दरसाती हैं।
किसलै मजीठ अरु इंदुबधु तारागन
जलज जलूसन की ओप ढर जाती हैं॥
कहैं हरिदेव अरिवृंदन के वृंद कहा,
कोटि कोटि ईंदुन की आद गरकाती हैं।
राधा ठकुरायन के पायन विलोक मेरी,
उकति अनूठी ऊठी झूठी परिजाती हैं॥२॥

कविता—फूले फूले फूलन फवी हैं फुलवारैं ओक,
तारैं केल वेलन पें खेल अलिवृंदको!
अगर अगूरैं हैं अनारैं आम आभावट,
खार कपि जूरैं मदचूरैं मृदुकंद को॥
नीवू औ नरंगी हरिदेव नवरंगी वह,
कहाँ लों गनाऊ नाम फूल फल वृंद को।
वृंदारक वंदन सो तीन ताप कंदन सो,
नंदन तैं नीको वन राजै नद नंद को॥३॥

❀ श्री श्री गौरांगविधु जंयति ❀

श्रीरामहरिग्रन्थावली

बुधिविलास १ सतहंसी २ बोधबावनी ३ रसपचीसी ४
लघुनामावली ५ लघुशब्दावली ६
प्रेमपत्री ७ ध्यानरहसि ८

श्री श्री रामहरिजी कृता

सं० २००८ महाप्रभुजयन्ती
फाल्गुन पूर्णिमा।
प्रथमावृत्तिः १०००
न्यौछावर ॥)

प्रकाशक—
बाबा कृष्णदास,
कुसुमसरोवर।

—[समर्पण पत्रम्]—

श्री श्री राधारमण चरणदास देवस्यानुचर प्रवरस्य,
सकल देश प्रसिद्ध कीर्त्तिराशेः, प्रेम मात्र सर्व्वस्व
कृतस्य, निरन्तर सात्विक भावावल्या
विभूषितस्य, दी न ता सा ग र स्य,
मधुर स्वरालापैः सर्वदा गौर
कीर्त्तनकर्त्तुः, श्रीरामदासेति
नाम्ना प्रसिद्धस्य, मदीय
आराध्यदेवस्य, श्रीगुरु
देवस्य, बाबाजीमहा-
राजस्य प्रीत्यर्थे
समर्पितेदं ग्रन्थरत्नं ।

★

दो शब्द

भज–निताई गौर राधेश्याम ।
जप–हरे कृष्ण हरे राम ॥

आज हम गुरु गौरांग की पुनीत कृपा से इस रामहरी ग्रन्थावली को प्रकाशित कर रसिक प्रेमीजनों के समक्ष रखने में समर्थ हुए । इसमें क्रम से बुधिविलास, सतहंसी, बोधबावनी, रसपचीसी, लघुनामावली, लघुशब्दावली, प्रेमपत्री, बारहखड़ी-ककौ संचित किये गये हैं । बुधिविलास में भक्ति प्रेम सम्बन्धी यथेष्ट उपदेश और नीति हैं । जिस प्रकार कबीर प्रभृति महात्माओं की साखी प्रसिद्ध हैं ठीक उसी प्रकार यह रामहरी जी की साखी भी बहुत ऊँची वस्तु करके मानी जाती है । इसमें विशेषता यह है कि विशुद्ध प्रेम, विरह का इनमें यथेष्ट सरस वर्णन है । इसमें २५५ दोहे मौजूद हैं । इन दोहें को यदि कोई कंठस्थ कर लेवे तो बस उसका बेड़ा पार है । वह भक्ति, प्रेम, विरह का सूक्ष्म विचार संक्षेप से जान सकता है । दूसरी सत-हंसी १०२ दोहे में रची गई है । इसमें यमक का खूब कूट विचार है । इसलिये यह कठिन हो गई है । यमक काव्य रचना की परिपाटी इससे सब कोई सीख सकता है । यद्यपि यमक परि-पाटी के कारण अर्थ समझने में कठिन हो गया है तो भी यमक घटा की घन छटा देखकर हम आश्चर्य में हो जाते हैं । बोध-बावनी में ५४ दोहे हैं । इसमें कुछ उपदेश मौजूद हैं । रसपचीसी में नायक नायिका के अंग सम्बन्धी कुछ गुणों का विचार है । लघुनामावली में १०२ दोहे हैं । जिसमें अमरकोस, धनञ्जय-कोस, नन्ददास की नामावली प्रभृति देखकर ब्रजभाषा में अति

सुन्दर निराली कोष रचना की गई है। लघुशब्दावली में भी शब्दों के अर्थ की सुन्दर रचना हैं। अमरकोषादिक में विरक्त यदि कोई इन दोनों कोष ग्रन्थ को सीख लें तो वह भाषा जगत में कोषज्ञ हो सकता है। लघुशब्दावली में १०० दोहे हैं। प्रेम-पत्री भी एक पत्रात्मक सुन्दर वस्तु है। विरह विधुरा श्री ब्रज-गोपियाँ श्री कृष्ण के लिये मथुरा नगरी में पत्र दे रहीं हैं। बारहखड़ी ककौ भी एक आस्वादनीय वस्तु है। प्रस्तुत वाणी-कार श्री रामहरी के विषय में हमें कोई ज्ञात नहीं है। इनके ग्रन्थों में केवल इतना उपलब्ध है कि वे श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी घरान (परिकर) में श्री राधारमणजी के सेवक हुए। वे अपने प्रत्येक ग्रन्थ में निज उपास्य देव श्री शचीनन्दन गौरहरि के मंगलाचरण रूप वन्दना देते हैं। भक्तमाल टीकाकार प्रियादास जी के पौत्र रसजानि वैष्णवदास जी के समसामयिक तथा उन्हीं के कृपा बल से बली होकर एतादृश काव्य रचना में दे समर्थ हुए हैं। परिशेष में "श्रीमान् नन्दकिशोर मुकुट वाले लोई बाजार बृन्दावन और बाबा श्रीवंशीदास जी महाराज के हम आभारी हैं कि आप दोनों ने इस ग्रन्थ समूह को प्रकाशित करने के लिये हमें प्रदान किया। इनमें से बारहखड़ी ककौ वृन्दाबन निवासी गोस्वामी रासविहारी शास्त्री जी से प्राप्त हुई थी।

इतिशं—

विनीत—

कृष्णदास प्रकाशक।

❀ श्री श्री गौरांगविधुर्जयति ❀

ब्रजभाषा में—

श्री राधारमण रस सागर

श्री श्री कविवर मनोहरदासजी कृत

★

अर्थसहायक—

गौरनिष्ठ श्रीमान् राजा रघुनंदनप्रसादजी

मूंगेर (बिहार)

★

प्रकाशक—

बाबा कृष्णदास

कुसुमसरोवर, (गोवर्द्धन) मथुरा।

★

अक्षयतृतीया

सम्वत् २००८]

नौछावर—

[मूल्य ।)

॥ भूमिका ॥

प्रेम पुरुषोत्तम, प्रेमावतार, भगवान, श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ने इस पुनीत धराधाम में अवतीर्ण होकर जगत को जो अपना विशुद्ध प्रेम-रस का सरस आस्वादन कराया है उसका जीव मात्र ही अवश्य महान आभारी रहेगा। श्री ब्रज-राजनन्दन हरि का गौरांग रूप से नवद्वीप में अवतीर्ण होने का मूल कारण था अपनी परम प्रेयसी राधिका के भाव प्रेम का आस्वादन तथा साथ ही साथ अनर्पित निज-भक्ति योग का जीव जगत् के लिये दान। श्री प्रभु ने धरा में प्रकट हो कर जगह जगह पर भक्ति विद्यालय की स्थापना कर अपनी प्रेम महाविद्या का जीव छात्रों को पाठ पढ़ाकर, तथा रूप, सनातन प्रभृति पार्षद गणों को अवतारित करा कर उन विद्यालयों में प्रधान २ अध्यापक रूप से नियुक्त किया, जिससे कि प्रेम महाविद्या का दान धारावाहिक रूप से चल सके। उन विद्यालयों में नाम संकीर्त्तन पाठ ही प्रधान रूप से रखा गया। वृन्दावन नवद्वीप और नीलाचल क्षेत्र ही प्रधान विद्यापीठ रूप से माना गया है। रूप, सनातन प्रभृति प्रभु पार्षदों ने वृंदावन धाम में आकर उसका पुनरुद्धार किया तथा साथ ही साथ असंख्य भक्ति ग्रन्थों की रचना कर उन भक्ति विद्यालयों में उन्हें पाठ ग्रन्थ निर्धारित किया। यह सब ग्रंथ अधिकांश रूप से संस्कृत भाषा तथा बंगभाषा और ब्रजभाषादि में रचे गये हैं।

गौड़ेश्वर सम्प्रदाय में जिस प्रकार संस्कृत तथा बंग भाषा में रचित ग्रंथों की कोई इयत्ता नहीं है ठीक उसी प्रकार ब्रज भाषा में रचित ग्रंथों की भी कोई इयत्ता नहीं। बड़े विमर्ष की बात यह है कि ब्रज भाषा के वे सब ग्रन्थ अधिक संख्या से न जाने कहाँ

किसके हाथ में पड़ गये। तो भी अत्यन्त चेष्टा के साथ कुछ ग्रन्थों को खोज कर जनता के सामने रख चुका हूँ। अब गुरु वैष्णव कृपा से कविवर श्री मनोहर दास जी के द्वारा विरचित इस "राधा-रमण रस सागर" नामक ग्रन्थ को रसिक समाज के आगे रखने में समर्थ हुआ हूँ। पूज्य बंधुवर गोस्वामी श्री अतुलकृष्ण जी (बृंदावन) के द्वारा उन्हीं के पुस्तकालय से ही यह ग्रंथ मुझे प्राप्त हुआ, साथ ही साथ मिलान करने के लिये श्री गोस्वामी अद्वैत चरण जी (बच्चा जी) के पुस्तकालय से (प्रातः स्मरणीय-श्री राधा चरण गोस्वामी जी के द्वारा संचित) एक प्राचीन हस्त-लिखित ग्रंथ मिला। उन दोनों महानुभावों के प्रति मैं तथा भक्त समाज आभारी हैं॥

प्रस्तुतं ग्रंथरत्न के निर्माण कर्त्ता कविवर श्री मनोहरदास जी महोदय हैं। आप श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी जी के परिकर में श्री राधारमण जी के सेवक हुए। श्री रामचरण चट्टराज आप के गुरु थे। ग्रंथकार का विशेष परिचय देना पुनरुक्ति मात्र है। यह महाशय भक्तमाल के प्रसिद्ध टीकाकार श्री प्रियादास जी के गुरुदेव थे। इन्हीं के कृपा बल से श्री प्रियादास महोदय भक्तमाल की टीका लिखने में समर्थ हुए। भक्तमाल टीका के प्रारम्भ में स्वयं प्रियादास जी कहते हैं कि—

महा प्रभु कृष्णचैतन्य मनोहरण जू के चरण को ध्यान मेरे नाम मुख गाइये। ताही समै नाभा जी ने आज्ञा दई लई धारि, टीका विस्तारि भक्तमाल की सुनाइये॥ इत्यादि।

निःसंदेह कविवर मनोहर जी उस समय बृंदावन में परम रसिक शिरोमणि माने जाते थे। बड़े बड़े महानुभाव आकर उन के संसर्ग से रसिक बन जाते थे। इस विषय में टीका के परिशिष्ट में प्रियादास जी कहते हैं कि:—

रसिकाई कविताई जाहि दीनी तिन पाई,
भई सरसाई हिये नव नव चाय हैं।
उर रंग भवन में राधिकारमण बसैं,
लसैं ज्यों मुकुर मध्य प्रतिबिंब भाय हैं॥
रसिक समाज में बिराज रसराज कहैं,
चहैं मुख सब फूलैं सुख समुदाय हैं।
जन मन हरि लाल मनोहर नाम पायो,
उन हूँ को मन हरि लीनौ ताते राय हैं॥ क० ६२७॥
इनहीं के दास दास दास प्रिया दास जानौ,
तिन लै बखानौ मानौ टीका सुखदाई है॥ इत्यादि

प्रस्तुत ग्रंथ का रचना काल १७५७ संवत् है इस ग्रंथ में श्री राधा रमण जी का हर ऋतु में हर प्रकार का शृंगार, भोग, शयन, विलास आदि सरस भाव से वर्णित है। इस में भी सारी शुकों का परस्पर प्रेम कलह विशेष आस्वादनीय वस्तु है। इस ग्रंथ के बारे में अधिक क्या कह सकता हूँ सामने रखा है रसिक पाठक देख लें। आशा है रसिक समाज इस ग्रंथ को कंठ धन कर के इस से श्री राधा-रमण जी की दैनन्दिनी सेवा परिचर्य्या का सरस अनुभव करेंगे। मनोहर जी के द्वारा रचित और भी अनेक ग्रंथ हैं। संप्रति हमारी खोज में रसिक जीवनी, सम्प्रदायबोधिनी नामक दो ग्रंथ प्राप्त हुए हैं। "क्षणदागीति चिंतामणि" ग्रंथ भी इनके द्वारा विरचित है ऐसा अनुमान किया जाता है क्योंकि उस में अधिकांश पद मनोहर जी के हैं। और भी इनके द्वारा रचित महाप्रभु संबन्धी अनेक सुंदर पद हैं। उन सबको यथा समय प्रकाशित करने की इच्छा है। वैष्णवदासानुदास—

कृष्णदास।

ग्रन्थरत्नषट्कम्

(१) मन्त्रार्थदीपिका (२) कामगायत्रीव्याख्या (३) अग्नि-
पुराणान्तर्गतगायत्रीव्याख्याविवृतिः (४) सूत्र-
उपासनावैष्णवपूजाविधिः (५) श्रीयुग-
लाष्टकं (६) श्रीकृष्णप्रेमामृतम् ।।

श्रीपादविश्वनाथचक्रवर्त्तिविरचिता मन्त्रार्थदीपिका,
श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीपादरचिता कामगायत्री-
व्याख्या, श्रीपादजीवगोस्वामिरचिता अग्नि-
पुराणान्तर्गतगायत्रीव्याख्याबिवृतिः,
श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितः सूत्र-
उपासनावैष्णवपूजाविधिः
श्रीपादजीवगोस्वामि-
विरचितं युगलाष्टकं,
श्रीपादगोपालभट्ट
गोस्वामिविरचितं
श्रीकृष्णप्रेमामृतम् ।।

प्रथमावृत्ति १०००
झूलन तीज संवत् २०१२
नौछावर ।।)

प्रकाशक—
कृष्णदास बाबाजी
(कुसुमसरोवरवाले) मथुरा

सुभाष स्कूल प्रेस, बलटीला, मथुरा ।

समर्पणपत्रम्

भज निताइ गौर राधे श्याम ।
जप हरेकृष्ण हरे राम ॥

सम्प्रदाय हितैच्छुक, श्री श्रीराधारमणचरणदासदेव
(बड़बाबाजी) महाराज के कृपापात्र साथी,
कुसुमसरोवर गवालियर मन्दिर के महन्त,
नित्यधामप्राप्त, मेरे काका गुरु
श्रीश्रीउद्धारणदासबाबाजी
महाराज के प्रीत्यर्थमें
यह "ग्रन्थरत्नषटकं"
समर्पित है ।

---o---

विनीत—कृष्णदास ।

पुस्तक मिलने का पता—

कृष्णदासबाबाजी (कुसुमसरोवर वाले)
श्रीमदनमोहनजी का मन्दिर, वृन्दावन-
दरवाजा, मथुरा ।

—:दो शब्द:—

व्रजविहारी नन्दनन्दन श्रीगोविन्द की मधुर भाव से उपासना सर्वोपरि मानी जाती है तथा वे श्रीगोविन्द अखिल रसों के विषय स्वरूप होने पर भी मुख्यतः रसराज अप्राकृत दिव्य-शृङ्गार स्वरूप में भक्तों के द्वारा उपासित होते हैं। ब्रह्म रुद्र तथा सनक सम्प्रदाय के वैष्णवगण गोपालमन्त्र से दीक्षित होते हैं तथा गुरुपरम्परा प्राप्त उस गोपालमन्त्र को ही सर्वाधार मानते हैं। जब तक कोई गोपाल-मन्त्र से दीक्षित नहीं होता है तब तक वह वैष्णव करके नहीं माना जाता है तथा उसकी गोविन्द-उपासना कुञ्जर शौच की भाँति हो जाती है और भी सेवा-पूजादि किसी विषय में उस भक्त का अधि कार नहीं होता है। गोपालतापनी श्रुति, गौतमीय मन्त्र, क्रमदीपिका, हरिभक्तिविलासादि शास्त्र में गोपालमन्त्र का विवरण विस्तार रूप से मौजूद है। उन सब वैष्णवशास्त्रों में उपासना का अधिकार रख कर गोपालमन्त्र के साथ कामबीज-कामगायत्री की संयोजना की गई तथा गोपालमन्त्र की भाँति उन को भी मूलाधार रूप में रखा गया। दोनों मन्त्र के प्रारम्भ में कामबीज को भी उनके बीज रूप में संयो-जित किया गया। प्रेमावतार श्रीमन्महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव ने भी गोपालमन्त्र में दीक्षित होकर जीव जगत् को मधुर उपासना का पाठ पढ़ाया तथा कामबीज-कामगायत्री को महान महत्ता दी। प्रभु का ऐसा उपदेश था कि कामबीज-कामगायत्री के बिना किसी भी प्रकार उपासना नहीं बन सकती। राधाभाव में विभावित आपने जिस प्रकार कामबीज कामगायत्री की परम व्याख्या का गान किया है उसी प्रकार उस गान को श्रीचरितामृतकार श्रीकृष्णदासकविराज गोस्वामी जी ने उक्त ग्रन्थ में मधुर रूप से वर्णन किया है। जो कि चक्रवर्ती महोदय की व्याख्या में मौजूद है। स्थानाभाव के कारण उसका पुनः उल्लेख नहीं किया गया है। गौड़ीयवैष्णव गुरुमुख

से गोपालमन्त्र के साथ कामगायत्री को ग्रहण करते हैं तथा उपासना क्षेत्र में उनको सर्व्वोपरि महत्ता देते हैं। कामगायत्री के विना श्रीराधागोविन्द की महान् उपासना फल्गुरूपा होजाती है। कामबीज-कामगायत्री के साथ गोपालमन्त्र की मधुर उपासना ही सर्वोपरि है ऐसा गौड़ीयसिद्धान्त है। चरितामृत में कहा है—

वृन्दावने अप्राकृत मदनमोहन।
कामगायत्री कामबीजे जाँर उपासन॥

अर्थ ज्ञान के विना मन्त्र सब निष्फल होते हैं इसलिये उनको सजीव करने के लिये शास्त्र ग्रन्थों में आचार्य्यगण बहुस्थल में व्याख्या कर गये हैं। उक्त कामबीज-कामगायत्री मन्त्र को फलक्षेत्र में लाने के लिये गौड़ीय गोस्वामियों ने भी अनेक स्थल में अनेक रूप से उनकी व्याख्या की। हरिभक्तिविलास के तृतीयविलास में तान्त्रिकी-सन्ध्याविधि विषय पर कहा गया है—

ध्यानोद्दिष्टस्वरूपाय सूर्य्यमण्डलवर्त्तिने।
कृष्णाय कामगायत्र्या दद्यादर्घ्यमनन्तरम॥
अथार्कमण्डले कृष्णं ध्यात्वैतां दशधा जपेत्।
क्षमस्वेति तमुद्वास्य दद्यादर्घ्यं विवस्वते॥

वहाँ सनत्कुमारसंहिता के वचन उठा कर कामगायत्री की उद्धृति की गई है॥

रासपञ्चाध्यायी के तृतीयश्लोक 'जगौ कलं वामदृशां मनोहरम' की श्रीपादजीवगोस्वामी कृत "वैष्णवतोषिणी" व्याख्या में—"अत्र श्लेषेण कामबीजं जगाविति रहस्यम्"। अर्थान्तर में कामबीज का गान किया यह रहस्य है॥

श्रीचक्रवर्त्ती महोदय ने "सारार्थदर्शिनी" टीका में भी ऐसा कहा है—"श्लेषेण कलं ककारलकारं वामदृशामिति लुप्तविभक्तिकं पदं वामदृक् चतुर्थ स्वरः तया सह पञ्चदशस्वरं कामबीजं जगाविति

रहस्यं मनमः आकर्षकत्वात् स्वस्वरूपभूत महामन्मथमन्त्रमित्यर्थः" । अर्थान्तर में क्लं ककार लकार हैं, वामदृक् यह लुप्त विभक्तिक पद है। अर्थात चौथास्वर दीर्घ ईकार से युक्त करने पर, विन्दु अनुस्वार की जोड़ने पर कामवीज क्लीं निकलता है यह श्रीजीवपाद के रहस्य पद का अभिप्राय है। मन का आकर्षण करने के कारण अपने स्वरूपभूत महामन्मथमन्मथ अर्थात् कामगायत्री समझनी चाहिये ।।

वहु अनुसन्धान के पश्चात् श्रीचक्रवर्ती महोदय के द्वारा विरचित एक व्याख्या तथा श्रीपादप्रबोधानन्दसरस्वती जी के द्वारा विरचित एक व्याख्या मुझे प्राप्त हुई। जो कि सानुवाद प्रकाशित होकर उपासकों के समक्ष मौजूद हैं। चक्रवर्ती जी की व्याख्या गौड़ीयवैष्णव समाज में प्रसिद्ध है तथा वह बङ्गाक्षर में मुद्रित भी हो गयी है। सरस्वती जी की व्याख्या-श्रीनीलमणिग्रंथागार वृन्दावन से, साधुमाता के आश्रम वृन्दावन से परम हितैषी कृष्णानन्द-दास जी के द्वारा दूसरी कापी, श्रीयुक्त पूज्य अतुलकृष्णगोस्वामी जी के द्वारा (वृन्दावन) उनके ग्रंथागार से तीसरी प्रति मुझको प्राप्त हुई। मैंने तो उन तीनों प्रतियों को मिला कर यथा साध्य एक प्रेस कापी वनाई। श्रीपादजीवगोस्वामी विरचित "आग्नेयस्थ गायत्री-व्याख्याविवृतिः" पहले श्रीयुक्त हरिदासदास नवद्वीप निवासी के द्वारा प्रकाशित होगई है। श्रीमद्रूपगोस्वामी विरचित "सूत्रउपासना-वैष्णवपूजाविधिः" की प्राचीन प्रति मेरे पास मौजूद है। रागानुगा भक्ति के उपासकों का यह परम उपादेय ग्रन्थ है तथा सूत्ररूप है।

श्री श्रीजीव गोस्वामि विरचित "युगलाष्टक" तथा श्रीपाद गोपालभट्ट गोस्वामी महोदय के द्वारा विरचित "श्रीकृष्णप्रेमामृत" ग्रन्थ की प्राचीन कापी-श्रीनीलमणि ग्रन्थागार, वृन्दावन से प्राप्त हुई है। कृष्णप्रेमामृत ग्रन्थ तो श्रीकृष्ण प्रेमामृत स्वरूप है। इसमें चार प्रकरण हैं। वसनचौर्य्य केलि-वर्णन, भारवहनखण्ड, पार-

खण्ड, दानखण्ड हैं। श्रीपादग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ की रचना के द्वारा श्रीमन्महाप्रभु के हृदयगत मधुर भाव का उटंकन किया है तथा मधुर भाव की मधुमय उपासना की पराकाष्ठा जगत् में दिखलाया है। वसनचौर्य्यलीला का वर्णन श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध में मौजूद है। भागवत के टीकाकार श्रीधरस्वामी चरण ने "व्रजविहारस्तोत्र" में नौका के द्वारा जमुनापार लीला का वर्णन करते हुए कहा है—

"जीर्णा तरिः सरिदति गभीरनीरा,
वाला वयं सकलमित्थमनर्थ हेतुः।
निस्तारवीजमिदमेव कृशोदरीणां
यन्माधवस्त्वमसि सम्प्रति कर्णधारः॥

दानलीला का वर्णन ग्रन्थों में प्रसिद्ध है।

बृन्दाबननिवासी पूज्य गोस्वामी श्रीयुक्त रासविहारी शास्त्री महोदय की गवेषणा से, तथा भक्तवर परम हितैषी श्रीमान् गोपालदास जी वीकानेर निवासी के आग्रह से और गोस्वामी ग्रन्थ के मर्म्मज्ञ, पूज्य गोस्वामी दामोदरलाल जी वृन्दावन निवासी के प्रोत्साह से इस "ग्रन्थरत्नषटकम्" का प्रकाशन में मैं समर्थ हुआ। आशा है गोविन्द-उपासक वैष्णव समाज इसका पठन पाठन के द्वारा चिरवाधित करेगा॥

विनीत-कृष्णदास।

———

प्रकाशितग्रन्थ-संख्या—१३८.

❀ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ❀

श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचित—

❀ ललितमाधवनाटकम् ❀

कयाचित् प्राचीनटिप्पन्या समलङ्कृतम्

कुसुमसरोवरनिवासिना कृष्णदासेन

हिन्दीभाषया सुपरिष्कृतम् ॥

सम्बत्—२०२४

गुरुपूर्णिमा

न्योछावर—रु० १२.५० पैसे

प्रकाशक

कृष्णदासबाबा

कुसुमसरोवर

मुद्रक—

गौरहरिप्रेस, कुसुमसरोवर, (ग्वालियरमन्दिर)

राधाकुण्ड (मथुरा)

समर्पणपत्रम्—

श्रीश्रीमद्राधारमणचरणदासदेव (बड़ेबाबाजी) के
अनुगत, संकीर्त्तन-प्रचारक, नित्यलीला-
प्रविष्ट, गुरुदेव, श्रीबाबाजीमहाराज (श्री-
श्रीरामदासबाबा) के पुनीत स्मरण
में यह ग्रन्थ प्रस्तुत होकर
समर्पित है।

❀ दो शब्द ❀

प्रस्तुत नाटक "ललितमाधव" का यह सुन्दर अनुवाद संस्कृत, बंगला और हिन्दी के ममज्ञ विद्वान् बाबा कृष्णदासजी द्वारा किया गया है । बाबा कृष्णदास का जन्म अब से ५८ वर्ष पूर्व में हुआ था वे नवद्वीप समाजबाड़ी बंगाल में अपने गुरुस्थान मे वाल्यावस्था में कुछ दिन रहे । बाबा कृष्णदासजी महाप्रभु-सकीर्त्तन के प्रसिद्ध सिद्ध-पुरुष बाबा रामदासजीके शिष्य हैं ।

सोलह वर्ष की आयु में ही बाबा कृष्णदास भगवान् कृष्ण की पावन-पुनीत क्रीड़ा-स्थली ब्रजभूमि में आ गये थे । विगत् वयालीस वर्षों से वह निरन्तर ब्रज के समस्त पवित्र तीर्थ-स्थलों में निवास तथा भ्रमण करने के साथ साथ अनेक अप्राप्य हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज करते रहे हैं ! आपका कार्य प्राचीन साहित्य की पुस्तकों की खोज, अध्ययन और अनुशीलन का रहा है । विगत् कितने ही वर्षों से बाबा कृष्णदासजी कुसुमसरोवर स्थित गवालियर वाला मन्दिर में व्यवस्थापक रूप में निवास कर रहे हैं । निवास-स्थान क्या है—इसे बाबा कृष्णदासजी का साधना-स्थल कहा जाय तो अधिक उपयुक्त होगा । कोई कल्पना नहीं कर सकता कि एक शरीर से दुबला पतला संत अपने इस जावन-काल में इतना विशाल कार्य कर सकेगा और वह भी उस दशा में जब कि आज के इस भीषण युग में समस्त सुविधाओं और साधनों का अभाव हो । बाबा प्रातः से सायंकाल तक अपने दुबले पतले शरीर से निरन्तर लिखने, अनुसन्धान-अनुशोलन-शोध करने और अप्राप्य ग्रन्थों का वंगला तथा सस्कृत से हिन्दी अनुबाद करने में अनवरत्

परिश्रम करते रहते हैं। अब तक लगभग १५० पुस्तकों का प्रकाशन बाबा कृष्णदासजी कर चुके हैं।

उनकी हार्दिक कामना है कि भक्ति, साहित्य, अलङ्कार, लक्षण-ग्रन्थ आदि जिन ग्रन्थों का उन्होंने प्रकाशन कराया है इसका सम्यक् पठन पाठन हो—जब साधारण उससे लाभान्वित हो सकें। सबसे बड़ी उनकी कामना है कि उनके इस विशाल-पुस्तकालय में जहाँ भोज-पत्रों पर अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ सुरक्षित हैं इसकी उचित व्यवस्था हो जाय। अनेक शोधकर्त्ता छात्र अपनी प्रतिभा से इनग्रन्थों से लाभ उठासकते हैं। बाबा के इस भण्डार में अनेक रत्न ऐसे छिपे हैं जो आज के स्नातकों को एक वृहद्कार्यक्षेत्र प्रदान कर सकते हैं। प्रस्तुत नाटक बहुत ही सुन्दर एवं अनुपम है जो दसअङ्कों में समाप्त हुआ है। क्रीड़ाकुञ्जविहारी श्रीकृष्ण, राधा-चन्द्रावली, ललिता, विशाखा, श्यामला आदि की लीलाओं मिलन-संयोग और वियोग शृङ्गार के दोनों पक्षों का अनुपम दृश्य उपस्थित करता है जिसके रसास्वादन में पाठक भाव-विभोर होकर अलौकिक आनन्द में निमग्न हो जाता है। इस नाटक की सर्वोत्तम विशेषता इसके दशम अङ्क में है जहाँ नन्दबाबा, यशोदा, राधा, चन्द्रावली आदि सबका द्वारिकापुरी में श्रीकृष्ण से मिलन होता है। नाटक सुखान्त है और भरतमुनि द्वारा प्रणीत नाट्य-साहित्य का समस्त परम्पराओं और विशेषताओ से परिपूर्ण है।

बाबा कृष्णदास ने इसका सफल अनुवाद प्रस्तुत किया है जिसमे मूल ग्रन्थ का ही आनन्द प्राप्त होता है। आशा है भक्त समुदाय इस साहित्यिक कृति से पूर्णतः लाभान्वित होगा।

प्रधानाचार्य—
राजकीय दीक्षाविद्यालय गोवर्द्धन
(मथुरा)

बद्रीप्रसाद सारस्वतः
एम० ए० एल० पी०
साहित्यरत्न

* प्राक्कथन *

महाप्रभु चैतन्य का आविर्भाव वैष्णव इतिहास में नवीन चेतना, नव-जागरण और नूतन-निर्माण के लिये ही नहीं वरन् उस क्रान्ति के लिये भी हुआ—जिसने एक ओर विश्रृङ्खलित बौद्ध खण्डहरों के मलवे से जन-मानस का परिष्कार किया तो दूसरा ओर आचार्य शङ्कर के मायावाद की घनी और दुर्गम झाड़ियों की भूल भुलैयों से भक्तों को अङ्गुली पकड़ कर दिशा-निर्देश किया। धर्म की हानि के समय, धर्म की रक्षा का दायित्व अपने ऊपर लेकर भक्त को आश्वस्त करने वाले भगवान् ने धर्म के भ्युत्थानार्थ जिन विभूतियोंको उत्तरदायित्व दिया, उनमें भगवान् महाप्रभुचैतन्य और उनका परिकर आचार्यपाद रूप और सनातन आदि गोस्वामी-वृन्द थे, जिन्होंने धर्म के अभ्युत्थानार्थ नाम सङ्कीर्तन एवं लीलानु-करण, धर्मस्थलों का जीर्णोद्धार और धर्म ग्रन्थों का सृजन किया। आचार्य रूपगोस्वामी द्वारा भक्ति के सूत्रों का परिवर्त्तित परिस्थि-तियों के अनुरूप लोकोपकारी दृष्टि से प्रस्तुतीकरण वैष्णवसाहित्य की वह अमूल्य निधि है जिसके सहारे वैष्णवधर्म और वैष्णवजन अन्य धर्मों की तुलना में अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं।

गोस्वामीजी के साहित्य में हम केवल साहित्यकता की खोजें तो यह गोस्वामीजी के प्रति न्याय न होगा, क्यों कि उन्हें साहित्य का भण्डार भरने की न तो आवश्यकता थी न अपेक्षा ही। फिरभी यदि पण्डितगण आत्म-सन्तोष के लिये उनके साहित्य को अल-ङ्कार शास्त्र की कसौटी पर कसें तो उन्हें रञ्च-मात्र भी निराशा न होगी। उनका साहित्य खरा सोना ही है जिसे किसी भी परीक्षा-विधि से अन्यथा सिद्ध नहीं किया जा सकता। यहाँ छन्द: और

स्वाभाविक रूप से आये हैं।
अलङ्कार दोनों ही प्रचुर मात्रा में
छन्दों की दृष्टि से जितनी विविधता आचार्यरूप के वाङ्मय में
दृष्टिगत होती है वह अन्य किसी आचार्य में शायद ही मिले। छन्द:
सर्वथा त्रुटि हीन और विषयानुकूल मिलेंगे। विस्तार भय से उनका
विस्तृत विवेचन यहाँ सम्भव नहीं। यह तो रुचि-सम्पन्न विद्वानों
के लिये पृथकत: साहित्य सेवा का अवसर दे सकता है।

ललितमाधव और विदग्धमाधव आचार्यरूपगोस्वामी के वाङ्मय
की श्री-वृद्धि करने वाले अप्रतिमरत्न है। इन मनोहर नाटकों के
आधार पर कितने ही हिन्दी और वंगला नाटकों की रचना हुई।
इनके विषय से सम्बधित अनेक नाटक ब्रजप्रदेश के रङ्गमञ्चपर एक
मात्र गोस्वामीजी द्वारा प्रतिपादित उज्ज्वल रस का प्रज्ञान
कराने के लिये खेले गये। इन नाटकों की अनेक अनुकृतियाँ हुईं,
अनेक अनुवाद हुए और भक्तों ने बड़े मनोयोग के साथ उनका
रसास्वादन किया। ललितमाधव और विदग्धमाधव यथार्थ रूप
से दो पृथक नाटक नहीं। श्रीकृष्ण की माधुर्य और ऐश्वर्य मूर्तियों
का दो पृथक् रूपों में चित्रण इन नाटकों के पार्थक्य का कारण
है।

श्रीहरिभक्तिरसामृतसिन्धु में जिन रसोंका और उज्ज्वलनीलमणि में
जिस उज्ज्वलरस का प्रतिपादन किया गया था वह सैद्धान्तिक दृष्टि
से कितनाभी पुष्ट क्यों न रहा हो परन्तु प्रयोगात्मक रूप से प्रस्तुती-
करण की अपेक्षा रखता था। इसी दृष्टि से दृश्य और श्रव्य दोनों
ही काव्यों में इन रसों का सम्यक् परिपाक आचार्य रूप को आव-
श्यक प्रतीत हुआ। यह निर्विवाद सत्य है कि ललितमाधव,
विदग्धमाधव और दानकेलिकौमुदी शताब्दियाँ तक ब्रजभूमि के
रङ्गमञ्च से, भक्तों के हृदय में भक्ति रस की धारा प्रवाहित करते
रहे। इन नाटकों ने भक्ति के अङ्कुरों को प्रस्फुटित कर अधिक

दृढ़ और शक्तिशाली रूप प्रदान किया।

वहुत दिनों से मेरी उत्कट अभिलाषा थी कि ललितमाधव और विदग्धमाधव नागरी लिपि में उपलब्ध हो। आज बाबा कृष्णदासजी कुसुमसरोवरवालों की कृपा से यह आकांक्षा पूर्ण हुई है। ललितमाधव का हिन्दी अनुवाद और टीकाओं सहित मुद्रण आवश्यक था। भक्ति-रस के सम्यक् बोध के लिये इन टीकाओं का अवलम्बन आवश्यक है। मुझे विश्वास है कि हिन्दी के विद्वान् और सहृदय रसिकजन इस मुद्रण की सहायता से आचार्य-रूपगोस्वामी के दिव्यसाहित्य का आस्वादन कर सन्तोष लाभ करेंगे।

बाबा कृष्णदास ने वैष्णवसाहित्य के प्रचार और प्रकाशन का जो महत्वपूर्ण कार्य किया है वह प्रशंसनीय और अनुकरणीय है। उनके परिश्रम के लिये मैं श्रद्धापूर्वक साधुवाद देता हूँ।

बाबा कृष्णदासजी चाहते हैं कि अब कुछ उत्साही, उदार, विद्वान्, भक्त और साहित्य-मर्मज्ञ उनके इस कार्य में सक्रिय हाथ बटा कर अपना पूर्ण सहयोग देकर इसे निरन्तर बढ़ाते रहें क्यों कि अब उनका स्वास्थ्य अनवरत् परिश्रम और आयु के कारण गिरता जा रहा है। तो भी मैं प्रभु से उनके दीर्घजीवन की प्रार्थना करता हूँ।

लज्जाराम ललाम

एम० ए०

प्रधानाचार्य, श्रीवृन्दावनविद्यापीठ

वृन्दावन (यू० पी०)

केशवदेव शर्मा
एम० ए० पी० एच० डी०,
सेंट्रल हिन्दी इन्स्टीट्यूट,
(आगरा)

दि० ४-७-६७

मुझे अपनी हार्दिक भावना व्यक्त करते हुए अति प्रसन्नता है कि अब में अपने जीवनदर्शक बाबा कृष्णदासजी महाराज के विषय में एक दो शब्द लिख रहा हूँ । मेरा बाबाजी से सर्वप्रथम परिचय सन् १९६० में मथुरा में डा० नारायणदत्त शर्मा द्वारा कराया गया जब में "चैतन्यदर्शन एवं अन्य वैष्णवदर्शन" नामक विषय लेकर अपना पी० एच० डी० संबन्धी शोधकार्य कर रहा था ।

बाबाजी ने वास्तव में इस क्षेत्र में मेरी अपूर्व सहायता की है तथा आज भी वे मेरे डी० लिट सम्बन्धी शोधकार्य में अत्यन्त रुचि ले रहे हैं । यह कहना अत्युक्ति न होगी कि बाबाजी गौड़ीयप्रदर्शन के क्षेत्र में एक ही स्तम्भ हैं । वे मुझे समय समय पर मुद्रित तथा अमुद्रित अनेक पुस्तकें प्रदान कर सहायता करते रहते हैं । उन्हीं के बल पर मैंने गौड़ीय बेदान्ताचार्य परीक्षा संस्कृत विश्वविद्यालय, से उत्तीर्ण की है । "षट्सन्दर्भ" सम्बन्धी शोधकार्य की डीलिट के क्षेत्र में उन्हीं का प्रसाद है ।

अतएव मेरी हार्दिक कामना है कि बाबाजी शोधकर्त्ता तथा वैष्णव दर्शन-प्रेमियों का हित करने के लिए अधिक से अधिक जीवन प्राप्त करें जिससे इस क्षेत्र में भारतदेश सुसम्पन्न हो सके ।

गौड़ीय वैष्णवदर्शन के प्रख्यात विद्वान् बाबा कृष्णदासजी ने ललितमाधवनाटक का प्रकाशन करते हुए एक अत्यन्त अभाव की पूर्त्ति की है । यह उनका कार्य इस कारण से और भी स्तुत्य है कि

उन्होंने ग्रन्थ के साथ ही हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत किया है तथा भूमिका भी लिखी है । इस कारण यह ग्रन्थ बोधगम्य तथा सर्व-सुलभ बन गया है।

इस नाटक में अधिक प्रभावपूर्ण स्थल चतुर्थाङ्क है जिसमें दिखाया गया है कि उद्धव एवं पौर्णमासीदेवी के प्रयत्न से द्वारिका में ब्रज-लीला नाटक का अभिनय होता है जिसको पौर्णमासी की प्रार्थना से भरतमुनि ने बनाकर नारद को दिया है । नारद ने तुम्बुरु को एवं तुम्बुरु ने गन्धर्व को सिखाया था । गन्धर्वगण द्वारका में लीलाभिनय करते हैं तथा विरहपीड़ित श्रीकृष्ण नाटक के दर्शक हैं। वे अपने रूप-माधुर्य में मोहित होकर उसके आस्वा-दन के लिए राधासारूप्य की वाञ्छा करते हैं।

केशवदेव शर्मा
एम० ए० पी० एच० डी०
सेंट्रल हिन्दी इन्स्टीटयूट,
(आगरा)

ता० ४-७-६७,

❋ जयगौर ❋

सर्व साधारण हिन्दी भाषा भाषी एवं धार्मिक जनता को जान-कर अत्यन्त आनन्द होगा कि एक परम भागवत निःकिंचन वंग-भाषी महन्त श्रीकृष्णदास बाबाजी मैनेजिंग सदस्य श्रीकृष्ण-चैतन्यालय कुसुमसरोवर श्रीराधाकुण्ड-वासी ने अब तक हिन्दी

राष्ट्र भाषा में स्वयं (कुछ) अनुदित और अप्राप्य ब्रजभाषा के १५० ग्रन्थों को प्रकाशित करके हिन्दी राष्ट्र भाषा का मानवर्द्धन किया है । ब्रजभाषा और संस्कृत के अप्राप्य साहित्य को खोज करके श्रीमन्माध्वगौड़ीय साहित्य को जनता के प्रकाश में लाकर गौरवशाली हुए हैं। जो ग्रन्थ वंगभाषा या केवल संस्कृत में प्रकाशित थे और जो अप्राप्य थे उनको राष्ट्रभाषा में अनुवाद के द्वारा प्रकाशित करके यशस्वी हुए हैं।

उन ग्रन्थों में कुछ ग्रन्थों का संक्षेप में परिचय बाबाजी की भूमिका के द्वारा ज्ञात होगा। श्रीमन्माध्वगौड़ीयसंप्रदाय के प्रमुख आचार्य्य प्रवर रसिकाचार्य्य–सव रस एवं विशेषतः अप्राकृत उज्वल राधागोविन्द के रस के प्रवर्तक प्रभुवर श्रीमद्रूपगोस्वामि चरण के द्वारा विरचित ग्रन्थों में—उज्वलनीलमणि, ललितमाधव एव दानकेलिकौमुदी जो श्रीराधागोविन्द की अप्राकृत लीलाओं के अत्यन्त निगूढ़ मार्मिक भावों को प्रकट करने बाले ग्रन्थ हैं।

उन अपूर्व ग्रन्थों को उक्त महन्त बाबाजी ने प्रकाशित करके राष्ट्रभाषी जनता का महान् उपकार किया है और धन्य भागी हुए हैं।

अन्त में— मैं अपने प्रिय महन्त बाबाजी के लिये श्री गौरसुन्दर से प्रार्थना करता हूँ कि वह इसी तरह से अप्राप्य ग्रन्थों का राष्ट्र भाषा में प्रकाशित करके हिन्दी राष्ट्रभाषा भाषी जनता के लिये श्रीमन्माध्वगौड़ीय साहित्य प्रकाशन करते रहे और चिरायु रहे।

तुम्हारा ही—

गोस्वामी दामोदराचार्य

श्रीराधारमणमन्दिर, श्रीवृन्दावन।

आषाढ़ कृष्णा १४

गुरुवार, २०२४

* मुखबन्ध *

विदग्धमाधव की समाप्ति काल १५८९ सम्बत् में तथा ललित-माधव की समाप्ति काल १४५९ शकाब्द ज्येष्ठमास चतुर्थी तिथि है। भद्रवन में इस की समाप्ति हुई। १७०९ शकाब्द में नित्यानन्दवंशीय श्रीस्वरूपगोस्वामि ने "प्रेमकदम्ब" नामक इस का एक वंगभाषा में पद्यानुबाद किया है। साहित्यदर्पणमें नाटकके जो समस्त लक्षणादि बतलाये गये हैं वे समस्त आद्याचार्य भरतमुनि के मत में सम्पूर्ण अनुरूप नहीं हैं और उतने संगत भी नहीं है। अतएव ग्रन्थकार रूपगोस्वामी ने भरतमुनि के नाट्यशास्त्र एवं रससुधाकर के मतानु-सार नाट्यशास्त्र की समस्त लक्षणावली का विश्लेषण करके "नाटकचन्द्रिका" नामक ग्रन्थ की रचना की। उस नाटकचन्द्रिका के समस्त उदाहरण का स्थल यह ललितमाधवनाटक जानना। नाटकचन्द्रिका के साथ इस का मिला कर पठन-पाठन करने से हृदय में अपूर्व माधुर्यास्वादन होगा।

श्रीरूपगोस्वामिपाद महोदय ने अपने नाट्यशास्त्र के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "नाटकचन्द्रिका" में जो लक्षण दिये हैं उनके उदाहरण प्राय: समस्तरूप से ललितमाधवनाटक में पाये जाते हैं। नाटकचन्द्रिका में नाटकलक्षण की परिपाटी इस प्रकार हैं—

नायक के दिव्य, अदिव्य एवं दिव्यादिव्य ये तीन भेद ; ख्यात, मिश्र एवं क्लृप्त भेद से तीन प्रकार इतिवृत्त; प्रस्तावना; आशीर्वाद नमस्कार एवं वस्तुनिर्देश भेद से तीन प्रकार नान्दी ; प्ररोचना ; कथोद्घात, प्रवर्त्तक, प्रयोगातिशय, उद्घाटक एवं अवलगित भेद से पाँच प्रकार आमुख ; सन्धि ; वीज-विन्दु-पताका-प्रकरी एवं प्रधानकार्य तथा अगकार्य रूप से पाँच प्रकार प्रकृति ; आरम्भ, यत्न, प्रत्याशा, नियताप्ति एवं फलागम यह पञ्च अवस्था ; मुख,

प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, एवं उपसंहृति भेद से पाँच प्रकार सन्ध्यंग ; द्वादश प्रकार बीजभेद, त्रयोदश प्रकार प्रतिमुखसन्धिभेद, चौदह प्रकार निर्वहण - सन्धि - भेद, इक्कीस प्रकार सन्ध्यन्तर, छत्तीस प्रकार भूषणभेद, चार प्रकार पताकास्थान ; विष्कम्भक-चूलिका-अंकास्य-अंकावतार, प्रवेशकादि अर्थोपक्षेपक, स्वगत, प्रकाश, जनान्तिक आदि नाट्योक्तिसमूह, अङ्क का स्वरूप, अङ्क-संख्या; नाटक का रस; संस्कृत एवं प्राकृत आदि भाषा का विधान, भारती आदि वृत्तिचटुष्टय; नर्म एवं रस का विभेद; इत्यादि विषय लक्षण एवं उदाहरण के साथ वर्णित हैं। इन समस्त नाटकभेदों के उदाहरण "ललितमाधव" से लिए गये हैं।

प्रस्तुत इस "ललितमाधवनाटक" के साथ जो टिप्पनी दी गई है उस के रचयिता सम्बन्ध में कोई निश्चय नहीं है। श्रीविश्वनाथ-चक्रवर्त्ति के सम्बन्ध में यह सन्देहास्पद है कि—टिप्पना के आदि व अन्त में कहीं पर किसी प्रकार वर्णना व पुष्पिकादि नहीं है। केवल मूलग्रन्थ को व्याख्या हुई है। कोई कोई श्रीजीवगोस्वामिपाद के शिष्य श्रीराधाकृष्णदासजी इस के रचयिता ऐसा कहते हैं॥

इस ललितमाधवनाटक के प्रकाशन में आधारभूत दो संस्करण मुझे मिले। एक तो श्रीरामनारायणविद्यारत्न महोदय, वहरमपुर के द्वारा संकलित सस्करण, दूसरा वसुमती-साहित्यमन्दिर से श्रीसतीशचन्द्रमुखोपाध्याय महोदय द्वारा प्रकाशित संस्करण। इन दोनों संस्करण की सहायता से हम सुखपूर्वक इस ग्रन्थप्रकाशन में समर्थ हुए। दोनों संस्करण के अनुवाद से हमें यथेष्ट सुविधा मिली। श्रीपुरीदास-महोदय के संस्करण से भी काफी सहायता प्राप्त हुई॥

मैं इन सबका आभारी हूँ अलमति-विस्तरेण॥

इति कृष्णदासबाबा

उत्तरप्रदेश के राज्यपालमहोदय एवं अन्य महानुभावों द्वारा बाबा कृष्णदास को प्रमाणपत्र

ईंग्लिश से हिन्दी अनुवाद

राज्यपाल
उत्तर-प्रदेश

राज्यपालशिविर
उत्तर-प्रदेश
लखनऊ
अप्रैल २७, १९६७.

गौड़ीय सम्प्रदाय के श्रीकृष्णदास बाबा, जो बाबा रामदास के शिष्य हैं और इस समय कुसुमसरोवर राधाकुंड मथुरा में निवास कर रहे हैं एक ख्याति प्राप्त लेखक हैं। इन्होंने उत्तरप्रदेश में भक्ति तथा सांस्कृतिक वातावरण को गौड़ीयगोस्वामियों के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद कर बहुत समृद्धिशाली बनाया है। यह एक विचित्र पहेली ही है कि मथुरा, वृन्दाबन और ब्रजभूमि जो भक्ति-ग्रन्थों का गोपकाल से प्रधान स्थान है वहाँ यह ग्रन्थ हिन्दी भाषा में उपलब्ध नहीं थे। गौड़िया सम्प्रदाय के प्रधान लेखकों की लगभग १५० पुस्तकों का अनुवाद करने का श्रेय बाबा कृष्णदास को है। जिनका वितरण हो रहा है।

इस महान् उद्देश्य के निमित्त जो भी सहायता प्रदान को जाय उसे उचित ढंग से उपभोग में लाई हुई समझा जाय क्यों कि बाबा कृष्णदास एक सन्यासी का जीवन-यापन कर रहे हैं और उन्होंने इस सुन्दर उद्देश्य के लिए अपना जीवन पूर्णतः अर्पित कर दिया है। उनकी समस्त विद्वत्ता और उपलब्ध साधन इन पुस्तकों के प्रकाशित करने में लगे हुए हैं मेरी हार्दिक कामना है कि इस कार्य में निरन्तर उन्नति होती रहे।

विश्वनाथदास

ता० ६-१०-६४

यह अतिहर्ष का विषय है कि मैं जैसे ही दिल्ली विश्वविद्यालय में पी० एच० डी० के लिए काम करने लगी तो मुझे "वैष्णवदर्शन को बलदेवविद्याभूषण की देन" नामक विषय दिया गया । दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के रीडर, डॉ० रसिकविहारीजोशी ने मेरा मार्ग दर्शन किया कि इस क्षेत्र में मुझे बाबा कृष्णदासजी महाराज से पर्याप्त सामग्री प्राप्त हो सकती है । फलस्वरूप मैं श्रीकृष्णचैतन्य मन्दिर, कुसुमसरोवर, राधाकुण्ड में आई और मैंने वास्तव में बाबाजी महाराज को चैतन्यदर्शन का उद्भट्ट विद्वान् देखा । बाबाजी वैष्णव संप्रदाय की प्रकाशित अथवा अप्रकाशित पुस्तकों को प्रकाशित कराने का प्रयत्न में लगे हुए हैं ।

वास्तव में बाबाजी की इस क्षेत्र में निस्वार्थ सेवा है । अतएव वे तथा उनके शिष्य श्रीविश्वम्भर दास प्रशंसा के पात्र हैं ।

सुदेशकुमारीरहेजा
एम० ए० (संस्कृत) रिसर्च स्कालर,
दिल्लीविश्वविद्यालय, दिल्ली

हाईकोर्ट इलाहाबाद के चीफ जस्टि के द्वारा—

आज २९ मई ६७ को गवालियरमन्दिर के दर्शन किए । महाराज कृष्णदासजी के दर्शन वहीं हुए । महाराज कृष्णदासजी ने बहुत से ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद किया है जो भगवत् प्रेमियों के लिए अमृत समान हैं ।

महाराजजी की सेवा कोई मूल्य तो हो ही नहीं सकता परन्तु मानव समुदाय सदैव ही उनका अनुग्रहीत रहेगा ॥

जगदीशसहाय

एच० पी० बागची, एम० ए० एल० एल० बी,
एडवोकेट, हाईकोर्ट, आगरा (यू० पी०)
ता० ५-१०-६५.

मुझे पण्डित केशवदेव शर्मा एम० ए० हिन्दी, एम० ए० संस्कृत, साहित्याचार्य तथा व्याकरणाचार्य से ज्ञात हुआ कि श्रीबाबा-कृष्णदासजी, जो कुसुमसरोवर, राधाकुण्ड (मथुरा) में निवास करते हैं, उनके पास एक ऐसा अगाध साहित्य है जो गौड़ीयवैष्णव संप्रदाय से सम्बन्धित है तथा जिसका प्रकाशन हिन्दी में हो रहा है। अतएव मैंने श्रीकेशवदेव शर्मा के साथ वहाँ जाने का निश्चय किया। मुझे अति प्रसन्नता हुई कि बाबाजी के पास "षट्सदर्भ" तथा "सिद्धान्तरत्न" आदि ऐसे अनेक ग्रन्थ हैं, जिनका वे प्रकाशन कराने का इरादा कर रहे हैं। वे अब तक सौ से अधिक लघु एवं दीर्घ ग्रन्थों का प्रकाशन करा चुके हैं। यह कथन असंगत नहीं है कि भविष्य में इस प्रकार के कार्य के लिए एक बड़ी धनराशि की आवश्यकता है।

मेरी हार्दिक इच्छा है कि राज्यसरकार इस कार्य के लिए अधिक से अधिक सहायता प्रदान करे जिससे इन अमूल्य गौड़ीय-वैष्णव ग्रन्थों की रक्षा हो सके। मैं प्रार्थना करता हूँ कि बाबा-कृष्णदास महाशय चिरजीवी बनें जिससे वे अधिक से अधिक कार्य कर सकें। बाबाजी महाराज पी० एच० डी० तथा० डी० लिट् के छात्रों का गोड़ीय दर्शन के क्षेत्र मे मार्गदर्शन करते रहते हैं, मैं इस कार्य के लिए उनको धन्यवाद देता हूँ।

हरप्रसाद बागची

धन्यवाद-पत्र

साहित्यप्रेमी जिन जिन उदार प्रकृति सज्जनों से इस साहित्य-सेवा रूप प्रभु-प्रसाद में हार्द्दिक-सहानुभूति मिली तथा अकैतव-उत्साह मिला है उन महानुभावों को मैं धन्यवाद देकर अपनी वाणी को समाप्त करता हूँ।

(१) श्रीमान् विश्वनाथदासजी, राज्यपालमहोदय, (उत्तरप्रदेश)

(२) स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज, वृन्दावन,

(३) श्रीमान् हनुमानप्रसादजी पोद्दार गोरखपुर,

(४) सेठ जयदयालजी डालमिया नई दिल्ली,

(५) श्रीमान् रामनारायणजी वैद्य, झाँसी,

(६) श्रीमान् लज्जाराम, ललामजी, वृन्दावन विद्यापीठ-प्रधानाचार्य,

(७) सेठ मूलचन्दजी, झारसुगुड़ा, सम्बलपुर (उड़िशा)

(८) श्रीमान् गोपालदासजी, डागा, (राधाकुण्ड)

(९) बाबा दीनेश शरणजी महाराज, वृन्दावन,

(१०) गोस्वामी दामोदरलालजी महाराज, वृन्दावन,

(११) श्रीयुक्त प्राणकिशोर गोस्वामी महोदय, कलकत्ता,

(१२) सेठ ताराचन्दजी, हाथरस,

(कृष्णदास)
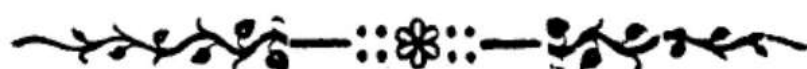
ललित-माधव-नाटक की सारगर्भकथा

प्रथमाङ्क:—प्रारम्भ में ग्रन्थकार श्रीरूपगोस्वामीजी नाट्यशास्त्र के विधानानुसार ग्रन्थ-प्रतिपाद्य देवता श्रीकृष्णचन्द्र का प्रारम्भिक आशीर्वाद रूप मंगलाचरण का पाठ करते हैं। जिसको नाट्यशास्त्र में प्रस्तावना कहा जाता है। प्रस्तावना में नान्दी की जाती है, जो सुखरूप होती है।

मंगलस्तुति ही नान्दी का स्वरूप है। आपने "नाटकचन्द्रिका" नामक नाटक-लक्षणीय ग्रन्थ में कहा है—

"प्रस्तावनायास्तु मुखे नान्दी कार्या सुखावहा।
आशीर्नमष्क्रियावस्तुनिर्देशान्यातमा मता॥"

यह नान्दीपाठ तीन प्रकार का होता है। (१) आशीर्वाद (२) नमस्कार तथा (३) वस्तुनिर्देश।

प्रथम श्लोक में आशीर्वाद एवं द्वितीय श्लोक में नमस्कार का विधान किया गया है और साथ ही साथ वस्तुनिर्देश भी। द्वितीय-श्लोक में श्रीकृष्ण को मुदिर (मेघ) रूप से उपमित किया गया है। उस श्लोक में--

कृष्णपक्ष की व्याख्या:—जो श्रीकृष्ण आठों दिशाओं में रहने वाली श्रीराधा, चन्द्रावली, ललिता, विशाखा, पद्मा, शैव्या, श्यामला, एवं भद्रा, इन ब्रजरमणियों को निबिड़ श्रृङ्गाररस के सिंचन के द्वारा संतृप्त और कस्तूरीलिखित पत्र-भंगियों की शोभा के द्वारा सुन्दरियों का भूषण विधान करते हैं, पुनः जो निज विशाल हृदय में अतुलकान्ति वाली-श्रीराधा एवं चन्द्र से भी उज्वलकान्तिवाली चन्द्रावली को रखकर मन्द मन्द पदसंचार के द्वारा भ्रमण करते हैं, उन श्रीकृष्णचन्द्र को हम नमस्कार करते हैं।

❀ श्रीश्री गौरहरिर्जयति ❀

प्रकाशित ग्रन्थसंख्या-१२६

सानुवाद—

❀ साधनदीपिका ❀

रचयिता—

व्रजाचार्य्य—

श्रीश्रीनारायणभट्टजी

प्रकाशकः—

कृष्णदासबाबा

कुसुमसरोवर

सम्वत् २०२२.

मुद्रकः—गौरहरिप्रेस, कुसुमसरोवर, राधाकुण्ड,
[मथुरा]

* समर्पणपत्रम् *
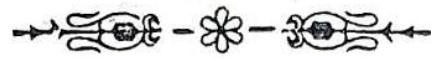
भज-निताइ गौर राधेश्याम ।

जप-हरे कृष्ण हरे राम ॥

श्रीश्रीराधारमरण-चररणदास जी (बड़े बाबाजी) महाराज के मार्ग-पथिक, नित्यधामगत, गोविन्द-कुराड, (वृन्दावन) निवासो, वड़े गुरुभ्राता, श्रीरजनीदासबाबाजी (राधाचररणदासजी) महाराज के पुनीत स्मरण में समर्पित

साधनदीपिकेयम्

❀ दो शब्द ❀

परम-उपासक, ब्रज-उद्धारक, संस्कृत-मनीषी, महाकवि और महर्षिप्रवर श्रीनारायणभट्टगोस्वामी दाक्षिणात्य तैलंग वंशावतंस श्रीभास्कर भट्ट गोस्वामी के पुत्र और परम रसिक ब्रह्मचारी श्रीकृष्णदास के शिष्य थे! महासमर्थ मध्वाचार्य द्वारा प्रवर्तित तथा महाप्रभु चैतन्य द्वारा प्रतिपादित, सम्पुष्ट और प्रसारित मतावलम्बी, ब्रह्मचारी कृष्णदास के शिष्य के रूप में श्रीनारायणभट्ट गोस्वामी ने लगभग ६० ग्रन्थों का प्रणयन पूर्ण किया। उनकी रचना साधारण लेखक के वश की बात नहीं। इनमें कई ग्रन्थ विशाल-रूप में हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ "साधनदीपिका" वृहद् ग्रन्थ है। साधनदीपिका में साधन रूपा भक्ति का सविशेष निर्णय, वैष्णवों का जीवन यापन विधि विधान-विचार, जन्माष्टमी, रामनवमी, एकादशी, प्रभृति व्रतों का विस्तृत विवरण उपलब्ध है । श्रीभट्ट जी बहुज्ञ और बहुश्रुत पंडित थे। उन्होने वेदों से लेकर पुराणों तक का मन्थन किया था। नाना पुराण निगमागम सम्मत धर्मों का आलोड़न-विलोड़न कर अपने प्रकाण्ड पांडित्य का प्रदर्शन अपने ग्रन्थों में किया। साधनदीपिका में जिन ग्रन्थों के उद्धरण मिलते हैं वे इस प्रकार हैं—नारदपंचरात्र, रामर्चनचन्द्रिका, मंत्रमुक्तावली, अगस्त्यसंहिता, विष्णुस्मृति, पद्मपुराण, तत्त्वसागर, जयाख्यसंहिता, गौतमीयतन्त्र, ब्रह्माण्डपुराण, नारद-पुराण, स्कन्दपुराण, भविष्योत्तरपुराण, वाराहपुराण, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, गरुड़पुराण, अग्निपुराण, लिङ्गपुराण, हरिवंश-पुराण, वायुपुराण, देवीपुराण, मत्स्यपुराण, मार्कण्डेयपुराण,

विष्णुयामल, क्रमदीपिका, सारसंग्रह, विष्णुतन्त्र, भागवत, महाभारत, शारदातिलक, त्रैलोक्यसंमोहनतन्त्र, सनत्कुमारसंहिता, पुष्करसंहिता, पारमेश्वरसंहिता, गरुड़संहिता, मनुस्मृति, शाण्डिल्यस्मृति, कात्यायनीस्मृति, विष्णुधर्म, बृहद्गौतमीय, विष्णुधर्मोत्तर, गौड़निबन्ध, ब्रह्मसूत्र, सामवेद, ऋग्वेद, अथर्ववेद, बृहदारण्यक, कठवल्ली, प्रतापमार्तण्ड, वामनकल्प, आदित्यपुराण, नरसिंहपुराण, विष्णुरहस्य, ध्रुवचरित्र, श्रीमद्भगवद्गीता, हयशीर्षआदि आदि। गोस्वामी द्वारा निर्दिष्ट संस्कृत ग्रन्थों की यदि तालिका बनाई जाय तो एक वृहद् ग्रन्थ ही बन जायगा। एक जीवन में इतने ग्रन्थों का अध्ययन मंथन–मनन कोई सशरीरी कर ही नहीं सकता है उनको लिखना तो असम्भव कल्पना है। किन्तु गोस्वामी जी तो नारदजी के अवतार थे। उन्होंने निश्चय ही कई जन्मों की उपलब्ध सम्पत्ति-सरिता को व्रज मे आकर अपने श्रीमुख से प्रवाहित किया। यह व्रजमंडल का अहोभाग्य ही कहा जायगा॥

प्रस्तुत ग्रन्थ साधनदीपिका तो वास्तव में वैष्णवजनों का हृदय विलम्बी हार है। शुद्ध शास्त्रोक्त पद्धति के अनुसार सदाचार्यों के सदाचार—अविरोध से साधनों के भावों को प्रकाशित करने वाला यह ग्रन्थ एक निधि के समान संग्रहणीय, पठनीय, और नित्य–पारायण करने योग्य है। इसमें गुरु–शिष्यादिकों के लक्षण, सदाचार आदि पर विस्तार में प्रकाश डाला गया है। गुरु और शिष्य भारतीय संस्कृति के मेरुदण्ड हैं। इन्हीं के द्वारा वैष्णव–धर्म जीवित है, सशक्त है, और इन्हीं के आधार पर श्रीकृष्ण–भक्ति की महिमा महान् है। अतः साधनदीपिका एक प्रकार से साधनों का विश्वकोष है॥

मैं अल्पज्ञ हूँ। श्रीश्री कृष्णदासबाबा कुसुमसरोवरस्थ अपनी तपोभूमि में जगकल्याण हेतु भक्तिसेतु का निर्माण कर

रहे हैं। जो महान् कार्य सम्पादन श्रीश्रीनारायण भट्ट ने ब्रज में विलुप्त प्रायः ग्राम, नगर, वन, उपवन, कुंज, कुण्ड, तालाव, देवी, देवताओं की मूर्तियों, विविध लीला-स्थलियों का प्राकट्य करके सम्पन्न किया, वही सत्कार्य बाबा कृष्णदास संस्कृत के विलुप्त, अनुपलब्ध, अप्रकाशित, दुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थों का शोधन, सम्पादन, प्रकाशन कर रहे हैं, जो एक ऐसी जन-सेवा है, भक्ति का वह स्वरूप है, जिससे भागवत-धर्मावलम्बी मानव अऋण नहीं हो सकता। मैं इसे उनकी महान कृपा ही कहूँगा कि मुझ जैसे अल्पज्ञ से साधनदीपिका का परिचय लिखाने की उन्होंने आज्ञा प्रदान की। आज्ञा का पालन न करना मेरे वश की बात नहीं। उनकी आज्ञा में प्रभु की आज्ञा मुझे दिखाई दी ॥

श्रीनारायणभट्ट गोस्वामी के साहित्य का अध्ययन शोधन का गुरुतर कार्यभार किसी महान् पंडित को ही करना चाहिए था। किन्तु अपने परम मित्र डा० केशवदेवशास्त्री के इंगित ने मुझे इस शुभकार्य में दत्तचित्त किया। इस साहित्य को अवगाहन करते समय श्रीनारायणभट्ट और उनके साहित्य के सम्बन्ध में कुछ काव्य रचना की है। उस विभूति को प्रणाम स्वरूप मैं कुछ काव्य पंक्तियाँ नीचे उद्धृत किए देता हूँ—

खोजि खोजि वेद औ पुरान, भाख्य संहितानु,
स्मृति औ तन्त्र, मन्त्र मथि कौन तोलतौ ।
भक्ति कौ विलास, अभिलाष, भुक्ति-मुक्ति हू की,
रास कौ विलास सविलास को टटोलतौ ।
लाड़िलेय लाड़िली ललित लास्य लखतौ को,
रास-रस-रहसि रहस्य कौन खोलतो ।
हो तौ जो न नारायण भट्ट उच्च धाम वारौ,
ब्रज भुवि मण्डल की महिमा को बोलतौ ॥१॥

ग्रन्थ वर्णन—

धर्म की प्रदीपिका जो साधन की दीपिका है,
व्रज रज दीपिका, महोदधि है व्रज को।
भक्ति-रसतरंगिनी, प्रेमांकुर, व्रज प्रकाश,
भक्ति कौ विलास, सुविवके व्रज रज कौ।
बृहद् गुणोत्सव, व्रजोत्सव-अल्हादिनी है,
रसिकाल्हादिनी सों टीकौ भागवत कौ।
लाड़िलेयाष्टक, सिद्धान्त-चूड़ामणि नीकौ
जीकौ टीकौ पंचअध्यायी रास रस कौ ॥१॥
व्रज-रत्नदीपिका, विनोद राधारानी जू कौ
रीतिनीति श्लोक, भक्तभूषण हू पाइए।
पाइए प्रवोधिनी, सुबोधिनी अनेक नेक
शोधिनी सुजीवनी सुरभि सुरभाइए।
गाइए अनूपम अटापै भट्ट नारायण
सचित्र छटा पै ठठा भक्ति भरि लाइए।
कौन गनें जेते काव्य चम्पू सुरचे है ते ते
साठ तक रसिक समाज में सुनाइए ॥२॥
जय प्रभु मध्वाचार्य विष्णुमत प्रवल प्रवर्त्तक
प्रभु चैतन्य अनन्य जन्य हरि भक्ति विवर्त्तक।
कृष्णदास जू धन्य ब्रह्मचारी सुविचारी
जिन पाए श्री नारायण से शिष्य पूजारी
वृज संस्कृति प्राकट्यकरि भक्ति सेतु जिन निरमयौ
धन्य नारायण भट्ट जू जिन जग अमृत घट दयौ ॥३॥

प्रभा प्रकेत
कृष्णापुरी (मथुरा)

दासानुदास—
भगवानसहाय पचौरी
एम०ए० (हिन्दी) एम ए० (इतिहास)
एल० टी० साहित्याचार्य रिसर्च स्कालर।

गुरुपरम्पराः—

अथ पद्मपुराणमतेन श्लोकाः लिख्यन्ते—

श्रीमन्नारायणः पूर्वं संप्रदायप्रवर्त्तकः ॥३३॥
तस्य शिष्यो भवद्ब्रह्मा सर्वेषां प्रपितामहः।
नारदस्तस्य शिष्योऽभूत ज्ञानसागरचन्द्रमाः ॥३४॥
वेदव्यासो नारदस्य शिष्यो जातो मुनीश्वरः।
व्यासाल्लब्ध-कृष्णदीक्षो मध्वाचार्यो महामुनिः ॥३५॥
चक्रे वेदान् विभाज्यासौ संहितां शतदूषणीम्।
निर्गुणाद्ब्रह्मणो यत्र सगुणस्य परिष्क्रिया ॥३६॥
तस्य शिष्योऽभवत् पद्मनाभाचार्यमहाशयः।
तस्य शिष्यो नरहरिस्तच्छिष्यो माधवो द्विजः ॥३७॥
अक्षोभस्तस्य शिष्योऽभूत् तच्छिष्यो जयतीर्थकः।
तस्य शिष्यो ज्ञानसिन्धुस्तस्य शिष्यो महानिधिः ॥३८॥
विद्यानिधिस्तस्य शिष्यो राजेन्द्रस्तस्य सेवकः।
जयधर्मो मुनिस्तस्य शिष्यो मुद्गलमध्यतः ॥३९॥
श्रीमान् विष्णुपुरी यस्य भक्तिरत्नावली कृतिः।
जयधर्मस्य शिष्योऽभूत ब्रह्मण्यः पुरुषोत्तमः ॥४०॥
व्यासतीर्थस्तस्य शिष्यो यश्चक्रे विष्णुसंहिताम्।
श्रीमान् लक्ष्मीपतिस्तस्य शिष्यो भक्तिरसाश्रयः ॥४१॥
तस्य शिष्यो माधवेन्द्रो यद्धर्मप्रवर्त्तकः।
कल्पवृक्षस्यावतारो ब्रजधामनि तिष्ठतः ॥४२॥
तस्त शिष्योऽभवत् श्रीमान् ईश्वराख्यपुरीयतिः।
कलयामास शृङ्गारं यः शृङ्गारफलात्मकः ॥४३॥
ईश्वराख्यपुरीं गौर उररीकृत्य गौरवे।
जगदाप्लावयामास प्राकृताप्राकृतात्मकम् ॥४४॥

स्वीकृतो राधिकाभावो कान्तिः पूर्वं सुदुष्करः।
अन्तर्बहिर्रसांभोधिः श्रीनन्दनन्दनोऽपि सन् ॥४५॥

आद्यव्यूहोऽपि चैतन्यमविशत् यः पुरे परः ।
विचुक्षोभ मनो यस्य दृष्ट्वा गन्धर्वनर्त्तनम् ॥४६॥

दारूकस्थोऽपि भगवान् विचुक्रोश शचीसुतम् ।
गौरः श्रीकृष्णचैतन्यः प्रख्यातः पृथिवीतले ॥४७॥

श्रीचैतन्यस्य शिष्योऽभून् पंडितः श्रीगदाधरः।
श्रीराधायाः स्वरूपोऽयं कृष्णभक्ति-प्रवर्त्तकः ॥४८॥

नित्यानन्दोऽपि शिष्योऽभूत् चैतन्यस्य महाप्रभोः।
बलदेवांशसंभूतो यः शृंगारवटे स्थितः ॥४९॥

नित्यानन्दसमुद्भूताः शृंगारस्थलवासिनः ।
अद्वैतश्चापि शिष्योऽभूत् चैतन्यस्य महाप्रभोः ॥५०॥

गोपेश्वरांशसंभूतः प्रेमानन्दजलाप्लुतः ।
गदाधरस्य शिष्योऽभूत् कृष्णदासो मुनीश्वरः ॥५१॥

इन्दुलेखावतारोऽयं ब्रह्मचारीति यं विदुः ।
तस्य शिष्यो भवच्छ्रीमान्नारदो भट्टरूपधृक् ॥५२॥

श्रीनारायणभट्टोऽसौ प्रख्यातो ब्रजमंडले ।
ब्रजोद्धारार्थमाज्ञप्तः श्रीकृष्णेन बभूव यः ॥५३॥

श्रीनारायणभट्टचरितामृतस्य

चतुर्थास्वादे—

आमुख

ब्रज का पुनरुद्धार करने वाले महात्माओं में नारायण-भट्ट का स्थान सर्वोपरि है। इनके जीवनवृत्त का आधारभूत प्रामाणिक ग्रंथ श्रीजानकी-प्रसाद-भट्ट विरचित "श्रीनारायण-भट्ट-चरितामृतम्" है। जानकी-प्रसाद-भट्ट जो एक महान् विद्वान् आचार्य थे भट्ट जी की सातवीं पीढ़ी में हुए थे। अज्ञात लेखक का एक "लघुनारायणभट्ट चरितामृत" भी है॥

इन ग्रन्थों के आधार पर नारायणभट्ट का जन्म सं० १५८८ की वैशाख शुक्ला १४ (नृसिंहचतुर्दशी) को दक्षिण के मदुरा नगर में हुआ था। वे भृगुवंशी दीक्षित ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम भास्करभट्ट, माता का यशोमती और बड़े भाई का नाम गोपालभट्ट था। नारदावतार होने के कारण वे परम सुन्दर थे। गुणानुरूप ही इनका नाम नारायण रखा गया। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा दक्षिण में हुई। उन्होंने द्वादश वर्ष की आयु में ही विद्याध्ययन कर लिया था। बाल्यावस्था से ही वे श्रीकृष्ण-भक्त और ब्रज—वृन्दावन के अनुरागी थे। "ब्रजदीपिका" नामक ग्रंथ का प्रणयन इन्होंने दक्षिण में अपने पितृगृह में ही किया था। इसके उपरान्त वे श्रीकृष्ण-आदेश से ब्रज में निवास करने और-लुप्त तीर्थों का प्राकट्य करने के लिए घर से चल दिए। ढ़ाई वर्ष तक तीर्थाटन करते हुए सं० १६०२ में ये ब्रज में पहुँचे। इनके साथ भगवान का लाड़िलेय स्वरूप भी था। सर्वप्रथम ये गोवर्द्धन समीपस्थ राधाकुण्ड गए जहाँ श्रीचैतन्य—मतानुयायी श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारी ने इन्हें अपने संप्रदाय में पात्रसात् करके

सम्प्रदाय के गूढ़ रहस्यों को हृदयंगम कराया। नारायणभट्ट में श्रीरंगदेवी की स्थिति होने से इंदुलेखासखी के अवतार ब्रह्मचारी जी और इनमें परस्पर अतिशय सख्यभाव रहता था। श्रीपाद सनातन गोस्वामी भी उस समय राधाकुण्ड में रहते थे। राधाकुण्ड में रह कर भट्ट जी ने ७ ग्रंथों का प्रणयन किया। वहाँ इन्होंने द्वादश वर्ष पर्यन्त निवास किया। अनन्तर वे ऊँचेगाँव चले गए वहाँ पितृआज्ञा से गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हुए। इनके दामोदर नामक पुत्र हुआ जिसे पितामह–भास्कराचार्य ने अपने देश ले जाकर विद्यादि पढ़ाई। पुनः व्रज में आने पर उन्होंने अपने पिताजी नारायणभट्ट से युगलोपासना–मंत्रोपदेश तथा सम्प्रदाय-रहस्यों को अवगत किया॥

श्रीनारायण–भट्ट ने व्रजमण्डल के विलुप्त-तीर्थों का स्थल निर्धारण और प्राकट्य किया। ऊँचेगाँव में रेवती-बलदेव प्रकट कर और बरसाने में लाड़िली लाल जी को प्रतिष्ठित कर उनकी सेवा प्रचलित की। व्रज प्रकाश–कारी भट्ट जी को तत्कालीन वैष्णव–समाज ने उनके कार्यों को लक्षित कर "व्रजाचार्य" पद से अभिषिक्त किया॥

भट्टजी के अनेक शिष्यों से इनके पुत्र दामोदरभट्ट, बलभद्री-भाठोंठिया, नारायणदासजी, मथुरादासजी, नारायणदास-श्रोत्री, दामोदरदास और वैश्यलालदास मुख्य थे। प्रतिदिन राधाकृष्ण कीर्तनादि करने का समस्तशिष्यों को उनका उपदेश था। वे शिष्यों को समर्पण–सेवा और भक्ति का ही महत्व बतलाते थे तथा "समाज" का आयोजन भी करते थे॥

अनन्तर भट्ट जी श्रीकृष्ण की आज्ञा से प्रेरित होकर व्रज के सुन्दर ब्राह्मण--बालकों को राधावेश, कृष्णवेश, गोपी–गोप वेशादि से सज्जित कराकर व्रज–मण्डल में रासादि लीलाओं

का अनुकरण कराने लगे। उनमें रंगदेवी का आवेश था। अतः उनकी प्रेरणा से गोचारण-लीला, कालियदमन-लीला, साँझी-लीला, दानलीला, मानलीला आदि लीलाओं का दिवस-नक्षत्र और स्थल के अनुरूप ही ये लीलानुकरण कराने लगे।

श्रीनारायण-भट्ट जी के द्वारा रचित ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—

१ व्रजदीपिका, २ व्रजभक्तिविलास, (सं० १६०६) ३ व्रज-प्रदीपिका, ४ व्रजोत्सवचन्द्रिका, ५ व्रजमहोदधि, ६ व्रजोत्सवा-ल्हादिनी, ७ बृहत्व्रजगुणोत्सव, ८ व्रजप्रकाश, ६ भक्तभूषण-सन्दर्भ, १० भक्तिविवेक, ११ भक्तिरसतरंगिणी, १२ साधन-दीपिका, १३ रसिकाल्हादिनी टीका १४ प्रेमांकुरनाटक, १५ लाडिलेयाष्टक, १६ धर्मप्रवर्त्तिनी १७ सिद्धान्तचूड़ामणि, १८ नीति-श्लोकानि, १६ व्रजरत्नदीपिका, २० भक्तिरहस्य, २१ राधाविनोद-काव्यस्य टीका ॥

जानकी-प्रसाद-भट्ट कृत "श्रीनारायणभट्टचरितामृत" के अनु-सार भट्ट जी ने ६० ग्रंथों की रचना की थी। [१] प्रथम ग्रंथ दक्षिण में उसके बाद के सात राधाकुण्ड में और शेष ऊँचाग्राम में निर्मित किए ॥

भट्ट जी ने अपने ग्रंथों का प्रणयन प्रामाणिक रूप में किया है। वेद, उपनिषद्, स्मृति, संहिता, तंत्र, पुराणादि शास्त्रों का उन्होंने गम्भीर अनुशीलन किया था और सर्वत्र शास्त्र-संदर्भ देकर अपने विषय का प्रतिपादन किया है। शत-शत शास्त्रों को हृदयंगम कर भक्ति-सिद्धान्त, उपास्यतत्व और उपास्यस्थली का सम्यक् निरूपण कठिन तपस्या है जो नारायणभट्टजी ने सम्पन्न

---

[१] पृ० ३२, श्लोक १६०-१६१ प्रका० बाबाकृष्णदासजी "कुसुम सरोवरवाले"।

की है। गौड़ीय-आचार्यों के समान विशाल ग्रंथ-सृष्टि और महत् कार्यों का सम्पादन आधुनिक विद्वानों को विस्मय-विबोधक हो सकता है। किन्तु गुरुप्रसाद और युगल कृपा से वह सब कुछ भट्ट जी ने साकार किया।

श्रीनारायण-भट्टजी कृत प्रमुख ग्रंथ रत्नों का परिचय इस प्रकार है—

(१) व्रजभक्तिविलास-इस विशाल ग्रंथ में तेरह अध्याय हैं जिन में व्रज के समस्त वन, उपवन, तीर्थ-स्थल, कुण्ड, लीलास्थल, देवी-देवता तथा मंत्रों का सविस्तार वर्णन है। ग्रंथारम्भ में व्रज-भक्तिविलास को वास-प्रदक्षिणा-दान-पूजा, वनयात्रा और व्रज-महिमा दिखाने वाले त्रयोदश अध्यायों से युक्त ग्रंथ कहा है। ग्रंथ में पुण्यप्रद व्रज के द्वार-समूह, द्वादश वन, द्वादश उपवन, द्वादश प्रतिवन, द्वादश अधिवन आदि का निरुपण है तथा ग्रंथ परिशेष में लेखक ने इसे श्रीकृष्ण के साक्षात् अंग स्वरूप माना है। [१] राधाकुण्ड में रचित सप्त ग्रथों में से "व्रजोत्सव-चंद्रिका" का रचनाकाल सं १६१२ है॥

अतः अनुमानतः शेष ५ ग्रंथों में से चार "व्रजभक्तिविलास" से पूर्व की रचनाएं होनी चाहिए। "व्रजप्रकाश" का उल्लेख "व्रजभक्तिविलास" में हुआ है जिसमें ४८ वनों के देवताओं की प्रतिष्ठा का सविस्तर वर्णन होना बतलाया है। "व्रजोत्सवाह्लादिनी" का उल्लेख भी इस ग्रंथ में है (पृ० २०७) अतः यह भी पूर्ववर्ती रचना है। इसमें व्रजयात्रा और वनयात्रा का विधान वर्णित है। श्रीनारायणभट्टजी वनयात्रा के आदि प्रवर्तक ठहरते हैं॥

(२) व्रजोत्सवचंद्रिका-इसमें व्रज अभिषेकों के वृहद् रूप से वर्णन है इसमें मौलिक और संचायित ८००० श्लोक हैं। इस ग्रंथ

---

[१] व्रजभक्तिविलास प्र० बाबाकृष्णदासजी कुसुमसरोवर-वाले पृ०२६३, श्लो० सं० २०।

की रचना सं०१६१२ में राधाकुण्ड पर हुई थी। इस ग्रंथ में भी नाना स्थलों पर नारायणभट्ट ने स्वयं को नारदावतार कहा है। उनके चरित्र का सूक्ष्म रूप में उत्थापन इसमें उपलब्ध है। बाबा जी कुसुमसरोवरवालों ने इसे स ं० २०१७ में) प्रकाशित करा दिया है ॥

(३) व्रजोत्सवाह्लादिनी-[१] इसमें तिथियोंवार व्रजोत्सवों का सांगोपांग वर्णन हे तथा स्वप्नों का शुभाशुभ विचार भी है। इसकी हस्तलिखित प्रति बरसाने के नित्यधाम प्राप्त गोस्वामी कुंजी लाल के सुपुत्र श्री युगल शास्त्री के पास सुरक्षित है ॥

[४] वृहत् व्रजगुणोत्सव—यह एक सविशाल ग्रंथ है, जिसमें व्रज के समस्त ग्रामों के लीला-देवता और तीर्थों का विस्तृत वर्णन है। इसमें २६ हजार श्लोक बताए गए हैं। व्रजभक्ति-विलास के सप्तम अध्याय में श्रीनारायणभट्ट ने इसका उल्लेख किया है ॥ [२]

(५) भक्तिविवेक-इसमें तीन प्रकरणों में नाम, धाम और भक्त के श्रेष्ठत्व का निर्णय किया गया है। क्रमशः श्रीकृष्ण की नाम-महिमा, व्रज धाम की महिमा तथा व्रजवासियों की महिमा का वर्णन है। यह ग्रंथ भी बाबाजी द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है ॥

(६) भक्तिरसतरंगिणी—इस ग्रंथ में ५ उल्लास हैं। इसमें साधनभक्ति, प्रेमाभक्ति, रसरूपाभक्ति, भक्तिसोपान, विभाव, अनुभाव, व्यभिचारिभाव, स्थायिभाव तथा भक्तिरसाश्रित द्वादश रसों का सम्यक् उदाहरणों के साथ विचार है। ये रचना रूप गो० कृत "भक्तिरसामृतसिंधु" तथा "उज्ज्वलनीलमणि" पर समाहृत है। जयपुर स्थित श्रीगोविन्ददेवजी के मंदिर से तथा

---

[१] पृ० २५२ व्रजभक्तिविलास।
[२] पृ० १७७ व्रजभक्तिविलास।

बरसाना निवासी गो० प्रियालाल जी के संग्रह से बाबाजी को उक्त ग्रंथ की दो प्रतियाँ मिली थी। उन्हीं के आधार पर इसका मूल सहित हिन्दीअनुवाद उक्त बाबाजी ने प्रकाशित कियाहै। इस ग्रंथ में सम्प्रदाय की विशेष भावना के आधार पर ही परकीयाभावमयी उपासना का सन्निवेश है। श्रीपाद विश्वनाथ चक्रवर्ती ने अपनी उज्ज्वलनीलमणि की टीका में नारायणभट्ट की इस सरस भक्तिरसतरंगिणी से ही प्रमाण दिया है। वस्तुतः सम्प्रदाय की रसरीति हृदयंगम करने के लिए यह ग्रंथ बड़ा उपादेय आश्रय है॥

(७) प्रेमांकुरनाटक—" श्रीनारायणभट्टचरितामृतम् " में इस रचना का उल्लेख है। [१]इसमें श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का नाटकीय रूप प्रस्तुत है। जन्मादिलीला, दानलीला, मानलीला, मगरोकनलीला, परस्पर गालिदानलीला, मटकीफोड़नीलीला, वनविहार–साँझी–पुष्पचयन–हास—परिहास लीला, सखियों द्वारा निकुंज–रचना और निकुंजभेद आदि लीलाएं वर्णित हैं। बरसाने तथा समीपवर्ती स्थलों में श्रीनारायणभट्टद्वारा प्रवतर्ति जो बूढ़ी लीला होती है वह इसी ग्रंथ के आधार पर है। व्रजोत्सवचंद्रिका ग्रंथ में भी बूढ़ीलीला का निर्णय उपलब्ध है। किन्तु अभी तक इस प्रेमांकुरकी कोई प्रति उपलब्ध न हो सकी है॥

(८) रसिकाल्हादिनी टीका—यह भागवत की टीका है। इसकी सम्पूर्ण प्रति अभी अप्राप्य है किन्तु दशमस्कन्ध के प्रारम्भ से रासपंचाध्यायी तक की प्रति मिल चुकी है। यह बड़ी

---

[१] पृ० ८२, श्लो० सं० ३१–४२

विलक्षण तथा रस-भाव पूर्ण रचना है। संकेत में नारायणभट्ट जी वीणा लेकर अपने प्रकटित राधारमण के विग्रह के समक्ष रासपंचाध्यायी गाया करते थे तभी भागवत की टीका की प्रेरणा उन्हें हुई थी। बाबा जी ने इस ग्रंथ का उद्धार कर रास-पंचाध्यायी के मूल मात्र को प्रकाशित करा दिया है ॥

(९) भक्तभूषणसन्दर्भ—जीव, जगत् और ब्रह्म का निरू-पण करने वाला यह एक परम दार्शनिक ग्रंथ है जो तीन प्रक-रणों में विभक्त है। यह भी बाबाजी के द्वारा प्रकाशित हो चुका है ॥

(१०) साधनदीपिका-प्रस्तुत ग्रंथ हरिभक्तिविलास (श्रीगोपाल-भट्टगो० विरचित)का संक्षिप्त प्रतिरूप है। साधनदीपका केकथ्यके विषय में श्रीभट्ट जी बताते हैं कि "मंत्र-शास्त्रों के अनुसार सदा-चार्योंके सदाचार अवरोध से साधनों के भावों को प्रकाशित करने वाला यह ग्रंथ है।" समस्त ग्रंथ सात प्रकाशों (अध्यायों) में विभक्त है। प्रथम प्रकाश में-गुरुशरणागति अनिवार्य बताते हुए गुरु के लक्षण तथा निषेध लक्षण बतलाए हैं। अपने विचारों के पोषण में ख्यात शास्त्रों के उद्धरण दिए हैं। हेतु वादियों के अनुसरण को वर्जित बतलाया है। शिष्य के लक्षणों का सवि-स्तार उल्लेख किया गया है। गुरुशिष्य विषयक भारतीय जी-वन दर्शन को इस रचना में आकलित कर सदाचार की प्रतिष्ठा की है। नारायणभट्ट जी की उदार दृष्टि का इस उल्लास में परि-चय प्राप्त होता है। सभी वर्गों, वर्णों के लोग दीक्षा के अधिकारी कहे गए हैं। भारतीय नव निर्माण में इस उदारचेता की मान्यता उत्साह देने वाली हैं।

इसी उल्लास में लीलानुकरण और भक्ति सहित गायन-नर्तन का विधान उपलब्ध होता है (पृ० ३२)। गुरुकृत्यों और दीक्षा से सम्बन्ध विषयों का विधान वर्णित है ॥

द्वितीयप्रकाश में–गुरु वन्दन–स्मरण, सदाचार, जागरण, शौच-स्नान, तिलक–माल्य धारण और उद्र्ध्वपुण्ड्र का महत्व वर्णित है। समस्त वर्णों के लिए चक्रादिधारण की व्यवस्था दी हुई है ॥

तृतीयप्रकाश में–शालिग्राम स्वरूप विवेचन, पूजा में अधिकार का निर्णय, वैष्णवत्व, शुद्धिववेचन, मूर्तिसेवा के षोडश प्रकार, भागवतमाहात्म्य का विवेचन, कृष्णपूजा, वैष्णव-लक्षण-विवेचन, पंचकालसेवा, प्रपत्ति–विवेचन, वैष्णव–महिमा प्रमाण पुरस्सर चर्चित है ॥

चतुर्थप्रकाश में–पक्षपूजा, मासकृत्यनिर्णय और पंचम प्रकाश में–मासानुकूल पूजाविधान तथा दिवस विशेषों के करणीय-कृत्यों की चर्चा है ॥

षष्ठप्रकाश में–मूर्ति आविर्भाव का प्रकार, मूर्तिप्रतिष्ठा, आचार्य और उसके लक्षण, मण्डपादिनिर्माण, मंदिरनिर्णय, मुद्राविवेचन, पुरश्चरण, भक्ष्यद्रव्य, निषेधवस्तु, आसन, माल्य, जप-संख्या, जप विधान, प्रकार भेद, सिद्धमंत्र और होमद्रव्यों का वर्णन है ॥

सप्तमप्रकाश में–कृष्णसेवा, वैष्णवसेवा, सूतकादि विचार, सेवाविधान, पाषंडि विबेचन, नाम–माहात्म्य, अनन्यता, एकाग्रता भाव–विवेचन, अपराध–विवेचन, कृष्ण नाम रूप और मूर्तियों का विवेचन हैं ॥

एक शतक से अधिक आर्ष ग्रंथों के प्रमाण श्रीभट्टजी ने उठाए हैं यह उनकी मेधावी ज्ञान गरिमा का परिचायक है।

नीचे हम नारायणभट्ट जी के महत्वपूर्ण कार्यों का विवरण देते हैं—(१) मथुरामण्डल में गोप्य तीर्थों का उद्धार। इसकी पुष्टि भक्तमाल और ध्रुवदास जी की भक्तनामावली से होती है·

गोप्य स्थल मथुरा मण्डल, जिते वाराह बखाने।
ते किए नारायण प्रगट, प्रसिद्ध पृथ्वी में जाने ॥

(अयोध्या निवासी रूपकला संस्करण पृ० ५८६ में)

भट्टनारायण अति सरस व्रज मण्डल सो हेत।
ठौर ठौर रचना करी, प्रगट कियौ संकेत ॥ (भक्तनामावली)

(२) व्रज के वन, उपवन, तीर्थ, देवी-देवताओं की महिमा तथा भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति के प्रचारार्थ ५२ ग्रन्थों का प्रणयन ।

(३) रासलीलानुकरण का सर्व प्रथम प्राकट्य, रास-प्रचार तथा रास-मंडलों का निर्माण। इससे व्रज की गान-वाद्य और नृत्यनाट्य कलाओं की उन्नति हुई।

(४) वनयात्रा तथा व्रजयात्रा का प्रारम्भ। व्रजभक्ति-विलास तथा वृहद्व्रजगुणोत्सव ग्रंथ इसके प्रमाण स्वरूप हैं ।

(५) रेवती-रमण बलदेव और लाडिली स्वरूप की प्रतिष्ठा।

(६) समाज का आयोजन।

बाबाजी महाराज ने शताधिक ग्रंथों का प्राकट्य कर उन्हें प्रकाशित करवाया और नारायणभट्टजी के कृतित्व को विद्वद् समाज के समक्ष उपस्थित किया । नारायणभट्टजी के विषय में प्रामाणिक रूप से किसी को ज्ञात ही नहीं था बाबाजी ने अथक परिश्रम करके उनके जीवनवृत्त का अनुसंधान देने वाले ग्रंथों को उपलब्ध किया और उनके कृतित्व को अज्ञात-स्थलों से खोज निकाला। कई ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद भी किया और कुछ समय और अर्थ के अभाव में मूलमात्र प्रकाशित कर दिए ताकि यह ग्रंथ सम्पत्ति विनष्ट न हो। नारायणभट्ट के अप्राप्य ग्रंथों को समग्रतः उन्होंने ही प्रकाशित किया। इधर साधनदीपिका ग्रंथ भी उनकी निरन्तर खोज का ही परिणाम है। इस ग्रंथ को प्रकाशित कर उन्होंने वैष्णव समाज की अविस्मरणीय सेवा की है। रागमार्ग की साधना को सम्यक् रूप से अधिगम्य कराने के लिए विधि का विधान भी ग्राह्य होता है। साधनदीपिका इस अभाव की पूर्त्ति करती है। वह वस्तुतः रागानुगाभक्ति को उप-

लब्ध कराने की साधनदीपिका ही है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि नारायणभट्ट ने जिस प्रकार व्रज के लुप्त तीर्थों, वनों, उप-वनों, देवी-देवताओं के मर्म को समझाया उसी प्रकार चैतन्य-सम्प्रदाय के दुर्द्धर रसशीर्ष कवि उन नारायणभट्ट के विलुप्त ग्रन्थों का उद्धार कर सत्यानुसंधान का मार्ग प्रशस्त किया है। विद्वानों को यह विचार करने का प्रामाणिक अवसर मिला है कि वनयात्रा तथा व्रजयात्रा के प्रादुर्भाव के साथ रासलीलानु-करण का श्रेय भी नारायणभट्ट को ही दिया जा सकता है। समस्त ऐतिह्य तथा निष्पक्ष-तर्कना से यही सुसिद्ध होता है कि चैतन्य-सम्प्रदाय के आनुगत्य में सम्प्रदाय की भावना और सैद्धा-न्तिक निष्ठा के अनुरूप श्रीनारायणभट्ट द्वारा सर्व प्रथम उक्त कार्य सम्पन्न हुए।

मूल ग्रंथ को लिपिबद्ध करने में बाबाजी महाराज ने देहा-तीत परिश्रम किया है। उनकी क्षीण-काया में कार्यशक्ति का अक्षय स्रोत है कि बहुत-सी संस्थाएं भी उनके ग्रंथ प्रकाशन योगदान को देखकर लज्जित हो रहेंगी। फिर बंगाली होकर सं-स्कृत निष्ठ शब्दावली में ग्रंथ के मर्म को आहत किए बिना ऐसा अनुवाद हिन्दीजगत् को भारी प्रेरणा है। उस साधनदीपिका में कहीं कहीं व के स्थान पर ब का प्रयोग बाबाजी महाराज की बोली का प्रभाव ही सूचित करता है जो उनकी देन के आगे नगण्य ही है। वस्तुतः स्वभाव गुण ही होता है और फिर व्रजभाषा में ब और व का भेद भी नहीं है। आशा है वैष्णव समाज तथा विद्वत् समाज इस ग्रंथ का अनुशीलन करेगा।

नरेश वंसल—

हिन्दी विभागाध्यक्ष, श्रीगणेशडिग्री कोलेज

(कासगंज)

—श्रीलाडिलेयाष्टकम्—

श्रीमद्व्रजेशतनयं धृतमानवाङ्गं
सर्वाङ्गसुन्दरवरं कटिपीतवस्त्रम् ।
ब्रह्मादिदेवमुनिवन्द्यपदारविन्दं
श्रीलाडिलेयललितं सततं भजामि ॥१॥

तिर्य्यग् किरीटमुकुटं बनमालया वै
संशोभमानवपुषं हसितेक्षणाढ्यम् ।
देदीप्यमानमकराकृतिकुण्डलञ्च
श्रीलाडिलेयललितं सततं भजामि ॥२॥

आनम्रजानुयुगलं व्रजभूमिकाया—
मुत्थाय दक्षिणकरं ससरीसृपन्तम् ।
पादारविन्दयुगले धृतनूपुरञ्च
श्रीलाडिलेयललितं सततं भजामि ॥३॥

कौमारदर्शितसुखं वपुषा स्वपित्रो-
र्बालैश्च क्रीडनपरं समुदारयन्तम् ।
मुग्धास्मितं निजभुजे धृतमोदकञ्च
श्रीलाडिलेयललितं सततं भजामि ॥४॥

श्रीमद्बलानुजमतीव-प्रियस्वरूपं
सौख्यप्रदं निजजनानतिमायन्तम् ।
श्यामाङ्गमद्भुततरं सुमुखं सुनेत्रं
श्रीलाडिलेयललितं सततं भजामि ॥५॥

सुभ्रूनसं सुभुजदण्डपरागदामं
सौष्ठवरूपमसितेक्षणचारुहासम् ।

काञ्च्या पराङ्गधृतहारमनोहरन्तं
श्रीलाडिलेयललितं सततं भजामि ॥६॥

गोवत्सखेलनपरं गलमौक्तिहारं
बंशीधरं सुघटनृत्यकरं वरञ्च ।
गोपीगृहेषु नितरां नवनीतचौरं
श्रीलाडिलेयललितं सततं भजामि ॥७॥

ध्यानास्पदं जगति पूर्णतमावतारं
सन्तं परं निखिलजीवनिकायकेतुम् ।
लीलाकदम्बमतिलङ्घितशत्रुवर्गं
श्रीलाडिलेयललितं सततं भजामि ॥८॥

श्लोकाष्टकं हि सुमुखं समुदा स्वचित्ते
सन्धाय नित्यममलं हरिभक्तिदञ्च ।
देवालये पठति तस्य हरिः स्वयं च
मोक्षप्रदो भवति नूनमदभ्रबुद्धेः ॥९॥

इति श्रीनारायणभट्टगोस्वामिविरचितं
श्रीलाडिलेयाष्टकं समाप्तम् ॥

❀ ब्रजोद्धारसमये श्रीनारायणभट्टं प्रति सहायकस्य, तं प्रति रासलीलानुकरणप्रेरयितुः श्रीलाडिलेयस्वरूपस्याष्टकमिदं श्रीनारायणभट्टेन विरचितम् । स लाडिलेयः श्रीनारायणभट्टस्य सेवितविग्रहः, यः अद्यावधि नीमरानेति नगर्यां (अलवरराज्ये) आसीत् । अधुना पुनः ब्रजवासिन आनन्दयितुं उच्चग्रामे बलदेवस्य मन्दिरे आगत्य विराजतेस्म । वर्षाणस्थगोस्वामिप्रियालालमहोदयसकाशात् इदमष्टकं प्राप्तम यत् "नीमराना" नगर्यां लाडिलेयस्य मन्दिरे आसीत् ।

ग्रन्थ संख्या १८६

श्रीराधिकास्तोत्रम्

श्रीपादप्रबोधानन्दसरस्वती विरचितम्

(सानुवादम्)

प्रकाशक :-

कृष्णदास बाबा

कुसुमसरोवर, राधाकुण्ड [मथुरा]

प्रथमबार	न्यौछावर	संवत-
५००	२५ न०पैसे	२०२१

मुद्रक- गौरहरिप्रेस, कुसुमसरोवर, राधाकुण्ड (मथुरा)

।। श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ।।

प्रकाशितग्रन्थसंख्या – १४४

साधककण्ठभूषण

प्रथमभाग

[वैष्णववन्दना व परिचय]

प्रकाशक :—

बाबाकृष्णदास

// कुसुमसरोवरवाले //

संवत २०२५ न्योछावर –५० न.पै.

जय जय जय जग-मङ्गलकारी

जन मनमोहन गौर कृष्ण विधु नदिया पूर वर वरज बिहारि ॥ध्रु०
नित्यानन्दचन्द्र हलधर हर कलिकलुष विषम अन्धियारि ।
श्रीअद्वैत परमकरुणा निधि दारुण भव दब दहने उधारि ॥
सुखद गदाधर धरनि बिदीत सिरिबासहि प्रेमभकति अधिकारि ।
गरुड गदाधर नरहरि हरिदास स्वरूप प्रिय गुपत - मुरारि ॥
सार्वभौम सिरि - वासुदेब बिद्यानिधि पुण्डरीक सुखकारी ।
सिरि जगदीश बिजय बक्रेश्बर दामोदर बर बिपद बिदारि ॥
रामानन्द मुकुन्द सुन्दरानन्द नयनानन्द प्रचारि ।
श्रीनिधि प्रवोधानन्द गौररसे गरगर हृदय न रहत सम्भारि ॥
रामानन्दराय रससागर परमानन्द गूपत धृति धारि ।
राघब रघुपति राम महिबर करन प्रेमधन मुदित विकारि ॥
काशीश्बर परमेश्बर नारयण सुदर्शन नयन फल चारि ।
रूप सनातन रघुनाथ श्रीजीब भक्ति - वर रतन उघारि ॥
श्रीगोपालभट्ट रघुनाथ ही लोकनाथ चैतन्य – मुरारि ।
बासुघोष माधब गोबिन्द रूप्रेम जलधि मधि सतत साँतारि ॥
श्रीधर परमानन्द पुरन्दर पहु गुणे निरत नयने झरु वारि ।
सिरि उद्धारण धनञ्जय सञ्जय गौरिदास यश बिसद बिथरारि ॥
संकर रघुनन्दन महेष अभिराम शमन-भय भञ्जन कारि ॥
श्रीयदु मधु - पण्डित शुक्लाम्बर वृन्दाबन वरषत रस भारि ॥
जगदानन्द मुकुन्द गानरत पहु रस वस निशि दिबस बिसारि ।
कर्णपूर कविलोचन जनलोचन गुणगण गायत नर नारि ॥
सिरि श्रीनिबास नरोत्तम श्यामानन्द सगण गनइ ना पारि ।
नरहरि भण मन आस पुरह निज दास करह अति दुखित नेहारि ॥

—गोरकृष्णभाबनामृते

❀—❀—❀

सूचना

यह साधककण्ठभूषण विशालरूपसे प्रस्तुत-करके साधकों
के समक्षमें उपस्थित करने का विचार है । इसमें प्रचुर धन-
राशि की आवश्यकता है । कुछ दिनसे स्वास्थ्य खराब होनेसे
तथा अनेक प्रकार की अशान्तिके कारण यह कार्य तथा प्राचीन
गोस्वामी साहित्यप्रकाशन कार्यमें काफी बाधा आई है ।
आगे प्रभु की जैसी इच्छा होगी वैसा होगा ।

बाबाकृष्णदास

अन्तिम चार पृष्ठ व मुखपृष्ठ गौरहरि प्रेस बृन्दावन में छपा,
शेष कुसुमसरोवरमें छपा ।

१८

प्रकाशित ग्रन्थ संख्या—१४६

✱ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ✱

श्रीशचीनन्दनविलक्षणाचतुर्दशकम्

★ ★

★

अनुवादक एवं प्रकाशक

कृष्णदास

(कुसुमसरोवरवाले)

१९६९

न्यौछावर—२५ पैसे

समर्पणपत्र—

संस्कृत तथा वंगभाषा में अप्रकाशित एवं प्रकाशित शतावधि प्राचीन ग्रन्थ के वंगाक्षर में उद्धारक, नित्यधाम-प्राप्त, नवद्वीप-हरिवोल-कुटी-निवासी, श्री हरिदासदास जी महोदय के पुनीत-स्मरण में समर्पित ।

कृष्णदासबाबा
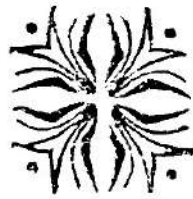
इति कृष्णदास के द्वारा श्रीसदाशिव-कविराज
विरचित श्रीशचीनन्दन-विलक्षण-चतुर्दश
नामक स्तोत्र का भाषानुवाद
समाप्त हुआ।
समय-चैत्र कृष्णा-सप्तमी, सम्बत् २०२५
मंगलवार, दिनाङ्क ११ मार्च, १९६९

स्वदयितनिजभावं यो विभाव्य स्वभावात्
सुमधुरमवतीर्णो भक्तरूपेण लोभात्।
जयति कनकधामा कृष्णचैतन्यनामा
हरिरिह यतिवेशः श्रीशचीसूनुरेषः॥
(बृहद्भागवतामृते)
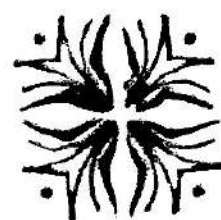
* श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् *

* सन्देशम् *

परम करुणामय भगवत् श्रीकृष्णचैतन्य-महाप्रभु को असीम अनुकम्पा से तदीय गुणवर्णनात्मक "शचीनन्दन-विलक्षण-चतुर्दशक" नामक स्तोत्र प्रकाशित हुआ। इस विलक्षण स्तोत्र-रत्न के रचयिता श्रीसदाशिव-कविराज हैं। आप महाप्रभु के पार्षद श्रीकंसारि-सेन का पुत्र एवं श्रीनित्यानन्द-प्रभु की शाखान्तर्गत परम वैष्णव हैं। इनके पुत्र श्रीपुरुषोत्तमदास तथा पौत्र कानुठाकुर है। "श्रीचैतन्यचरितामृत" ग्रन्थ में "सदाशिव कविराज वन्दों एक मने। सकल वैष्णाव वश याँर प्रेम गुणें॥" इस प्रकार उल्लिखित है। महामहोपाध्याय भरतमल्लिक कृत चन्द्रप्रभा ग्रन्थ में भी सपरिकर आप का नाम उल्लिखित है। वह इस प्रकार है— "सम्बरारेः सुतो जातः कविराजः सदाशिवः। सदाशिवस्य पुत्रौ द्वावग्रजः पुरुषोत्तमः। पुरुषोत्तमसेनो यो विष्णुपारिषदोपमः। सट्ठकुर इति ख्यातो विश्वविश्रुतसद्यशः। तत्तुल्यस्तस्य पुत्रोऽभूत् कान्हुठ्ठकुरसंज्ञकः। वैष्णवो जगति ख्यातः तत्सम्बन्धपरायणः" ॥ इत्यादि। गौरगणोद्देशदीपिका-ग्रन्थ में— "पुरा चन्द्रावली यासीद् व्रजे कृष्णप्रिया परा। अधुना गौड़देशे सा कविराज-सदाशिवः॥" इत्यादि रूप से आपकी सूचना है। आपकी यह रचना गौरप्रेमी साहित्य रसिकों के लिये परम आदरणीय वस्तु है॥ इति—

आपके पुत्र पुरुषोत्ताम-कविराज के शिष्य देवकीनन्दनजी ने संस्कृत तथा वंगलापयार में पृथक् रूपसे वैष्णावाभिध नामक वैष्णववन्दना की रचना की है। जिसका पठन-पाठन गौड़ीय-वैष्णव नित्य-प्रति करते हैं॥

श्री हरिदासशास्त्री
न्याय-वैशेषिक-शास्त्री, प्राचीन-नव्यन्यायाचार्य,
काव्य-व्याकरण-सांख्य-मीमांसा-वेदान्त-
तर्क-तर्क-तर्क-वैष्णवदर्शनतीर्थ,
विद्यारत्न। कालोदह (वृन्दाबन)

मुद्रक—ब्रज बिहारी लाल शर्मा, बी. एस-सी, एल-एल. बी.
विद्यालय प्रेस, वृन्दाबन।

॥ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ॥

गौड़ीयग्रन्थगौरव:—

प्रकाशितग्रंथसंख्या—११०

(सामान्य)

बिरुदावलीलक्षणम्

श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितम्

सम्वत्—२०२०

मूल्यम्— १५० नये पैसे

प्रकाशक: व मुद्रक:—
कृष्णदासबाबा

गौरहरिप्रेस, कुसुमसरोवर

❀ श्रीश्रीराधामाधवो जयति ❀

❀ श्रीश्रीशुकदूतमहाकाव्यम् ❀

श्रीश्रीगीतगोविन्दकाव्यकर्त्तृ-कविमुकुटमणि-
रसिकाचार्य्यश्रीश्रीजयदेवगोस्वामिवंशोद्भवेन,
श्रीश्रीमहाप्रभुगौरांगदेववीथिपथिकेन, श्री-
नित्यानन्दप्रभुशिष्यश्रीरामरायगोस्वामि-
कृपालब्धकाव्यशक्तिकेन, भागवतचन्द्रे-
त्युपाधिना परिभूषितेन महाकविना
श्रीनन्दकिशोरगोस्वामिना
विरचितम् ।

अर्थ सहायक—
भक्तिमती श्रीसरस्वतीदेवीजी रानीसाहिबा (मुंगेर)

♣

झूलनतृतीया
सम्वत् २०१७

प्रकाशक—
कृष्णदासबाबा,
कुसुमसरोवर निवासी (मथुरा)

समर्पण पत्रम्

★

परमभक्त प्रवर, श्रीश्रीगौराङ्ग महाप्रभु-चरणैकनिष्ठ, नित्यधामप्राप्त, राजा श्री-रघुनन्दनदेव, मुंगेर के पुनीत स्मरणार्थ यह 'शुकदूतमहाकाव्य' प्रस्तुत होकर समर्पित है ।

'मुरारी बरसानियाँ'

❀ श्रीश्रीराधामाधवो जयति ❀

* श्रीश्रीशुकदूतमहाकाव्यम् *

* श्रीश्रीगीतगोविन्दकाव्यकर्त्ता श्रीश्रीजयदेवगोस्वामि- *
* प्रभुवंशोद्भवेन, श्रीश्रीनित्यानन्दप्रभुशिष्यप्रवर- *
* श्रीरामरायगोस्वामिकृपाशक्तिलब्ध-काव्यश *
* क्तिकेन, भागवतचन्द्रेत्युपाधिना- परिभू *
* षितेन महाकविना- श्रीनन्दकिशोर *
❀ चन्द्रजीगोस्वामि महोदयेन ❀
❀ विरचितमिदं ❀

झूलनतृतीया
सम्वत् २०१७

प्रकाशक—
कृष्णदास
[कुसुमसरोवरवाले]

प्राक्कथनम्

माध्वगौडेश्वरसम्प्रदाये हंसदूतोद्धवसन्देशपदाङ्कदूतशुक-दूताख्यानि चत्वारि काव्यानि सन्ति। हंसदूतं उद्धवसन्देशश्च श्रीरूपगोस्वामिभिः निर्मितं, पदाङ्कदूतं श्रीकृष्णदेवसार्वभौम-विरचितं च वर्तन्ते। शुकदूताख्यं महाकाव्यं तु श्रीजयदेवपरम्परायां प्रादुर्भूतैः नित्यानन्दप्रभोः शिष्यप्रवरैः परमश्रद्धेयश्रीरामशरण-गोस्वामिवंशगतश्रीनन्दकिशोरगोस्वामिभिः कृतं वर्तते।

ग्रन्थेऽस्मिन् श्रीकृष्णस्य व्रजजनविरहशान्त्यर्थं द्वारिकातः शुकं दूतरूपेण प्रेषणं कालिदासनिर्मितं मेघदूतकाव्यं एव-बत्वर्तते। शुकः व्रजजनान् शान्तिं दत्वा पुनः द्वारिकां प्रति अगमत् तथा श्रीकृष्णाय व्रजवासिदशावर्णनं च कृतवान्। एतत् श्रुत्वा श्री कृष्णः व्रजं प्रति आजगाम अस्य वर्णनं पद्म-पुराणे वर्तते, श्रीरूपगोस्वामिभिः स्वग्रन्थलघुभागवतामृताख्ये इदम् एव सिद्धान्तं कृतं। श्रीजीवगोस्वामिना 'गोपालचम्पू' ग्रन्थस्य उत्तरभागे श्रीकृष्णस्य व्रजागमनं, नवमासद्वयपर्यन्तनिवास-राधिकया सह विवाहसंस्करणं च वर्णितं अस्ति। अस्यैव प्रभावस्य रूपेण व्रजभाषाकवि यथा चाचा वृन्दावनदास महोदयै 'लाड़-सागर' ग्रन्थे जीवगोस्वामिनः 'गोपालचम्पू' एव आश्रयत्वेन गृहीत्वा अस्य सरस वर्णनं कृतं। व्रजप्रदेशे राधिकया सह श्री-कृष्णस्य पाणिग्रहणं अत्रैव सिद्ध्यति किन्तु व्रजलीलायां न कस्मिन्नपि आर्षग्रन्थे अस्य प्रमाणं लभते। यदा कृष्णयज्ञोपवीत द्वारिकायां अभूत् तदन्तर एव विवाहक्रिया सम्भवता।

अतः द्वारिकातः व्रजागमनं तत्रैव कृष्णविवाहसंस्कारं व्रज-जनान् नित्यधामवृन्दावने (अप्रकटगोलोकधाम्नि) प्रेषयित्वा पुनः द्वारिकां प्रति आगमनं च कृतं। कथितञ्च ग्रन्थकारैः परिशिष्टे-

पाद्मे यद्यपि वर्णितं मधुरिपोर्गोष्ठंप्रयाणं पुनः
श्रीमद् भागवते च पेशलतया संकेतितं तत्स्थले।
व्याख्यातं च तदैव तत्र रसिकैः श्रीरामरायाभिधैः
काव्येऽस्मिन कथितं मया तु विपुलं तत्तत्‌ कृपातः पुनः॥

निवेदकः— केशव देव शर्मा एम० ए०, शास्त्री (मथुरा)

★ भूमिका ★

श्री मन्माध्वमतमार्तण्ड, गौरचरणानुरागी श्री नन्दकिशोर चन्द्र गोस्वामी का प्रादुर्भाव मार्ग शीर्ष शुक्ला पञ्चमी को श्रीधाम बृन्दावन में हुआ था। आपके पिता का नाम गोस्वामी चुन्नीलाल जी एवं माता का नाम सौ० देवकी जी था। आप गीतगोविन्दकर्त्ता जयदेव कवि से २४ वीं पीढ़ी एवं आदिवाणी कार रामराय प्रभु से ११ वीं पीढ़ी में अवतरित हुए। प्रस्तुत शुकदूत महाकाव्य के मंगला चरण में आपने लिखा है—

स जयति जयदेवो यस्य गोविन्द गीतं।
मधुरसरसगीतं येन केनाप्यधीतं॥
अनुभवनवनीतं सर्वदा तेन नीतं।
न भवति विपरीतं राधिकामाधवीतम्॥

उन श्री जयदेव महाप्रभु की सर्वदा जय हो जिन्होंने मधुर एवं सरस पदावली से युक्त गीत गोविन्द काव्य की रचना की। यथार्थ में जिस किसी ने उस रमणीय काव्य का अध्ययन किया है उसने अनुभव-रूप नवनीत का स्वाद पाया है अधिक क्या कहें–श्री राधामाधव जी उससे क्षणभर भी अन्यथा नहीं होते।

इन्हीं जगत विदित जयदेव कवि की वंश परम्परा में श्री गौरचरणानुगत श्री रामराय गोस्वामी जी का जन्म हुआ था। इन्होंने ब्रह्मसूत्र पर 'गौरविनोदिनी' वृत्ति लिखी जो प्रकाशित हो चुकी है। श्री राधा माधव जी की अनन्य भावना एवं सेवा विधान को स्पष्ट करने के लिए ही आपने 'श्री श्री आदिवाणी जी' की रचना की थी। एकाध लेखक ने इन्हें वल्लभ सम्प्रदाय

में घसीटने का प्रयत्न किया हैं जो सर्वदा निराधार है। प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता कवि ने उनके सम्बन्ध में इस प्रकार श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है।

प्रियतमगुणगानं गौरगीतप्रधानं।
विरचित हरिमानं स्वादिवाणीविधानम्।
अभिनवरसपानं साधुसंसेव्यमानं।
प्रणमत कुलजास्तं रामरायाभिधानम्॥

स्वयं श्री रामराय जी भी अपने दीक्षा गुरु का परिचय देते हुए आदिवाणी में लिखते हैं—

आजु मोहि नित्यानन्द मिले।
हृदय सरोवर तरल तरंगित रवि सौ पंकज खिले॥
श्री गौर गोपाल तात तत्व नीकौ सुनत भ्रम मयविले।
श्री रामराय प्रभु के द्वादश शिष्य हूँ गुरु संग चलत प्रेम किले॥

श्री नाथ जी के अधिकारी अष्टछापवर्ती कवि कृष्णदास ने भी लिखा है।

परम रसिक जन मंगल छाये।
नित्यानन्द महाप्रभु पद रज शिष्य प्रसिद्ध जगत हितु आये॥

श्री जीव गोस्वामी ने तोषिणी में रामराय जी की वन्दना करते हुए लिखते हैं।

वन्दे श्री परमानन्दँमहाचार्यंरसालयम्।
रामरायं तथा वाणी विलासञ्चोपदेशकम्—

उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट विदित है कि प्रस्तुत ग्रन्थ कर्ता के पूर्वजों में श्री जयदेव और श्री रामराय जी थे।

बत्तीस वर्ष की अल्पायु में ही आपने इस नश्वर देह का परित्याग कर दिया था। जीवन के इस अल्प काल में न केवल संस्कृत ग्रन्थों का प्रणयन किया अपितु हिन्दी भाषा में भी

स्फुट पद एवं बारह खड़ी आदि की रचना की। संस्कृत और हिन्दी के ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है।

१. शुकदूत महाकाव्य २. गौर प्रेमोल्लास ३. श्रीगोविन्द-गुणार्णव नाटक ४. राधा विहार चम्पू ५. श्री मद् भागवत् दर्पण ६. रासपञ्चाध्यायी (शिखरिणी छन्दों में) ७. यमुनाष्टक ८. राधा रमणाष्टक ९. गोविन्दाष्टक १०. संस्कृत द्वादश मास प्रवन्ध ११. हिन्दीमें भागवत पर वाल बोधनी टीका (ब्रज भाषा में)१२. बारह खड़ी महिमा १३. स्फुट पद रचना।

इन सम्पूर्ण ग्रन्थ रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस इस प्रकार है:— श्री गौर प्रेमोल्लास काव्य में लगभग १०० श्लोक हैं जिनमें श्री गौराङ्ग महाप्रभु की महिमा का चमत्कार पूर्ण ढंग से वर्णन किया गया है। गोविन्द गुणार्णव नाटक जिसमें इन्द्र के मान भंग की कथा का वर्णन है। राधा विहार चम्पू में श्री राधिका जी के साथ भगवान कृष्ण नित्य विहार करते हैं। श्रीमद् भागवत दर्पण में आपने भागवत के दुरूह एवं कठिन प्रसंगों पर श्लोकमय विवेचन किया है। रास पंचाध्यायी के ललित प्रसंगों को लेकर शिखरिणी छन्द में यह रचना सरस एवं अनोखी है। यमुनाष्टक, राधा रमणाष्टक, गोविन्दाष्टक इन तीनों अष्टकों की भाषा शैली अत्यन्त कर्ण प्रिय एवं भावा-नुकूल है। ठीक उसी प्रकार से संस्कृत द्वादश मास में बारहों महीनों का वर्णन अत्यन्त हृदयग्राही है।

आपने श्री मद् भागवत की व्रजभाषा में अद्वितीय टीका-की जिसके अनेक स्थल अभी तक 'वत बनई' के नाम से प्रसिद्ध है। इस टीकां को बनाकर आपने कहा था कि जो कोई अपढ़ ब्रजवासी बालक इसको याद कर लेगा उसकी कथा–वार्ता तो सहज में हो जाया करेगी।

❀ शुकदूत ❀

आपकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। संस्कृत के दूत काव्यों की शृंखला में श्री कालिदास कृत मेघदूत सर्व प्रथम रचना है। लोकप्रियता ने ही अनेक परवर्ती कवियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। परिणामतः हंस, चातक, कोकिल आदि को दूत बनाकर अनेक काव्यों का प्रणयन हुआ। यदि इस काव्य शृंखला का विवेचन किया जाय तो यह सिद्धान्त प्रतिपादित होगा कि एक ओर इन काव्यों में वियोग शृंगार का उत्कृष्ट वर्णन हुआ है तथा दूसरी ओर वियोग वर्णन के साथ अथवा स्वतंत्र रूप से भक्ति, ज्ञान एवं विवेक का तत्वमय विवेचन किया गया है। इस प्रकार की इन दो धाराओं का शुकदूत महाकाव्य में समन्वय है। भक्ति मार्ग के अनुसार भाव, कुभाव, आलस्य में होते हुए भी श्री कृष्ण गुणानुवाद गाने से ही इस जीव का उद्धार हो सकता है। नाम, रूप, लीला, धाम भगवान की भक्ति के आधार भूत मार्ग हैं।

कथानक

काव्य की प्रस्तावना में कवि ने स्वयं लिखा है कि श्री मद्भागवत में श्री ब्रजेन्द्रनन्दन की लीला का तीन प्रकार से निरूपण है गोकुल, मथुरा और द्वारिका उन तीनों लीलाओं को रसिक जीवों के सुख के लिए इस काव्य में एक स्वरूप से निरूपण करता हूँ? इससे यह प्रकट है कि कवि का मुख्य आधार श्री मद्भागवत ही है और यह स्वाभाविक भी है क्योंकि आप भागवत् के अद्वितीय वक्ता थे।

धीरललित नायक श्रीकृष्णचन्द्र द्वारिका पुरी में विराजमान हैं। आपके यहाँ किसी वैभव की कभी कमी नहीं परन्तु श्री राधिका का स्मरण उनके हृदय को विगलित

देता है परिणामतः शरीर की सम्पूर्ण इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। विरह की इस चरमावस्था से चैतन्य होने पर अपने महल के स्वर्ण-पिञ्जरस्थित शुक को दूत बनाकर श्री राधिका के पास भेजा। पुनः शुक सन्देश प्राप्तकर भगवान् कृष्ण व्रज में पहुंचे। और वियोग पीड़ित समस्त व्रजवासियों को आनन्दित किया।

संपूर्ण कथानक ११ सर्ग में बिभक्त है। दूत काव्यों की शृङ्खला में यह प्रथम महाकाव्य है जिसमें महाकाव्य के समस्त लक्षणों का निर्बाह किया गया है। श्लोक संख्या लगभग १००० है। इसके पारायण से यह अनुभव होता है कि १६ बीं शताब्दी में सरस लक्षणों से युक्त ऐसी अन्य कोई रचना नहीं है।

शब्दों के औचित्य पूर्ण प्रयोग एवं हृदय की सच्ची अनुभूति से उसका जो सामञ्जस्य हुआ है वह वर वस गीत गोविन्द की भावमय कोमलकलितपदावली का स्मरण करा देता है।

विकचमुकलवाले सालवाले रसाले
कलयति कलमुञ्चैः कोकिलानां कलापः ॥

उत्तर भाग को पढ़ने से वर्णनातीत आनन्द की प्राप्ति होती है। माधुर्य का निवेश, प्रसाद गुण की स्निग्धता, पदोंकी कोमल शय्या, अर्थ गाम्भीर्य, अलङ्कारों का मञ्जुल सामञ्जस्य सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। उपमा, यमक, अनुप्रास आदि अलङ्कारों का भव्य प्रयोग चार चांद लगा देता है।

यत्र तत्र सूक्तियों का प्रयोग भी द्रष्टव्य है। "ना नन्दयति गतरत्नवित्तं नरं पथि प्राप्य वराटिकेव"।

आपने इस काब्य में सन्देश वाहक शुक को बनाया गया है। आपके जीवन की घटनाओं से इसका सामञ्जस्य है। श्री शुकदेव मुनि ने आपश्री को दर्शन दिये थे। बाल्यावस्था में आप

अत्यन्त चंचल थे। श्री मदनमोहन जी के मन्दिरमें बंगाल के श्री मुखर्जी महाशयके समीपसे इन्हें विद्याध्ययनके लिए भेजा। परन्तु वे स्वयं भी नहीं पढ़ते थे और दूसरों के पढ़ने में बाधा करते थे। पं० जी ने यह बात इनके पिता को बताई जिससे इनके पिता को बड़ा क्रोध आया और इन्हें भर्त्सना दी। कोमल हृदय भावुक होने के कारण रोते हुए कालिय-हृद पर पहुंच गये। वहां साक्षात् शुकदेव जी ने सङ्कर्षणदास महात्मा के रूप में दर्शन दिये। उनका हाथ पकड़कर इनके पिता के पास लाकर कहा आपने इन्हें क्यों दुखी किया है? इनके पिताने कहा—"महाराज! जयदेव वंश में ऐसा कोई नहीं हुआ" महात्मा जी ने कहा यह सत्य है"तुम्हारे वंशमें ऐसा कोई नहीं हुआ!" यह कहकर आपके माथे पर मालाझोली रखकर आप अन्तर्ध्यान हो गये। उस दिन से आपने अखिल शास्त्रोंको कण्ठस्थ सुनाना प्रारम्भ कर दिया। पुनः श्री शुकदेवजी ने स्वप्न में आज्ञा दी कि मेरा स्वरूप-विग्रह कालीय हृदमें है। आप बालक थे। अतः अपने पितृव्य श्रीतुलसी दास जी (सन्त) से कहकर निकलवाया जो अद्यावधि विद्यमान है। उन्हीं की कृपा से श्री मद्भागवत के अद्वितीय वक्ता हुए। तत्कालीन राधारमण गोस्वामी श्रीसखालाल जी श्रीगोपीलाल जी आदि विद्वानों का यहाँ तक कथन है कि श्री नन्दकिशोर से पूर्व कथा कहने की क्या शैली थी? कोइ नहीं कह सकता। उपरोक्त सम्पूर्ण विचारोंका आधारभूत प्रमाण राधा रमणचरणैकशरणविद्यावारिधी श्री राधाचरण गोस्वामी द्वारा लिखित छप्पय से भी मिलता है।

श्री कालिय हृद निकट व्यास सुत दर्शन दीयो।
भाव अर्थ गंभीर प्रेम परि पूरण कीयो॥
करि प्रबन्ध कल्पना कथा की :प्रथा चलाई।

वशीकरण सम किया चित्र श्रोता समुदाई ॥
भयौ न कोई होयगौ वक्ता त्रिभुवन रंध्रमा ।
श्रीनन्दकिशोर पूरणकला भये भागवत चंद्रमा ॥

इन्हीं भागवत चन्द्रमा श्री नन्दकिशोर जी को काशी के समस्त विद्वानों ने उनके पांडित्य,शरीर सौष्ठव, बोलने की मधुरता, वस्त्रों के धारण की प्रणाली और वैभव को देखकर यह श्लोक भेंट किया:—

विद्यया वपुषा वाचा वस्त्रेण विभवेन च ।
वकारैः पञ्चभिर्ब्रह्मन शोभते भगवान् भवान् ॥

आप स्वाभिमानी विद्वान थे। कालीय-हृद के ऊपर आपकी कथा को सुनकर दतिया नरेश श्रीविजयबहादुर सिंह ने अपने महल में कथा कराई जिसमें राजासाहबने सवालाख रुपया भेट किया और कहा "कहिये महाराज मेरे जैसा श्रोता आपको कहीं मिला" आपको यह बात सहन न हुई और पास में खड़े हुए अपने कुल पुरोहित को सम्पूर्ण धन का संकल्प कर दिया। तथा राजा को उत्तर दिया–"हमारे जैसा वक्ता भी देखा ? आपके जीवन के अनेक प्रसंग विख्यात है स्थानाभाव के कारण संकेत मात्र कर दिया है।

अपने वंश की परम्परा को सुस्थिर रखने के लिए श्री बृन्दावन धाम में अपने पूर्वजों से सेवित श्रीराधामाधवजी के मन्दिर का निर्माण कर आचार्य कुल रीति से सेवा स्थापन की। उन्तीस वर्ष की आयु में आपके जीवन में ऐसी घटना घटी जिससे आपको चरम वैराग्य हो गया। अपने कनिष्ठ पुत्र श्रीसोहनलालजी के विवाह के अवसर पर अपने हाथ से उनकी पाग सम्हाल रहे थे। इसी बीच आपके दर्शन के लिए कुछ साधू आये और उन्होंने आकर महाराज श्री को साष्टाङ्ग

प्रणाम किया । आपने कहा—"यह उलटी गङ्गा कैसे ? महात्मा बोले कि आपकी कथा से ही यह वैराग्य हमें मिला है। ये शब्द सुनकर सम्भवतः भक्त-कवि के हृदय में अत्यन्त अधिक ग्लानि हुई होगी कि मेरी कथा सुनकर इन्होंने गृहस्थ छोड़ दिया और मैं उसी कीचड़ में फँसा हूँ। आगे उसी के परिणाम स्वरूप उस भयङ्कर गर्मी (अक्षय तृतीया) में घर का पूर्ण रूप से परित्यागकर रमनरेती में स्थित "राधामाधव वाटिका" में चले गये। उनसे घर लौट चलने के अनेक आग्रह किये परन्तु सब निष्फल गये। उन्होंने कहा—

अब हम लागी हरि सों डोर ।
कच्चौ रंग छाड दुनियां को रंग रंग्यो सरवोर ।
खिन्न भये कहा होय लाल जू जब जागे तब भोर ॥
श्री शुकदेव राधिकामाधव विनती कर अब जोर ।
श्री जयदेव कृपा सो पाई जह गति नन्दकिशोर ॥

और इस प्रकार अपने जीवन के अन्तिम तीन वर्ष तीव्र तम वैराग्य में व्यतीत किये। एक दिन रासलीला की कथा में यह श्लोक वर्णन करते मूर्छित हो गये—

वंशीशंसितहर्षिताव्रजवधूविस्तार घेतो हरे
नानावर्णशिखण्डखण्डरचितैर्मौलिं दधानोलिके ॥
कालिन्दीकमनीयकूलकलभक्रीड़ाकलाकोविदः ।
कोयं नूतननीलनीरदसमो मच्चितमाकर्षति ॥

और इस असार संसार का परित्याग कर निकुञ्ज धाम पधारे। आपकी निधन तिथि भाद्रपद कृष्ण पक्ष १० वीं सम्बत् १९१२ है। परन्तु यथार्थ में वे अद्यावधि हमारे मध्य में है। वे

रससिद्ध एवं पुण्यात्मा कवि धन्य है जिनकी यश-रूप काया में जरा-मरण का भय नहीं है।

जयन्ति ते सुकृतिनः रस सिद्धा कवीश्वरा।
नास्ति येशां यशः काये जरामरणजं भयम्॥

इस ग्रन्थ की रचना को शताब्दी से ऊपर हो चुका है इतने दीर्घकाल के उपरान्त आज इस रूप में यह आपके संमुख उपस्थित है। यह सब परम श्रद्धास्पद प्रातः वन्दनीय मेरे पूज्य पिता आचार्य श्री यमुनावल्लभ जी गोस्वामी की महती कृपा का फल है जिन्होंने पूर्वजों के इस कोष को अनेक संकटों में अत्यन्त श्रम से सम्हाल कर रक्खा। महाराज श्री नन्दकिशोर चन्द्र जी के सम्बन्ध का सम्पूर्ण विवरण आपकी कृपा से ही प्राप्त हुआ। अन्यथा जैसे और अनेकों ग्रन्थों के समान यह भी कीटादिकों का भक्ष्य हो जाता।

महाकवि श्री नन्दकिशोर चन्द्र जी के गौर प्रेमोल्लास, बारह खड़ी, संस्कृत द्वादश मास, बारह मासा आदि कई ग्रन्थों के प्रकाशन आपने बहुत दिन पूर्व कर दिया परन्तु श्री शुकदूत महा काव्य के प्रकाशन का अवसर ही न मिला। संयोग से गौरचरणानुरागी बाबा कृष्णदास जी कुसुम सरोवर वालों ने यह कार्य भार अपने ऊपर सम्हाला। उनके सम्बन्ध में कुछ कहना तो सूर्य को दीपक दिखाना है। विद्वत समाज इसका अवलोकन कर हमारी त्रुटियों की ओर ध्यान न देकर इसके काव्यमय महान गौरव युक्त रस का रसिक होकर रसास्वादन करेंगे ऐसी अभिलाषा है।

विनीतः—

श्री नन्दकिशोर गोस्वामी के प्रपौत्र

आचार्य देवकीनन्दन गोस्वामी

एम० ए०, साहित्य रत्न

राधा माधव मन्दिर

३ कालीदह मार्ग

श्री धाम वृन्दावन.

❀ श्रीश्रीगौरांगविधुर्जयति ❀

कविवरमनोहरजीकृत

सम्प्रदायबोधिनी

प्रथमावृत्ति १०००
फाल्गुनि पूर्णिमा
सं० २०१६
मूल्य =)

प्रकाशक—
कृष्णदासबाबा,
कुसुमसरोवर निवासी (मथुरा)

दो बातें—

प्रस्तुत सम्प्रदायबोधिनी ग्रन्थरत्न के निर्म्माणकर्त्ता भक्तमाल टीकाकार श्रीप्रियादासजी के गुरु रसिक प्रवर कविवर श्रीयुत् मनोहरदासजी हैं। आप महाप्रभु गौरांगदेव के परिकर, वृन्दावन के छै गोस्वामि में प्रसिद्ध श्रीमद्गोपालभट्टगोस्वामिजी के परिकर में श्रीराधारमणजी के सेवक हुए। आपने "राधारमणरससागर" नामक निजकृत ग्रन्थ में अपना परिचय इस प्रकार दिया है कि—"श्रीचैतन्यकृपालु कृपा करि भट्टगोपालै। तिन श्रीनिवासाचार्य्य वर्य्य करुणा कौ आलै॥ रामचरण तिन कृपा चक्रवर्त्ती विख्याता। रामचरणचट्टराज कृपा तिन सारहि ज्ञाता। शुद्ध-भक्ति रसराग तिन करुणा करि दीक्षा दई। दासमनोहर नित्य गुरु पद धूली सिर पर लई।" आपके द्वारा बनाये हुए—(१) राधारमणरससागर (२) सम्प्रदायबोधिनी (३)रसिकजीवनि (४) क्षणदागीतिचिंतामणि ये चारि ग्रन्थ उपलब्ध हैं। श्रीराधा-रमणरससागर पहले सम्वत् २००८ में हमारे द्वारा प्रकाशित हो गया है। दूसरा ग्रन्थ रसिक सज्जनों के सामने प्रस्तुत है। हम आगे रसिकजीवनि एवं क्षणदागीतिचिंतामणि इन दोनों को ग्रन्थकर्त्ता के विस्तृत चरित्र के साथ प्रकाशित करने की चेष्टा में हैं। खोज में "पुष्पचरित" एवं "कवित्तसंग्रह" इन दोनों ग्रन्थ का उल्लेख पाया जाता है, परन्तु अभी दोनों अप्राप्त हैं। निःसन्देह कविवर मनोहरजी उस समय वृन्दावन में परमरसिक शिरोमणि माने जाते थे। बड़े-बड़े महानुभाव उनके संसर्ग में आकर रसिक बन जाते थे। प्रियादासजी ने अपनी भक्तमाल की टीका में कहा है "रसिकाई कविताई जाहि दीनी तिन पाई भई सरसाई हिये नव नव चाय है" इत्यादि। बाबा बंशीदासजी से इस पुस्तक की नकल कापी हमें मिली है एवं इसकी प्राचीन कापी कई स्थानों पर मौजूद हैं। इति।

कृष्णदास बाबाजी

श्री गौरांगविधुर्जयति

श्री श्री चैतन्यचन्द्रामृतं

तथा

श्री श्री संगीतमाधवम्

श्रीपादप्रबोधानंदसरस्वति
विरचितम् ।

प्रकाशकः—
कृष्णदास.
मूल्य १।)

सुकुञ्चितां सूक्ष्मरूपां स्मर रे मे मनः सदा ।
तर्जन्यास्तु तले दण्डं वारिजं मध्यमातले ॥ ४ ॥

तत्तले पर्वताकारं तत्तले च रथं स्मर ।
रथस्य दक्षिणे पार्श्वे गदां वामे च शक्तिकाम् ॥ ५ ॥

कनिष्ठायास्तलेऽङ्कुशं तत्तले कुलिशं स्मर ।
वेदिकां तत्तले व्याप्तां तत्तले कुण्डलं ततः ॥ ६ ॥

एषां चिन्हतले दीप्तं स्वस्तिकानां चतुष्टयं ।
अष्टकोणसमायुक्त सन्धौ जम्बु चतुष्टयम् ॥ ७ ॥

असव्याङ्घ्रौ महालक्ष्य स्मर गौरहरेर्मनः ।
अथ वामपदांगुष्ठमूले शंखं तले पविम् ॥ ८ ॥

मध्यमातल आकाशं तद्द्वयाधो धनुः स्मर ।
गुणेन रहितं चापं वलया मणिमूलके ॥ ९ ॥

कनिष्ठायास्तले चैकं सुशोभनं कमण्डलुम ।
तस्य तले गोष्पदाख्यं सत्पताकां ध्वजां पुनः ॥ १० ॥

चिन्तय तत्तले कुम्भान् चतुरः सु मनोरमान् ।
तेषां मध्ये चार्द्धचन्द्रं तले कूर्म्मं सुशोभनम् ॥ ११ ॥

शफरी तत्तले रम्यां तस्यापि दक्षिणे पुनः ।
कूर्म्मस्य तुल्यभागे तु निम्ने घटतलेऽपि च ॥ १२ ॥

मनोरमां पुष्पमालां स्मर वामांघ्रिपंकजे ।
इति द्वात्रिंशच्चिन्हानि गौराङ्गस्य पदाब्जयोः ॥ १३ ॥

इति श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्तीठक्कुरमहाशयविरचित
श्री गौराङ्गपदरूपचिन्तामणिः

हंस-दूतम्

श्रीलरूपगोस्वामिप्रभुपादविरचितम्

परिडतप्रवरश्रीगोपालचक्रवर्तिविरचितया
टीकयालंकृतम्
पं० हरिकृष्णकमलेशमहोदयेन विरचितेन
गद्यानुवादेन तथा च
श्रीपन्नालालजी (प्रेमपुञ्ज) महाशयेन विरचित-
पद्यानुवादेन परिबृंहितम्

ति: १०००
२०१४
—२॥)

प्रकाशकः—
कृष्णदासः
(कुसुमसरोवरनिवासी)
मथुरा

❀ प्रस्तावना ❀

देवाचार्यं यं विदुः सत्कवित्वे पाराशर्यं तत्त्ववादे महान्तम् ।
शृङ्गारार्थव्यञ्जने व्याससूनुं स श्रीरूपः पातु नो भृत्यवर्गान् ॥
(बलदेवः)

हंसदूताख्यदूतकाव्यमिदं महाभगवतः राधागोविन्दमिलित-विग्रहस्य, कलिपावनावतारस्य, प्रेमप्रदानायावतीर्णस्य श्रीकृष्णचैतन्य-देवस्य पार्षदप्रवरेण, कविमुकुटमणिना श्रीमद्रूपगोस्वामिचरणमहो-दयेन प्रणीतमिति गाथा रसिकहृदयदेशेषु जीवनतना नरीनर्त्ति । श्रीम-द्रूपगोस्वामिपादः विक्रमाब्दस्य पञ्चदशशतके वंगदेशान्तर्गतमुर्शिदाबा-दखण्डे 'रामकेलि' नाम्नि ग्रामे दाक्षिणात्यब्राह्मणवंशे आविर्बभूव । अस्य महोदयस्य पूर्वजानां वंशवृक्षः क्रमत इत्थम्भूतः—(१) कर्णाटभूमि-पतिः श्रीसर्वज्ञः, (२) सकलयजुर्वेदस्योपदेष्टा अनिरुद्धदेवः (३) तस्या-निरुद्धस्य द्वयोर्महिष्योः सकाशात् रूपेश्वरहरिहरौ, (४) शिखरदेश-राज्यनिवासिनः श्रीरूपेश्वरस्य समस्त-यजुर्वेद-उपनिषद्विद्याविलसित-जिह्वः पद्मनाभ आसीत्,(५) नैहाटिनिवासिनः, गुणसमुद्रस्य,यशस्विनः पद्मनाभमहोदयस्य अष्टादश कन्याः पुरुषोत्तम-जगन्नाथ-नारायण-मुरारि-मुकुन्ददेवनामानः पञ्च पुत्राश्च आसन्, (६) सर्वकनिष्ठमुकुन्दस्य श्रीमान् कुमारदेव आसीत्, (७) वंगदेशनिवासिनः तस्य कुमारदेवस्य त्रयः पुत्रा बभूवुः । तेषु श्रीसनातनो ज्येष्ठः श्रीरूपो मध्यमः श्रीअनुप-मश्च कनिष्ठ आसीत् ।

श्रीमद्रूपसनातनौ तदानीन्तनवंगदेशाधिपस्य नृपतेः हुसेनशाहस्या-मात्यपदमलचक्रतुः । महाप्रभोः श्रीचैतन्यदेवस्य महानुकम्पया तत्पदं गार्हस्थ्यं च तृणवत् परित्यज्य तदादेशतो झटिति वृन्दावनं गत्वा करंग-कौपीनधारिणौ वृक्षतलनिवासिनौ च भूत्वा विरेजतुः । श्रीमद्रूपगोस्वा-मिपादः कृष्णभक्तिरसभूषितान् बहु ग्रन्थान् समये रचयाञ्चकार । तेषु रसपरिपाटीवर्णने सिन्धुरिव "श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुः" जगन्मण्डले

रसिकजनहृदयदेशात् सम्मीकृत्य सर्वोपरि वरीवर्त्ति । भगवद् राधागो-विन्दयोरप्राकृतश्रृङ्गाररसवर्णने "उज्ज्वलनीलमणि" रेव अद्वितीय-महोच्चतमो ग्रन्थराजः साहित्यभण्डारेऽपि नरीनर्त्ति । अपरं तु व्रजली-लाविषयवर्णनापरकं 'विदग्धमाधवनाटकम्' द्वारकालीलाविषयकवर्णन-परं 'ललितमाधवनाटकञ्च' जगद्विख्याते । पुनश्च ग्रन्थकारेण "दान-केलिकौमुदी" नाम्नी राधागोविन्दयोः दानलीलाविस्तारवर्णनकारिणी भाणिकाऽपि व्यरचि । भरतमुनिनिर्म्मितं "नाट्यशास्त्रं" रससुधाकरा-दिकं च दृष्ट्वा श्रीरूपपादैन "नाटकचन्द्रिका" नाम्नी नाट्यलक्षणमयी अपूर्व्वा पुस्तिका विरचिता । तन्निर्म्मिता "स्तवमाला" पि राधागो-विन्दयोः स्तवादिवर्णने अत्यद्भुता भवति । भगवद्स्वरूपतत्त्वनिर्णये परमद्भुतरं ग्रन्थरत्नं 'लघुभागवतामृतं' कोऽपि न जानाति ? श्रीराधा-कृष्णगणोद्देशदीपिकाऽपि सगण-श्रीराधागोविन्दयोः सेवापरिपाटी-व्यवहार्य्यद्रव्य-स्थानादीनां वंशावल्यादीनां च परिचये महती प्रसिद्धा ।

मथुरामण्डलान्तर्गत-वनोपवनादीनां संक्षेपतः वर्णनपरकं "मथु-रामाहात्म्य" मपि सर्वोत्तमं भवति । "श्रीकृष्णजन्मतिथिविधि" रपि जन्माभिषेकादौ परमावश्यकः स्यात् । तद्विरचिता "प्रयुक्ताख्यच-न्द्रिका"पि व्याकरणशास्त्रसम्बन्धी संक्षिप्तग्रन्थो दृश्यते । तन्निर्म्मितं "हंसदूताख्यं" दूतकाव्यं सहृदयरसिकहृदयेषु महत्कौतूहलं चमत्कार-दिव्यविप्रयोगरसपोषणं च निर्बाधं ददाति अस्मिन् न सन्देहता । उद्धवसन्देशनामा दूतकाव्यप्रबन्धोऽपि न केषुचित् आश्चर्य्यसार-वत्तां विरहरसवैचित्री च ददाति ?

तन्निर्म्मिते उद्धवसन्देशाख्ये दूतकाव्ये नायकचूडामणिना श्रीकृष्णेन मथुरातो द्वारकातो वा उद्धवद्वारा विरहविधुराणां गोपाङ्गनानां सर्वेषां व्रजवासिनां वा सान्त्वनाय दौत्यं प्रेष्यते । श्रीमद्भागवते "गच्छोद्धव ! व्रजं सौम्य ! पित्रो नः प्रीतिमावह । गोपीनां मद्वियोगाधिं मत्सन्देशै-र्विमोचय", "सान्त्वयामास सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः" इत्यादि

श्लोकानवलम्ब्य अत्र ग्रन्थकारस्य रसिकजनहृदयपरितोषिणी महती चेष्टा संदृश्यते। तत्र केन रूपेण कं सन्देशं नीत्वा केन मार्गेण मया मथुरातो वृन्दावनं गन्तव्यं कुत्र वा केन रूपेणावस्थेयं किं कर्त्तव्यं का वा दशा वर्णनीया इत्यादिकं उद्धवं प्रति स्पष्टत: वर्णनं नास्ति। अत: तान् स्पष्टयितुं श्रीरूपगोस्वामिपादैरिदं उद्धवसन्देशाख्यं दूतकाव्यं व्यरचि। अत्र श्रीकृष्णेन स्वयं उद्धवाय गमनमार्गं वर्ण्यते। तद्यथा— प्राक् गोकर्णाख्यशिवस्थलं (१) तदनु—यमुनासरस्वतीसङ्गम:, (२) तत: कालीयहृदपरिसरं, (३) तस्माद् ब्रह्महृद:, (४) तत: यज्ञस्थलं, तदनु-कोटिकाख्यस्थलं (६) तत: सटीकराख्यगरुडगोविन्दस्थलं, (७) तदनन्तरं बहुलावनं (८) तत: गोकुलं, (९) शाल्मलवनं च, (१०) तदनु—साहाराख्यं, (११) तत: रहेलाख्यं, (१२) तत: सौयात्रिकस्थलं, (१३) तदनु-गोष्ठाङ्गनवर्णनं, (१४) तदनन्तरं पूर-प्रवेशनमित्यादिकम्।

हंसदूतस्य कथासारोऽयं—

कठिनमते: दानपते: गान्दिनीनन्दनस्याक्रूरस्यानुरोधेन गोपीहृदयानन्दने कमलवदने श्रीकृष्णे मथुरायां गते सति एकस्मिन् दिवसे व्रजललनामौलिरत्नरूपिणी महाविरहिणी राधिका विरहजनितान्तर्दाहप्रशमनेच्छुका सखीसहिताऽऽनन्दरहिता च सती यमुनातटं गतवती। तत्र पूर्वपरिचितानि कुञ्जकुटीरादीनि दृष्ट्वाऽधिकतरकातर-वेगेनाक्रान्ता च मूर्च्छां प्राप। तस्या: प्राप्तजडतां इत्थंभूतां दशां दृष्ट्वा तत्प्रा-गारसार्थं गृहीतनलिनीदलचन्दनानां सखीकदम्बानां हा हेति शब्दसहिता नानाप्रतिक्रिया जाता। ता: सर्वा चंदनलेपितायां नलिनीदलशय्यायां तां स्थापयित्वा परिवृत्य विलापयामासुश्च। तत: प्रेमवलिता श्रीललित शीतलयमुनाजलमानेतुं यमुनातटं त्वरितगत्या चलिता। विरहविकी र्णहृदया सा तत्र मधुरविरुतं श्वेतगरुतं सहसा ददर्श एवं हरिसदसि सन्देशप्रेषणाय निजमनसि तं श्रेष्ठदूतरूपेण निश्चयामास। हंसं उप-

लक्षीकृत्य ललितया यानि विरहदशामयानि वचनानि व्यक्तीकृतानि तानि श्रीरूपपादेन हंसदूताख्येन दूतकाव्यरूपेण श्लोकबद्धं ग्रथयित्वा प्रकटीकृतानि। राधिकाप्रेष्ठतमासख्याः श्रीरूपमञ्जर्याः अवतारस्वरूपे श्रीरूपे ऽत्र न कापि असम्भवसम्भावना।

प्राक् प्रणयवेगचलितया ललितया मथुरागमनाय हंसं प्रति मार्गे-यानि स्थानानि उद्दिष्टीकृतानि तेषां क्रमपरिपाटी इत्थंभूता—प्रथमतः येन मार्गेण अक्रूरेण श्रीकृष्णो मधुपुरीं नीतः तेन जनप्रसिद्धमार्गेण हंसाय गन्तुमुक्त्वा तदनन्तरं क्रमतः चीरघाटस्य कदम्बवृक्षश्चैव, तन्निकटे रासस्थली, तत्र वासन्ती विरचितानङ्गोत्सवकला चतुःशाला, ततः गि-रिगोवर्द्धनस्तदुपत्यकायां कदम्बवाटिका, ततः कियद्दूरे शुष्कमरिष्टासुर-मस्तकं, ततः भाण्डीरवटः, तन्निकटे ब्रह्मस्तुतिस्थली, तदनु-कालीयह्रद-स्ततः वृन्दावनाधिष्ठातृवृन्दादेविका, ततः एकादशवनानि तदनन्तरं वृन्दावनमिति। एतान् दृष्ट्वा दृष्ट्वा क्रान्त्वा क्रान्त्वा च मथुराप्रवेशनं निर्देशितम्। अनन्तरं मथुरायाः शोभैश्वर्यवर्णनं, ततः मथुरानागरीणा-मुल्लासकथनं विह्वलतावर्णनं च। तत्र श्रीकृष्णस्यान्तः पुरवर्णनं तदनु-उद्धवहस्ते समर्पितस्य शुकयुगलस्य मुखात् राधिकायाः सखीनां च संवादश्रवणकथनं, ततः क्रीडागृहवर्णनं, तदनु—यथावसरे गोपीनां राधिकायाः वा वार्त्तानिवेदनाय उपदेशस्ततः श्रीकृष्णस्य रूपमाधुरी-वर्णनं,तदनु-व्रजवासिनां दशाकथनमित्यादिकम्। प्रायशः मेघदूतादारभ्य समस्तदूतकाव्यं मन्दाक्रान्ताछन्दसा विरचितम्। इदं तु शिखरिणी-छन्दसमालम्ब्य विरचितमिति भेदः। अस्मिन् काव्ये शब्दालङ्कारप्राचु-र्यस्य महती चर्या, लालित्यपदानां सुललितता ऽनुप्रासशब्दकदम्बानां च्छटाडम्बरसंघटना च यादृशी दृश्यते नान्यत्र सा उपलभ्यते। 'अगाधायां बाधामयपयसि राधा विरहिणी' (२) "भवानग्रे तस्मिन्नवदलकदम्बेन निबिडे—कदम्बे कादम्बेश्वर पथि" (१६) "तदन्ते श्रीकान्तस्मरसमर-धाटी पुटकिता कदम्बानां वाटी रसिकपरिपाटी स्फुटयति (२४) "इग-

'स्मोगम्भीरीकृतमिहिरपुत्रीलहरिभिः, विलीनाधूलीनामुपरि परिवन्नै परिजनैः" (४) इत्यादि नानाशब्दानुप्रासवदनयाऽयं अलंकृतः काव्य-पुरुषस्य परमसौष्ठवतां प्रकाशयति ॥

अस्य ग्रन्थरत्नस्य "श्रीलगोपालचक्रवर्त्ती विरचितेयं प्राचीना टीका कुशस्थली (कोसी) स्थितगोमतीतटनिवासिनः "श्रीलभगवानदास" बाबाजिमहोदयतः उपलब्धाऽसीत् । नानाचेष्टयाऽपि अस्य द्वितीय-प्रतिलिपी अप्राप्ता । 'चंदेरी' ग्रामनिवासिना श्रीमता "श्रीधीरेन्द्रदास" महोदयेनापि प्रचुरपरिश्रमेण एक प्रतिलिपी लिखित्वा मह्यं दत्ता । "दीर्घपुर" (डीग) निवासिना, बन्धुवरेण श्रीहरेकृष्णकमलेशमहोद-येन यथासमये अस्य गद्यानुवादं कृत्वा मह्यं प्रकाशनार्थं यद्दत्तं तदुपकारं न विस्मृतपथमगमत् । "स्वर्गीयमुन्शीपन्नालाल" (प्रेमपुञ्ज) महोदयेन विरचितं नाना छन्दसाऽलंकृतं अतिसुमधुरं अस्य पद्यानुवादं तत्पुत्रवरात् "श्रीविहारीलालगर्गात्" उपलब्धमासीत् ।

अस्मिन् देशे बहूनि दूतकाव्यानि दृश्यन्ते श्रूयन्ते च । तानि काक-दूत-पादपदूत-मनोदूत-पवनदूत-उद्धवदूत-कोकिलसन्देश - चकोरसन्देश - मेघसन्देश-हंससंदेश-कोकसन्देशादीनि । तेषु विष्णुदासेन विरचितं मनो-दूतं, धोयीकविना विरचितं पवनदूतं, वादिचन्द्रेण विरचितं पवनदूतकाव्यं, माधवकवीन्द्रविरचितं उद्धवदूतं, वेदान्ताचार्यकृतः हंससन्देशः विष्णु-त्राताविरचितः कोकसन्देशः एतानि दूतकाव्यानि प्रसिद्धानि ।

गौडीयग्रन्थरत्नकोषागारेऽपि श्रीमद्रूपचरणैर्विरचिते हंसदूत-उद्ध-वसन्देशाख्ये इमे द्वौ दूतकाव्ये एवं श्रीकृष्णदेवसार्वभौमेन विरचितं 'पदाङ्कदूतं', श्रीनन्दकिशोरगोस्वामिना विरचितं 'शुकदूताख्यं' बिशाल-दूतकाव्यं च समष्टितः चत्वारि दूतकाव्यानि विराजन्ते । इमानि सर्वाणि श्रीकृष्णरसपोषकाणि भवन्ति । एषु प्राकृतरसस्यावकाशो नास्ति ।

यद्यपि कविश्रेष्ठेन कालिदासेन विरचितं प्राकृतरसवैभववर्णनपरकं 'मेघदूताख्यं' दूतकाव्यं प्राचीनतया लोकोत्तरचमत्कारकतया च रसिके-

प्रशंसितं तदपि 'प्राकृते ये रसं मन्यन्ते ते भ्रान्ता एव तत्र विभावादीनां वैरूप्यात्', "साधुकाव्यनिषेवणात्", 'न यद्वचश्चित्रपदं हरे र्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्। तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्षया', 'तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि। नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः", श्रीरुक्मिणीदेवीवाक्येऽपि—त्वक् श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्तर्मांसास्थिरक्तकृमिविट् कफपित्तवातम्। जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढ़ा या ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती स्त्रीति' नाना प्रमाणबलात् तत्र प्राकृते रसं निषिध्य पुनः"रसो वै सः""रसो ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति" "सैषानन्दस्य मीमांसा भवती"त्यारभ्य मानुषानन्दतः प्राजापत्यानन्दपर्य्यन्तं दशकृत्वा शतगुणिततया क्रमेण तेषामानन्दोत्कर्षपरिमाणं प्रदर्श्य पुनश्च ततोऽपि शतगुणत्वेन परब्रह्मानन्दं प्रदर्श्याप्यपरितोषात् यतो वाचो निवर्त्तन्ते इत्यादिश्लोकेन तदानन्दस्यानन्त्यमेव स्थापितम्", 'नित्यरसः', 'सर्वरसः', 'अखण्डरसबोधः','सर्वरसकदम्बः', 'अखिलरसामृतमूर्त्तिः' इत्यादिनानावचनबलेन अप्राकृते भगवद्वस्तुनि एव रसत्वमन्यत्र रसाभासत्वं निश्चितम्। अतः अस्य श्रीउद्धवसन्देशहंसदूताख्यदूतकाव्यद्वयस्य निर्माणेन रसिकान् महाविप्रलम्भमय्यानन्दस्वरूपेण रसेन नित्यभगवद्रसे निमज्जयितुं ग्रन्थकारस्य महान् प्रयत्नः। तस्मात् प्राकृतनायकादिवर्णनपरात् मेघदूतात् अनयोः हंसदूतोद्धवसन्देशयोः महद्वैशिष्ट्यम्। रसस्य 'ब्रह्मास्वादसहोदर' त्वात् तत्तु मोक्षे पर्य्यवसानात् तस्मादनन्तगुणिते आनन्दस्वरूपे भगवद्वस्तुनि एव रसपरमत्वं न तु मेघदूतादिवर्णिततुच्छनायक-नायिकाद्यनुभवम्भरणकीर्त्तनादेः, प्रत्युतं तत्तु पापावहत्वमेव। न तु प्राकृतनायकनायिकाविषयमवलम्ब्य केषाञ्चित् मोक्षं स्यात्। जीवस्याणुरूपतया तमालम्ब्यानन्दस्याणुरूपेण पर्य्यवसानात्। आनन्दसागरस्य भगवतः आश्रयात् तस्य अखण्डरसास्वादनमवश्यमेव स्वीकार्य्यम्। अस्तु अस्मिन्

दूतकाव्ये ब्रजवासिनां विप्रलम्भमयचरममहारसवैभवविलासं दर्शयित्वा श्रीरूपपादः काव्यास्वादनचतुरान् सहृदयरसिकान् किञ्चित् किञ्चित् परिवेषयित्वा आस्वादयामास । यं प्राप्य सर्वे कृतार्था अभवन् इति अलमतिविस्तरेण ।

पद्यानुवादक की संक्षिप्त जीवनी—

इनका जन्म कस्बा फरह जिला मथुरा में सन् १८५५ ई० सम्वत् १९१२ विक्रम् के श्रावण मास में हुआ था। आप गर्ग गोत्री अग्रवाल वैश्य थे आपको १४ वर्ष की अवस्था में ही आपके पिता लाला मुकुन्द-रामजी स्वर्गवास कर गये। मुन्शी जी ने इस अपनी अनाथ बाल्या-वस्था में ही अत्यन्त साहस और परिश्रम के साथ अपने पठन पाठन का चालू रखा।

एतमादपुर जिला आगरा में लगभग ३२ साल हिन्दी वर्नाक्यूलर मिडिलस्कूल के हैडमास्टर रहे। मुंशीजी को बाल्यावस्था से ही हिन्दी साहित्य से प्रेम था। काव्य, अलङ्कार, नाटक, नायिकाओं के भेद इत्यादि सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों का और हिन्दी के प्राचीन कवियों का कविताओं का इन्होंने भली भाँति मनन किया था। अपनी हैडमास्टरी के समय ही में इन्होंने समस्याओं की पूर्त्ति करना प्रारम्भ कर दिया था। कविता में अपनी छाप "प्रेमपुंज" अथवा "पुंज" डाला करते थे। पैनसन लेने के पश्चात् आप आगरा में रहने लगे। वहाँ चौबे अ-योध्याप्रसाद जी पाठक (वकील) से आपका परिचय हुआ। आप नागरीप्रचारिणीसभा आगरा में कविसम्मेलन उत्सव पर उपस्थित होते थे तथा वहाँ की कविताओं की समस्याओं की पूर्त्ति करके ले जाते थे। इनकी कविताओं की पूर्त्ति की बहुत प्रशंसा होती थी। उस समय आपने कविता में "स्वतन्त्रवनिता विनाश" नामक एक पुस्तक लिखी थी, जिसको महेन्द्रजी ने महावीर-प्रेस किनारी बाजार आगरा से छप-वाया था। इनकी आयुर्वेदिक और यूनानी हिकमत की भी पूर्णयोग्यता

थी। आगरा के वैद्य और हकीम लोग इनसे रोगियों की नाड़ी परीक्षा करा कर कठिन रोगों में इनसे सम्मति किया करते थे। आप बड़े परोपकारी थे एवं बिना शुल्क रोगियों की चिकित्सा किया करते थे। आपका गोलोकवास तारीख २५ मई सन् १६२४ को हुआ था। इस "हंसदूत" काव्य के भाषानुवाद का उत्साह उनको स्वर्गीय राधाकुंड निवासी पण्डित मोहनलालजी गोस्वामी जी ने दिलाया था। उनके प्रोत्साहन प्राप्त होकर आपने इस ग्रन्थ का हिन्दी पद्य और गद्य में भाषानुवाद किया था। इसका अनुवाद मिती श्रावण शुक्ला द्वादशी चन्द्रवार संवत् १६७८ विक्रम में समाप्त हुआ था। आपने स्वयं इस अनुवाद को लेकर वृन्दावन में गोस्वामी राधाचरणजी महाराज को तथा और भी अनेक सज्जनों को सुनाया। सब ने इस अनुवाद की बड़ी प्रशंसा की। आपके सुपुत्र श्रीबाबू लीलाबिहारीलाल गर्ग, रिटायर्ड सुपरिन्टेन्डेन्ट टेलीग्राफ कोठी केवलसहाय, बेलनगञ्ज आगरा ने इसके प्रकाशन के लिये बड़ी प्रसन्नता के साथ हमें प्रदान किया। परन्तु इस संस्करण में हम केवल "पद्यानुवाद" का प्रकाशन में समर्थ हुए।

अन्त में मैं उत्तर प्रदेश सरकार का विशेष आभारी हूँ कि इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अर्थ सहायता देकर मुझे उत्साहित किया।

कृष्णदास
कुसुमसरोवर वाले,
(मथुरा)

गद्यानुवादक का संक्षिप्त परिचय—

कविराज पं० श्रीहरिकृष्ण "कमलेश" का शुभ जन्म सम्वत् १६५० में दीर्घपुर (दीग) भरतपुर राज्य में ब्राह्मण वंशावतंस स्वरूप प० श्रीसारामजी मिश्र के यहाँ हुआ। आपके पिता एक अच्छे पौराणिक पण्डित थे; किन्तु आपके जीवन पर पिताजी के अतिरिक्त पितामह श्रीशालिग्राम जी का अच्छा प्रभाव पड़ा। वह एक अच्छे पण्डित तथा सरल एवं कट्टर सनातन-धर्मी व्यक्ति थे। बचपन से आप में "साधु-सेवा" की प्रवृत्ति पैदा हो गई एवं आपकी रुचि "हिन्दी" "संस्कृत" तथा "बँगला" में तीव्रतम होती गई। आपने घर पर ही शिक्षा प्राप्त कर "संस्कृत" में अच्छी योग्यता प्राप्त की तथा परीक्षायें भी दीं। "संस्कृत" की उत्सुकता से आपने कई विद्वान् गुरु-चरणों में आश्रय प्राप्त किया और "बँगला" में सतत स्वाध्याय के अध्यवसाय में लगे रहने से अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। "हिन्दी" की तो आप पर एक "वत्सलमाता" की भाँति कृपा ही थी; फलतः आप १२—१३ वर्ष की वयस में ही कविता करने लगे। अतश्च आपके हितैषीवर्ग ने आपको इस ओर प्रेरित किया। आपकी रचनायें अनेक दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिक पत्र-पत्रिकाओं में निकलती रहीं, यदा-कदा आप "खड़ी बोली" में भी गल्प तथा कवितायें लिखते रहे और सन् १६८२ में मथुरा में श्रीराधेश्याम कथावाचक के साथ आपको भी "गौड़ महासम्मेलन" ने "कविरत्न" की उपाधि से विभूषित किया। किन्तु बाद में उस साहित्यिक दौड़ में आपने शान्त रहकर ही "भारती" की आराधना करना श्रेष्ठ समझा और आज भी अविच्छिन्न रूप से चल रहा है। हिन्दी के अतिरिक्त तामिल, तेलगू, उर्दू आदि भाषाओं में भी आपकी रुचि है।

"कविराज" का व्यवसाय भी आपने कतिपय गुरु-चरणों की छत्र-छाया में रहकर सीखा। आपने इस क्षेत्र में भी प्रौढ़ तथा सफल

सिद्धहस्तता प्राप्त की अतएव आपका "यश" भरतपुर के चारों ओर फैला हुआ है। आपने प्रारम्भ में श्रीवल्लभाचार्य जी गोस्वामी कामवन वालों के यहाँ चिकित्सक का कार्य किया और "आनन्दाद्रि" में प्रथम राजपूताना वैद्य सम्मेलन का आयोजन एवं सफलता आपके प्रयासों का ही प्रतिफल है। इस समय अपने रचनात्मक कार्य के अलावा "स्वागत कविता" आदि से भारत के विभिन्न भागों से आये विद्वानों को मन्त्रमुग्ध किया बाद में आपने यह कार्य स्वतन्त्र रूप से किया और "वैद्यवर" आदि २ उपाधियाँ प्राप्त कीं और आज भी आप 'आयुर्वेद' की सेवा में तत्पर हैं। इस प्रकार "आयुर्वेद" संस्कृत तथा हिन्दी का अध्यापन भी आपने अपने निवास-स्थान पर किया।

वास्तव में भरतपुर तथा प्रधानतः डीग क्षेत्र में आप ही एक प्रथम समाज-सुधारक तथा साहित्यिक के रूप में आये। आपने इस क्षेत्र में "श्री हिन्दी-पुस्तकालय डीग" तथा "श्रीसुधारिणी समिति जुरहरा" जैसी अनुकरणीय संस्थाओं की स्थापना अपने सहयोगी वर्ग की सफलता से की और "तन-मन-धन" से सेवा करते हुए पुष्कलदान दिया तथा ग्राम २ से एवं सम्बन्धी मात्र से दिलाया। इसके अलावा सामयिक-सुधार के लिये आपने "ब्राह्मण-मण्डल" तथा "नवयुवक मण्डल डीग" आदि की स्थापना की।

आपका अध्यवसाय पूर्ण जीवन, साधारण वेशभूषा "Simple living high thinking" का प्रतीक है। सरलता तथा मृदुता की प्रतिमूर्ति हैं। आज भी आप ६३ वर्ष की उम्र में "ब्रज-भाषा" की सेवा में रत हैं, क्योंकि श्रीसत्यनारायणजी कविरत्न जैसे व्यक्ति की हितैषिता, साहचर्य तथा प्रेरणा का ही यह प्रभाव है। शतशः नवयुवकों के प्रेरणा के स्रोत श्रीकविराज जी का "हिन्दी-साहित्य" विशेषतः "ब्रज-साहित्य" की सेवा की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है। "शृङ्गारवट" (वृन्दावन) गोस्वामी जी से आपने गोपाल मन्त्र की दीक्षा ली है।

(कृष्णदास)

❀ भूमिका ❀

◇◇◇◇

गौड़ीय संप्रदाय के जिन भक्त कवियों ने उत्तर-मध्यकाल में ब्रज-भूमि को अपनी सरस रचनाओं से आप्लावित किया उन में रूप और सनातन—इन दो गोस्वामी बन्धुओं का गौरवपूर्ण स्थान है। संस्कृत में इनकी अनेक भक्ति-विषयक रचनाएँ मिली हैं, जो काव्य-सौष्ठव और भावप्रवणता की दृष्टि से उच्चकोटि की हैं। राधा माधव की मधुर लीलाओं का विविध रूपों में जो वर्णन इन दोनों महानुभावों ने किया है वह कितना सुन्दर है, इसे रस-मर्मज्ञ ही समझ सकते हैं।

रूप गोस्वामी ने 'हंसदूत' तथा 'उद्धव-संदेश' नामक दो दूत-काव्य भी लिखे। इन दूत-काव्यों की शैली वही है जो कालिदास के 'मेघदूत' या धोयी के 'पवनदूत' में मिलती है। 'हंसदूत' में राधा की प्रिय सखी ललिता द्वारा हंस पक्षी को राधा की व्यथा का संदेश-वाहक बनाने का वर्णन है। परन्तु दूसरे ग्रन्थ "उद्धव-संदेश" में श्रीकृष्ण द्वारा उद्धव को गोपियों के पास भेजना वर्णित है। गौड़ीय साहित्य में कुछ अन्य दूतकाव्य भी मिले हैं। इनमें श्रीनन्दकिशोर-चन्द्र गोस्वामी का 'शुकदूत' तथा श्रीकृष्णदेव सार्वभौम का 'पदांकदूत' उल्लेखनीय हैं। 'शुकदूत' में विरही कृष्ण द्वारिका से शुक पक्षी को दूत बनाकर व्रज में राधा के पास भेजते हैं। यह १० सर्गों का बड़ा ग्रन्थ है। 'पदांकदूत' केवल ४५ श्लोकों का लघु ग्रन्थ है। इसके प्रारम्भ में आया है कि राधाजी ने एक दिन यमुना-तट पर श्रीकृष्ण के चरण-चिह्न को देखा। उन्होंने उसी से प्रार्थना की कि वह श्रीकृष्ण के पास जाकर उनसे राधा का विरह निवेदन करे।

उक्त चारों ग्रन्थ संस्कृत की दूत-काव्य परम्परा का सम्यक् निर्वाह तो करते ही हैं, साहित्यिक दृष्टि से भी ये पठनीय हैं। इनमें न केवल

राधा-कृष्ण के प्रगाढ़ प्रेम की और विरह-जनित विविध मनोभावों की मार्मिक अभिव्यक्ति है अपितु प्रकृति-वर्णन, ब्रजादि जनपदों के भौगोलिक वर्णन भी अत्यन्त सुन्दर हैं। 'शुक-दूत' में द्वारिका नगरी का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

पतत्पताकांशुविलासभासितां विहंगकर्णस्पृहणीयभूषिताम्।
दिनेऽपि बाला: सुखचन्द्रभासितां समुद्रमध्यावयवेषु भासिताम्॥
(१२०)

इस ग्रन्थ के प्रथम सर्ग में वन तथा सरोवर का हृदयहारी वर्णन है। वन के वर्णन में पुष्पित लता-वृक्षों का सुन्दर चित्र खींचा गया है, जिसमें शब्दालंकारों की छटा दर्शनीय है—

मुकुलिता कुलिता भ्रमरोत्तमै: कवलिता वलिता दलसंचयै:।
स्तवकिता चकिता पिकझंकृतैर्नलता ललिता सुरभौ वभौ॥
(१।३५)

इस ग्रन्थ में रैवतक पर्वत, बिंदु-सरोवर, सरस्वती नदी, उज्जयिनी, पुष्कर, मथुरा, गोवर्द्धन, प्रेम-सरोवर आदि के रोचक वर्णन हैं। पाँचवें और छठे सर्ग मे राधा की विरह-व्यथा का प्रभावोत्पादक चित्रण मिलता है। शब्द और अर्थ दोनों प्रकार के अलंकार स्थान-स्थान पर उपलब्ध हैं।

रूप गोस्वामी जी द्वारा लिखित 'उद्धव-संदेश' १३१ श्लोकों का ग्रन्थ है। इसमें आदि से अन्त तक मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग हुआ है। इस ग्रंथ में भी द्वारका और ब्रज के बीच के अनेक स्थानों का वर्णन है। ब्रज के स्थानों में अम्बिका वन, कोटिक तीर्थ, सट्टीकर (छटीकरा), गरुड़ गोविन्द, कालियहद, शेषशायी, महार आदि के वर्णन उल्लेखनीय हैं। एक स्थान पर ब्रज के गोवत्सों का अत्यन्त सजीव आलेखन हुआ है। चपल बालकों के हाथों से अपनी पूँछ

छुड़ाकर उछलने वाले बछड़े और बछिया कितने सुन्दर लगते हैं, देखिए—

धावद्बालावलिकरतलप्रोच्चलद्वालधीनां
यत्रोत्तुङ्गस्फटिकपटलस्पर्द्धिदेहद्युतीनाम् ।
घ्रायं घ्रायं नवतृणशिखां मुञ्चतीनां वलन्ते,
वत्सालीनां चटुलचटुलं शश्वदार्द्धीकनानि ॥२४॥

'उद्धव-सन्देश' में विरह-वर्णन उत्कृष्ट कोटि का मिलता है। एक गोप-बाला का कथन सुनिए जिसमें उसने अपना हृदय खोलकर रख दिया है। वह वियोग के दुःख को अधिक दिन तक सहने में कितनी असमर्थता का अनुभव करती है और वृन्दावन के लता-वृक्ष उसे किस प्रकार कृष्ण के साथ रास-विलास की बातों का स्मरण कराते हैं:—

आशापाशैः सखि ! नवनवैः कुर्वती प्राणबन्धं,
जात्या भीरुः कति पुनरहं वासराणि क्षयिष्ये ।
एते वृन्दावनविटपिनः स्मारयन्तो विलासान्,
उत्फुल्लास्तान्मम किल बलान्मर्म निर्मूलयन्ति ॥ ८२ ॥

'हंसदूत' रूप गोस्वामी जी का दूसरा दूत-काव्य है। इसमें कुल १४२ श्लोक हैं। इसके सभी छंद शिखरिणी में हैं। मंगलाचरण के बाद कथा का प्रारम्भ होता है। राधा के विरह-संताप का वर्णन बड़ा ही मार्मिक है। उसकी प्रिय सखी ललिता द्वारा एक हंस को संदेशवाहक बनाया गया है। 'सज्जनों से कभी याचना विफल नहीं जाती', ऐसा हंस से कहकर ललिता उसे कृष्ण के पास जाने के लिए उद्यत करती है—

पवित्रेषु प्रायो विरचयसि तोयेषु वसतिं
प्रमोदं नालीके वहसि विशदात्मा स्वयमसि ।

अतोऽहं दुःखार्ता शरणमबला त्वां गतवती
न याञ्चा सत्पद्ये व्रजति हि कदाचिद् विफलताम्॥६॥

उक्त वर्णन को देखकर कालिदास के यक्ष की याद आ जाती है, जो मेघ से कहता है—

"याञ्चा मोघा वरमधिगुणेनाधमे लब्धकामा।"

(पूर्वमेघ, ६)

हंस को मार्ग का वर्णन बताते हुए ललिता उससे कहती हैं—"जामुन के से रंग वाले यमुना जल को पीते हुए, चंद्र-किरणों के तुल्य कमल-नालों का भक्षण करते हुए, सघन पत्रों वाले वृक्षों की डाली पर बैठकर विश्राम का आनंद लेते हुए तुम मथुरा नगर जाना। (श्लोक, १४)

१८ वें श्लोक में रास-स्थली का सुन्दर वर्णन है, जहाँ कृष्ण ने गोपियों के साथ हल्लीशक नृत्य किया था, आगे गिरिराज गोवर्द्धन तथा उसके समीप तमाल वृक्षों का वर्णन है, जहाँ चंचल शबरी वनिताएँ श्रीकृष्ण की विरहाग्नि से तप्त थीं। इसके पश्चात् वृन्दावन, भांडीरवट, कालियदह, वृन्दादेवी आदि स्थानों के मनोरंजक चित्रण हैं। ग्यारह वनों को लाँघने के बाद आम के वृक्षों से सघन मधुवन का उल्लेख है, जहाँ मथुरा नगरी बसी है। मथुरा में सखियों की दशा का मनोहारी वर्णन ३३वें श्लोक के आगे मिलता है। श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं का स्मरण करती हुई सखियों के आलाप और चेष्टाओं का, विशेषकर राधा की विरह-व्यथा का वर्णन कवि ने अत्यन्त भावपूर्ण ढंग से किया है। राधिका का विरहालाप चेतन ही नहीं, जड़ को भी रुलाने में समर्थ है।

पूरा काव्य श्रीरूप गोस्वामी जी के पांडित्य और भक्ति-निष्ठा का परिचायक है। वर्णन की सरस एवं प्रवाहमयी शैली आदि से

अन्त तक देखने को मिलती है। प्रस्तुत रचना निस्सन्देह परवर्ती संस्कृत काव्य की मूर्धन्य रचनाओं में गणनीय है।

पुस्तक का सम्पादन बाबा कृष्णदास ने जिस ढँग से किया है वह सराहनीय है। प्रत्येक श्लोक के बाद उसकी विस्तृत संस्कृत टीका और हिन्दी अनुवाद दिया गया है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक श्लोक का एक मुखोल्लास दोहा, मूल का छंदोबद्ध हिन्दी अनुवाद तथा सोरठा के रूप में सारांश भी दिया गया है। इस प्रकार प्रत्येक श्लोक की पूरी व्याख्या मूल के साथ उपलब्ध है। पद्यानुवाद में ब्रज-भाषा का ही प्रयोग किया गया है, जो बहुत सरल है।

अभी तक यह सुन्दर काव्य ग्रंथ हिन्दी के पाठकों के लिए सुलभ नहीं था। इस प्रकाशन द्वारा यह कमी दूर हो गई है और रूप गोस्वामी की सरस रचना का आस्वादन अब केवल हिन्दी जानने वाले भी कर सकेंगे। यह हर्ष की बात है कि रूप गोस्वामीजी के दूसरे दूत-काव्य 'उद्धव-सन्देश' का भी प्रकाशन हिंदी अनुवाद के सहित बाबा कृष्णदासजी ने करा दिया है। आशा है कि इसी प्रकार 'शुक-दूत' तथा 'पदांक-दूत' भी सानुवाद शीघ्र प्रकाशित होंगे।

मथुरा।

१२—४—५७

—कृष्णदत्त वाजपेयी,

अध्यक्ष, पुरातत्त्व संग्रहालय।

|| श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ||

गौड़ीयग्रन्थगौरव:—

प्रकाशितग्रंथसंख्या—११२—११३

स्वकीयात्वनिराशविचार:

तथा

परकीयात्वनिरूपणम्

रचयिता—

श्रीश्रीविश्वनाथचक्रवर्त्तीजी

सम्वत्—२०२०

मूल्यम्— २५ नये पैसे

प्रकाशक: व मुद्रक:—

कृष्णदासबाबा

गौरहरिप्रेस, कुसुमसरोबर

सूरदास मदनमोहन

जीवनी और पदावली

सूरदास मदनमोहन के पदों का सुसंपादित संकलन निकालने में सबसे बड़ी बाधा यह है कि उनका कोई प्रामाणिक संकलन उपलब्ध नहीं होता है। कीर्तन-संग्रहों में उनके जो थोड़े से पद मिलते हैं, उनके विषय में निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि वे वस्तुतः उनके ही हैं, अथवा अष्टछापी सूरदास के। फिर जो पद उपलब्ध होते हैं, उनका पाठ अत्यंत विकृत और अशुद्ध मिलता है, जो प्रामाणिक प्रतियों के अभाव में शुद्ध भी नहीं किया जा सकता है। यह कठिनाई ब्रजभाषा के सभी प्राचीन कवियों की रचनाओं के संकलन में होती है। हिंदी के मध्य कालीन साहित्य की समृद्धि के लिए इसे अनुसंधान प्रिय विद्वानों की निरंतर चेष्टा से ही दूर किया जा सकता है।

सूरदास मदनमोहन की रचनाओं के संकलन का सर्वप्रथम प्रयास श्री वियोगी हरि जी ने किया था। उनके सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'ब्रज-माधुरी सार' में उनके १४ पद संकलित किये गये। इसके बाद डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल कृत 'अकबरी दरबार के हिंदी कवि' नामक प्रबंध में उनके १२ पद संगृहीत हुए। ये सभी पद विभिन्न कीर्तन-संग्रहों में से संकलित किये गये थे, जिनमें प्रामाणिकता और अपपाठ की अनेक त्रुटियाँ विद्यमान हैं।

गौड़ीय संप्रदाय के निष्ठावान अन्वेषक बाबा कृष्णदास ने वृंदाबन में उपलब्ध प्रतियोंके आधार पर उनके १०५ पद 'श्री सूरदास मदनमोहन की सुहृद वाणी'के नाम से प्रकाशित किये हैं। इस पुस्तक में संपादन और पाठ-शुद्धि का प्रयास किये बिना ही पदों का प्रकाशन किया गया है, जिसके कारण प्रायः सभी पद अत्यंत अशुद्ध रूप में छपे हैं। इसमें अप्रामाणिक और संदिग्ध पदों के अतिरिक्त कुछ पद ऐसे भी हैं, जो निश्चित रूप से अष्टछापी सूरदास के हैं। 'अथ लालजू की बधाई' शीर्षक का एक पद— "नंद जू मेरे मन आनंद भयौ, हौं गोबर्धन तैं आयौ"—ब्रज माधुरी सार में भी है, किंतु यह पद सदा से अष्टछापी सूरदास के नाम से प्रसिद्ध रहा

है। इसका एक अन्य पद—"व्रत धरि देवी पूजी। जाके मन अभिलाष न दूजी।" भी सूरदास का ही समझा जाता है। इसमें होली के कई बड़े पदों का संकलन किया गया है, जिनमें—"खेलत मोहन फाग भरे रंग।" तथा "स्याम संग खेलन चली स्यामा, सब सखियन जोरि।" टेकों के पद सभा के सूरसागर में सं० ३५१० और ३५२५ पर भी मुद्रित हैं। ये पद अष्टछापी सूरदास के ही माने जाते हैं। इसका अंतिम पद—"गहनौ तौ चुरायौ माई, काहू केसौराय कौ।" सूरदास मदनमोहन का नहीं समझा जा सकता है। इन सब त्रुटियों के कारण इस पुस्तक की उपयोगिता बहुत कम हो गई है। इस पर भी यह आज कल अप्राप्य है।

मैं सूरदास की रचनाओं के सुसंपादित संस्करण प्रकाशित कराने की बहुत दिनों से चेष्टा कर रहा हूँ; किंतु यह बहुत बड़ा कार्य है, जिसके लिए प्रचुर परिश्रम और पर्याप्त समय की अपेक्षा है। अपनी इच्छा के अनुसार 'सूरसारावली' का प्रकाशन मैंने करा दिया है। 'साहित्य-लहरी' का कार्य भी निकट भविष्य में पूरा हो जावेगा। सूरदास की सबसे बड़ी और विवाद रहित रचना सूरसागर है, किंतु इसके निश्चित स्वरूप और सुसंपादन की ही कई विवादग्रस्त समस्याएँ हैं। इन समस्याओं में सर्व प्रथम सूरदास मदनमोहन के पदों का प्रथक्करण करना है। प्रस्तुत पुस्तक सूरसागर के सुसंपादन संबंधी प्रयास का ही परिणाम है; यद्यपि इसका स्वतंत्र पुस्तक के रूप में भी कुछ महत्व है।

सूरदास मदनमोहन की रचनाओं के सुसंपादित संकलन के लिए एक मात्र आधार बाबा कृष्णदास की पुस्तक थी, जिसमें विभिन्न कीर्तन पोथियों के उपलब्ध पदों का भी संग्रह हो गया है। इस पुस्तक के पद इतने अशुद्ध हैं कि किसी अन्य प्रामाणिक प्रति से शुद्ध किये बिना उनकी कोई उपयोगिता नहीं है। विद्या विभाग, कांकरौली के सुप्रसिद्ध सरस्वती भंडार में हिंदी विभागीय बंध सं० ४७ की पुस्तक सं० ७ में सूरदास मदनमोहन के पदों का संकलन होना ज्ञात हुआ। इससे आशा हुई कि

उक्त संकलन जहाँ प्रामाणिक पाठ में सहायक होगा, वहाँ उससे कुछ नवीन पद भी प्राप्त होंगे। इसके लिए विद्या विभाग के संचालक श्री कंठमणि जी शास्त्री को लिखा गया। उन्होंने मेरी प्रार्थना पर उक्त पदों की प्रतिलिपि भेजने की कृपा की। इस प्रति में १२६ पद हैं, जिनमें एक पद राजा आशकरण का है। शेष १२५ पदों पर सूरदास मदनमोहन की नाम-छाप है, किंतु उनमें भी कई पद संदिग्ध ज्ञात होते हैं। जहाँ तक पाठ का संबंध है, वह अत्यंत अस्पष्ट और अशुद्ध है। मूल प्रति किसी अनपढ़ लिखिया द्वारा लिखी गई है, जिसमें पदों की प्रत्येक पंक्ति ही नहीं वरन् प्रत्येक शब्दको अशुद्ध लिखा गया है। इस पर भी वे आपस में मिलाकर लिखे जाने से अत्यंत अस्पष्ट होगये हैं। कांकरौली के लिपिक ने उनकी ज्यों की त्यों प्रतिलिपि कर दी है। इसके कारण प्रामाणिक पाठ में इससे कोई सहायता प्राप्त नहीं हुई। हाँ, इससे नये पद प्रचुर संख्या में अवश्य प्राप्त हो गये।

प्रस्तुत संकलन में १८५ पद हैं। इनमें ८५ पद कांकरौली संग्रह के, ५६ पद सूरदास मदनमोहन की वाणी के और ६ पद कीर्तन-संग्रहों के हैं। शेष ३५ पद वे हैं, जो कई प्रतियों में समान रूप से मिलते हैं। इन पदों का पाठ यथाशक्ति शुद्ध करने की चेष्टा की गई है। जो पद एकाधिक प्रतियों में मिल गये हैं; उनका पाठ ठीक करने में कुछ सुविधा भी हुई; किंतु जो पद किसी एक ही प्रति में मिले हैं, उनका पाठ ठीक करने में बड़ी परेशानी हुई है। फिर भी कई पदों का पाठ किसी प्रकार ठीक नहीं हो सका है। इनकी पाठ-शुद्धि में इतनी मग़ज़पच्ची करनी पड़ी है कि कभी-कभी तो झुंझलाहट से काम को छोड़ देने की ही इच्छा होती थी। जितना परिश्रम इन पदों के संशोधन में हुआ है, उससे कम में तो स्वतंत्र रचना ही लिखी जा सकती थी। ब्रजभाषा साहित्य का यह दुर्भाग्य है कि उसके प्रमुख कवियों की रचनाओं की प्रतियाँ भी ऐसे भ्रष्ट रूप में मिलती हैं।

पुस्तक के अंत में दी हुई पदानुक्रमणिका में जहाँ मुद्रित पदों की आधार-प्रतियों का उल्लेख है, वहाँ क्रम संख्या के कतिपय पदों को पुष्पांकित कर उनसे मिलते हुए अष्टछापी सूरदास के पदों का भी संकेत किया गया है। इस प्रकार के पद २२ हैं। इनमें से १६ पदों का उल्लेख 'जीवनी' प्रकरण में किया जा चुका है। वे सभी पद कांकरौली की प्रति में हैं, अतः उनको सूरदास मदनमोहन की रचना समझा जा सकता है। शेष ६ पद सूरसागर के अतिरिक्त 'सूरदास मदनमोहन की वाणी' और कीर्तन-पोथियों में मिलते हैं, किंतु वे कांकरौली संकलन में नहीं हैं, अतः वे मूल रूप में अष्टछापी सूरदास द्वारा रचे हुए हो सकते हैं। इनके अतिरिक्त जिन पदों की प्रामाणिकता में संदेह हुआ है, उसका उल्लेख पाद-टिप्पणी में कर दिया गया है।

अष्टछापी सूरदास और सूरदास मदनमोहन के पदों की ठीक-ठीक पहिचान तो सूक्ष्म अध्ययन से ही हो सकती है, किंतु स्थूल रूप में भी उनकी कुछ पहिचान होना संभव है। अष्टछापी सूरदास के पद छोटे और बड़े सब प्रकार के होते हैं, और उनके चरण प्रायः सम होते हैं; जब कि सूरदास मदनमोहन के पद छोटे होते हैं और उनके कुछ चरण ध्रुपद की तरह प्रायः विषम भी होते हैं। उनमें छंद-विधान के अतिरिक्त संगीतात्मक लय का अधिक आग्रह होता है।

इस पुस्तक की रचना में कांकरौली संकलन से विशेष सहायता मिली है। इसके लिये मैं विद्याविभाग के अध्यक्ष गो० व्रजभूषणलाल जी और उसके संचालक श्री कंठमणि जी शास्त्री का अत्यंत अनुगृहीत हूँ। बावा कृष्णदास की पुस्तक भी इसकी रचना में सहायक हुई है, अतः मैं उनका भी आभारी हूँ। आशा है, इस प्रकार के प्रयास से जहाँ एक सुप्रसिद्ध भक्त कवि की रचनाएँ सुलभ हुई हैं, वहाँ सूरसागर के सुसंपादन का मार्ग भी सरल हुआ है।

मीतल निवास,
डैम्पियर पार्क, मथुरा।

—प्रभुदयाल मीतल

विशेष सूचना

इस पुस्तक के पृष्ठ १३ की ८ वीं पंक्ति में 'दूसरों' के स्थान पर 'दूसरी' और 'से' के स्थान पर 'के' पाठ होना चाहिये। इसी पृष्ठ की अंतिम पंक्ति में 'सीमाएँ हुई हैं' के स्थान पर 'सीमाएँ हैं' होना चाहिए।

इस पुस्तक के पृष्ठ २७ से ३३ तक में 'कृष्ण की बाल लीला' के पदों का संकलन हुआ है। उनके मुद्रित होने के पश्चात् निम्न लिखित पद और प्राप्त हुआ है। इसके पाठ में कुछ गड़बड़ है, किंतु इसका भाव-सौन्दर्य द्रष्टव्य है—

जसुमति के आँगन में, आपुनपौं हरि देखौं जब।
रतन जटित लर लटकनि, दँतियन-कांति निरखि,
चहौ चाहैं आरटि, तोतरे बचन कहै मोहि दै रे अब॥
कबहुँक हँसत-किलकत, कबहू रुदन करत,
नैना मूँदि उलटे कर सौं तब।
'सूरदास मदनमोहन' कर-पल्लब गहि सिखवत चलन,
जननि नहीं समुझति, देत तुतरिआ भरन सब॥

इस पुस्तक का ३३ वाँ पद कुछ पाठ-भेद के साथ सं० ११३ पर भी छप गया है। वास्तव में ये दो पद नहीं हैं, वरन् एक पद है। इसका पाठ सं० ११३ के अनुसार ही समझना चाहिए।

सं० ३६ का पद अशुद्ध छपा है। इसका अन्य पाठ बाद में मिल गया, जो मुद्रित पाठ से कुछ अच्छा है। पाठ इस प्रकार है—

सखी के पाछै ठाढ़ी प्यारी कौ बदन नीकौ लागत,
मानौं कंचन-गिरि तैं उदै कियौ ।
मनि नवसत कैं स्याम बादर तैं निकस्यौ मानौं,
सोभित बिंदुला माथैं कुमकुम कौ दियौ ॥
नीलांबर रजनी सजनी संग सोहति कुरंगनैनी,
अरु राकाहिं संग लियौ ।
'सूरदास मदनमोहन' के लोचन चकोर
तृपति न पावत मधु-पान कियौ ॥

पदावली की पाद टिप्पणियों में जिन मुख्य आधार प्रतियों का उल्लेख किया गया गया है, उनके संकेत इस प्रकार हैं—

१. कांकरौली विद्या विभाग का हस्त लिखित संग्रह (संग्रह)
२. श्री सूरदास मदनमोहन की मुद्रित वाणी (वाणी)
३. नित्योत्सव, वर्षोत्सव एवं वसंत-धमार के कीर्तन (कीर्तन)

★ स्मरणमङ्गलस्तोत्रं ★

॥ श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितम् ॥

आचार्य्य श्रीलश्रीमधुसूदनगोस्वामिचरण तथा श्रीदामोदरदासजी
महोदय विरचित छन्दबद्ध ब्रजभाषानुवादेन समलंकृतं
पद्मपुराण के पातालखण्ड वृन्दाबनमाहात्म्य
चौदहवाँ अध्याय व सनत्कुमारसंहिता
के छत्तीसवाँ पटल से
परिरञ्जित

प्रथमावृत्ति १०००
संवत २००६ माघ शु० त्रयोदशी
श्रीनित्यानन्दप्रभुजयन्ती
न्योछावर ।।=)

प्रकाशक :—
कृष्णदास बाबाजी,
कुसुमसरोवर, (गोवर्द्धन)

—[समर्पण पत्रम्]—

श्री श्री राधारमण चरणदास देवस्यानुचर प्रवरस्य
सकल देश प्रसिद्ध कीर्त्तिराशेः, प्रेम मात्र सर्व्वस्व
कृतस्य, निरन्तर सात्विक भावावल्या
विभूषितस्य, दी न ता सा ग र स्य,
मधुर स्वरालापैः सर्वदा गौर
कीर्त्तनकर्त्तुः, श्रीरामदासेति
नाम्ना प्रसिद्धस्य, मदीय
आराध्यदेवस्य, श्रीगुरु
देवस्य, बाबाजीमहा-
राजस्य प्रीत्यर्थे
समर्पितेदं ग्रन्थरत्नं ।

प्रस्तावना

भज-निताइ गौर राधे श्याम ।
जप - हरे कृष्ण हरे राम ॥

आज गुरु गौरांग गणों की पुनीत कृपा से श्रीमद्रूप-गोस्वामि महोदय के द्वारा विरचित "स्मरणमङ्गल" स्तोत्र हिंदी व ब्रजभाषा में अनुवाद के साथ छन्द बद्ध प्रकाशित होकर रसिक जनों के समक्ष उपस्थित हैं। निःसन्देह श्रीगोस्वामि चरण ने पद्मपुराणान्तर्गत पातालखण्ड बृन्दाबनमाहात्म्य के चौदहवें अध्याय को प्रमाण रूप से आधार मानकर एकादश श्लोकात्मक इस स्तोत्र की रचना की। क्योंकि श्रीमन्महाप्रभु की विशेष आज्ञा थी कि जो भी कुछ लिखें उसे प्राचीन शास्त्रोक्त प्रमाणों से परिपुष्ट करें। गोस्वामियों ने ठीक ऐसा ही किया। वे सब जो भी कुछ लिख गये हैं वह सब प्राचीन शास्त्रों के आधार से रचा गया है। इसीलिये ही हमने इस स्तोत्र के परिशिष्ट में पद्मपुराणीय पातालखण्ड स्थित बृन्दाबनमाहात्म्य का चौदहवाँ अध्याय भी ज्यों का त्यों अनुवाद के साथ दे दिया है। रसिकगण उसे इस स्मरणमंगल के साथ मिला कर पाठ कर लेवें। गौड़ीय वैष्णवगण व अष्टकाल स्मरण करने वाले रसिक प्रेमीजन, श्रीचैतन्यचरितामृत रचयिता श्रीकविराज कृष्णदास गोस्वामि के द्वारा विरचित "श्रीगोविन्दलीलामृत" ग्रन्थ के आधार से ही श्रीराधागोविन्द की दैनन्दिनी अष्टकाल लीला का स्मरण करते हैं। यह ग्रन्थ संस्कृतभाषा में अति विस्तृत रूप से लिखा गया है। इसमें तेईसवाँ अध्याय तथा २५०० श्लोक हैं। निःसन्देह साहित्य भण्डार में यह ग्रन्थ सर्वोपरि है। श्रीमद्रूपगोस्वामि जी के एकादश श्लोकात्मक "स्मरणमंगलस्तोत्र" को मूल सूत्ररूप से आगे रखकर उसके भाष्य रूप में इस विशाल ग्रन्थ की रचना की गई है। इसके बंगाक्षर में अनुवाद

के साथ कई संस्करण छप चुके हैं। और भी अष्टकालीय लीलात्मक कई ग्रन्थ गौड़ीयग्रन्थगौरव में मौजूद हैं। आनन्दवृन्दावन-चम्पूकार श्रीकविकर्णपुर महोदय के द्वारा विरचित "कृष्णान्हिककौमुदी" नामक ग्रंथ भी साहित्यभंडार में अतुलनीय रूप से विराजमान है। यह ग्रंथ भी बंगानुवाद के साथ बंगाक्षर में छप चुका है। श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्त्ती महाशय ने भी "कृष्णभावनामृत" नामक अति सुन्दर सुविस्तृत अद्वितीय ग्रंथ की रचना की। यह ग्रंथ तो रस का भण्डार है तथा पद-पद में रस टपकता है। यह ग्रंथ भी देवनागरी अक्षर में व बंगाक्षर में अनुवाद के साथ कई संस्करणों में प्रकाशित हो चुका है। "गोविन्दलीलामृत" का भी श्रीयदुनन्दनदास जी के द्वारा विरचित बंगभाषा में विस्तृत पयार छन्द मौजूद है। यह भी बंगाक्षर में प्रकाशित हो चुका है। स्मरणमंगल स्तोत्र के भी बंग पयार में कई ग्रन्थ हैं। परन्तु वह सब संस्कृत व बगभाषा में होने का कारण हिन्दी भाषा भाषी रसिक जनता के लिये दुरूह हैं। इस असुविधा को दूर करने के लिये प्राचीन अर्वाचीन महानुभावों ने भी हिन्दीभाषा में छन्दवद्ध कितने ही ग्रन्थ लिखे हैं, किन्तु यह सब अप्रकाशित रहने के कारण एतद्देशी प्रेमी रसिकों के लिये अप्राप्त हैं। मेरे पास ब्रजभाषा में स्मरणमंगल स्तोत्र व गोविन्दलीलामृत ग्रंथके आधार पर कई ग्रन्थ मौजूद हैं। षड्माधुरीकार माधुरीजीके द्वारा गौतमीयतन्त्र व गोविंदलीलामृत के आधारपर विरचित एक विस्तृत अति सुन्दर अष्टयाम भी मैंने उपलब्धि किया है। यह ब्रजभाषा में अति सरस सर्वोच्च महान् ग्रन्थ है। किसी समय इसे भी प्रकाशित करने की चेष्टा करूँगा। संप्रति विद्वान् धुरन्धर, गौड़ीय आचार्य्य, सार्वभौम, गोस्वामि मधुसूदन जी के द्वारा विरचित और उन्हीं के आत्मज श्रीकृष्णचैतन्य गोस्वामी जी (छोटेलाला)

के द्वारा स्मरणमंगल स्तोत्र का अति सुन्दर एक अनुवाद मुझे प्राप्त हुआ है।

उसे प्रकाशित करने के लिये मेरी तीव्र इच्छा हुई। उन्हीं गोस्वामिचरण के आश्रित, गौरनिष्ठ, भिण्ड निवासी, मध्यभारत के भूतपूर्व न्यायमन्त्री, श्रीजगमोहनलाल जी श्रीवास्तव की आर्थिक सहायता से यह दुरूह कार्य्य सम्पन्न हुआ है। दूसरा श्रीदामोदरदास जी कृत स्मरणमंगल स्तोत्र का अनुवाद जो कि गोविन्दलीलामृत ग्रन्थ के आधार पर आठ अध्याय में लिखा गया है वह भी मेरा परम हितैषी, गौड़ीय आचार्य्य गोस्वामि श्रीपुरुषोत्तमशास्त्री जो (राजाजी) से प्राप्त हुआ। दामोदर-दास जी का परिचय विशेष उपलब्ध नहीं है। प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तक से यह अनुमान किया जाता है कि लगभग अढ़ाई सौ तीन सौ वर्ष पहिले आप श्रीगदाधर चैतन्य परिवार में से कोई महानुभाव हुए। प्रमाण पुष्ट के लिये पद्मपुराणीय पातालखण्ड बृन्दाबनमाहात्म्य को चौदहवाँ अध्याय इसमें संचित किया गया है। सनत्कुमारसंहिता में भी ठीक इसी प्रकार अष्टकाल का वर्णन है। पद्मपुराण का यह चौदहवाँ अध्याय ज्यों का त्यों उक्त संहिता में दुहराया गया है। प्रेमी पाठक पद्मपुराण के उपरोक्त अध्याय व सनत्कुमार के श्लोकों को मिलाकर इस अष्टकालीय "स्मरणमंगल" के आधार पर श्रीराधागोविन्द की दैनन्दिनी लीला का चिन्तवन करें यह मेरी प्रार्थना है। परिशेषमें वृन्दाबन निवासी, शास्त्र निष्णात, गोस्वामि श्रीदामोदरलालजी, कोसी निवासी सेठ चेतरामजी, नवद्वीप हरि-बोल कुटीर निवासी श्रीहरिदासजी, श्रीजगमोहनलाल श्रीवास्तव जी प्रभृति महानुभावों का मैं धन्यबाद देता हूँ कि उन सबकी सौहार्दता से इस दुरूह कार्य्य का सम्पादन करने में मैं समर्थ हो रहा हूँ।

वैष्णवदासानुदास

कृष्णदास।

—❀ सानुवाद ❀—

❀ नवरत्नं ❀

अनन्यरसिकशिरोमणि, महामहिम,
श्रीमाध्वगौड़ीयआचार्य, गोस्वामी
श्रीहरिरामव्यासजी
म हो द ये न
बिरचितं

प्रथमावृत्ति १०००
संवत २००६
फाल्गुन शुक्ला द्वितीया
श्रीश्रीराधारमणचरणदास-
देव की तिरोभावतिथी
नौछावर ≈)।

प्रकाशक व अनुवादक:—
कृष्णदास बाबाजी,
कुसुमसरोवर, (गोवर्द्धन)

—[समर्पण पत्रम्]—

श्री श्री राधारमण चरणदास देवस्यानुचर प्रवरस्य,
सकल देश प्रसिद्ध कीर्तिराशेः, प्रेम मात्र सर्व्वस्व
कृतस्य, निरन्तर सात्विक भावावल्या
विभूषितस्य, दी न ता सा ग र स्य,
मधुर स्वरालापैः सर्वदा गौर
कीर्तनकर्त्तुः, श्रीरामदासेति
नाम्ना प्रसिद्धस्य, मदीय
आराध्यदेवस्य, श्रीगुरु
देवस्य, बाबाजीमहा-
राजस्य प्रीत्यर्थें
समर्पितेदं ग्रन्थरत्नं ।

दो शब्द—

आज गुरु गौरांग गणों की पुनीत कृपा से-रसिक शिरोमणि, महामहिम, प्रिया प्रियतम के अनन्य परम भक्त, वैष्णव चूड़ामणि, यतीश्वर श्रीपाद श्रीमाधवेन्द्रजी के कृपापात्र श्रीमाधवदासजी के शिष्य, श्रीमान् हरिराम व्यासजी के द्वारा विरचित यह स्वधर्मपद्धति व नवरत्न नामक ग्रन्थ रत्न हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित होकर रसिक प्रेमी जनता के समक्ष उपस्थित है। यह ग्रंथ आकार में क्षुद्र होने पर भी महिमा में अति विशाल तथा समस्त वैष्णव सिद्धान्तों के सार निचोड़ महान् व्यापक रूप है। इसमें ग्रन्थकार ने अपनी सम्प्रदाय के मूल आचार्य श्रीमध्वाचार्य्य के विस्तृत महान मत को संक्षेप रूप से भली भांति दिखलाया है। निःसन्देह माध्वगौडीय सम्प्रदाय व अन्य वैष्णव सम्प्रदाय के पथिक प्रेमीजनों का सिद्धान्त जानने के लिये यह ग्रन्थ परम उपादेय वस्तु है। बहुत दिनों से इच्छा थी इसे प्रकाशित करने की। सम्प्रति कालिदह निवासी बाबा वंशीदासजी, नवद्वीप हरिबोल कुटीरनिवासी श्रीहरिदासदासजी, मथुरा कृष्णगंगा-निवासी पण्डित मुरलीदासजी, कंपट्रोलर्स आफिस रीवा के श्रीवासुदेवगोस्वामी प्रभृति महानुभावों के आग्रह से इसे प्रकाशित करने को बाध्य हुआ। उक्त बाबा वंशीदासजी से ही यह ग्रंथ मुझे मिला। तथा उक्त गोस्वामी श्रीवासुदेवजी के अर्थ सहायता से यह दुरूह कार्य्य का समाधान हो सका। व्यासजी के सम्बन्ध में श्रीनाभाजी और टीकाकार प्रियादासजी ने भक्तमाल में अनेक कुछ लिखकर गहरा प्रभाव डाला है। बुन्देलखंड की तत्कालीन राजधानी ओरछा नगरी में सम्वत् १५६७ मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी में आपका जन्म हुआ था। सनाढ्य कुल कौस्तुभ, धनाढ्य, माध्वमतमार्तण्ड श्रीसुमोखन शुक्लजी आपके पिता तथा पद्मावतीजी आपकी माता थीं। व्यासजी के पितृदेव श्रीशुक्लजी कलिपावनावतार श्रीचैतन्यमहाप्रभु के परमगुरु

(दादा गुरु) श्रीमाधवेन्द्रयतीश्वर के परम शिष्य श्रीमाधवदास जी के कृपापात्र थे। व्यासजी बाल्यकाल से ही प्रिया प्रियतम के परमभक्त रहे। आपने छोटी ही अवस्था में व्याकरणादि शास्त्रों का अध्ययन कर लिया था। यथा समय में जब श्रीमाधवदास जी ओरछा पधारे तब उनको गुरुदीक्षा भई। एक सुकुलीन ब्राह्मण की पुत्री श्रीसुशीला जी के साथ व्यासजी का पाणिग्रहण हुआ था। ओरछाके नरेश महाराज मधुकरशाहजी आपके शिष्य थे। अपूर्व वैभव व मान सम्मान को तृणके समान त्यागकर श्रीव्यासजी सम्वत् १६१२ में ओरछा से श्रीबृन्दावन धाम चले आये। फिर बृन्दावन छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं गये। श्रीव्यास जी की पत्नी और पुत्र भी उनके बृन्दावन में निश्चल अनुराग को देख बृन्दाबन में जाकर निवास करने लगे। बृन्दाबन में सेवाकुञ्ज के समीप किशोरवन में श्रीव्यासजी युगल स्वरूप की आराधना करते हुए वहाँ वास करते थे। संवत् १६२० में माघ शुक्ला एकादशी के दिवस श्रीयुगलकिशोर जी ने वहाँ किशोर-वन में प्रकट होकर व्यासजी को दर्शन दिया। तब आपने बड़ा एक मन्दिर बनाकर उसमें श्रीयुगलकिशोर जी को अति समारोह के साथ विराजमान करवाया तथा अनन्यभाव से युगल-किशोरजी की सेवा करने लगे। अब वह किशोरवन व्यासघेरा नाम से प्रसिद्ध है। व्यासवंशी गोस्वामीगण वहाँ वास करते हैं। व्यासजी की वाणी अति प्रसिद्ध है। व्यासजी के वंशोद्भव माध्वगौडीय आचार्य्य श्रीगोस्वामी श्रीराधाकिशोर जी ने १९९४ वि० सम्वत् में व्यासजी की वाणियों को एकत्र कर अथक परिश्रम के साथ प्रकाशित किया है। उन्हीं के वंशोद्भव श्रीला-डलीकिशोर गोस्वामीजी ने उसमें प्राक्कथन लिखकर गहरा प्रभाव डाला है। यदि किसी को व्यासबाणी देखने की इच्छा होय तो इसे मगाकर देखें। यथार्थरूप से ही यह ग्रन्थ प्रकाशित किया

गया है। श्रीहरिरामव्यासजी के शिष्यत्व के सम्बन्धमें प्रचलित किम्वदन्तियों और साम्प्रदायिक मतों के कारण कुछ भ्रान्त धारणाएँ फैलगई हैं। यह भ्रान्तिपरम्परान्याय रसिक जनता में बद्धमूल होकर कुछ विशालता को धारण करती जारही है। इस नवरत्न व स्वधर्मपद्धति ग्रन्थ से इन सब भ्रान्तियों का निराकरण तथा व्यासजी वास्तविक कौन के शिष्य थे इसका निश्चय करण आपही आप हो जायगा। नाभाजी की भक्तमाल का आधार लेकर लगभग तीन सौ वर्ष पहिले श्रीनिवास आचार्य्य प्रभु के शिष्य श्रीलालदास महोदय ने वंगभाषा में पयार छन्द से एक अति सुन्दर विस्तृत भक्तमाल लिखी है। वंगदेश में जिसका वहुलरूप से प्रचार है। लालदासजीका दूसरा नाम कृष्णदास जी भी है। उस वंगभाषा की भक्तमाल में—

श्रीमन्माधवेन्द्रपुरी गोस्वामीर।
शिष्य श्रीमाधव नाम शिष्य शान्त धीर॥
ताँर शिष्य श्रील हरिराम ये गोसाञि।
अतएव तार वंश माध्वी सम्प्रदाइ॥
श्रीमन् व्यास कृष्ण वैष्णव सेवन।
विने नाहि भाय ज्ञाति कुटुम्व भोजन॥

बृन्दाबनकथा नामक पुस्तक के २३६ पृष्ठ में पुलिन-बिहारीदत्त जी लिखते हैं—"बुन्देलखण्डेर अन्तर्गत ओडछा वा ऊर्च्छा ग्रामे हरिरामव्यासनामे एकजन ब्राह्मण वास करितेन। तिनि माधवेन्द्रपुरीर शिष्य श्रीमाधव नामक एकजन सन्यासीर निकट मन्त्र ग्रहण करिया वैष्णवधर्म्मे दीक्षित छिलेन इत्यादि।

स्वयं व्यासजी अपने यह नवरत्न व स्वपद्धति नामक ग्रंथ में निज गुरुपरम्परा उठाते हुए लिखते हैं—

"लक्ष्मीपतिस्ततः श्रीमान्माधवेन्द्र यतीश्वरः।
ईश्वरस्तस्य माधोश्च राधाकृष्णप्रियोऽभवत्।

तस्याहं करुणापात्रं हरिरामाभिधोऽभवमिति ॥

अर्थात्—लक्ष्मीपति के माधवेन्द्रयतीश्वर, उनके श्रीईश्वर तथा माधवजी शिष्य हुए। उन माधवजी के हरिरामव्यास मैं कृपापात्र अर्थात् शिष्य हुआ हूँ ॥

"वन्दे श्रीगोविन्दे धृताशयान्वैष्णवानहं शश्वत्।

यत्कृपया हरिरामो व्यासस्तनवैस्वपद्धतिं सूक्ष्माम् ॥

अर्थात्-श्रीगोविन्द में सकल आशय धारण करने वाले वैष्णवों को मैं निरन्तर वन्दना करता हूँ। जिन्हों की कृपा से हरिरामव्यास मैं सूक्ष्म रूप से निज सम्प्रदाय पद्धति का वर्णन करता हूँ।

आगे—स्मर्त्तव्या सततं सद्भिः स्वीया गुरुपरम्परा।

सिद्ध्येत्येकान्तता नैषां सिद्धि हेतु यया विना ॥

अर्थात्-महत् पुरुषों के लिये अपनी गुरुपरम्परा का निरन्तर स्मरण करना चाहिये। क्योंकि जिसके विना ऐकान्तिकी भक्ति नहीं सिद्ध हो सकती है।

आगे—यान्यार्यो नवरत्नानि प्रमेयाण्याह सः प्रभुः।

श्रीमध्वस्तत्ववादीन्द्रस्तानि मे संमतानि हि ॥

अर्थात्-तत्ववादियों के गुरु, वह प्रभु आचार्य्य श्रीमाध्व ने नौ रत्न रूप जो नौ प्रमेयों का वर्णन किया है वे सब प्रमेय ही मेरे सम्मत हैं। अस्तु- इस विषय में हम अधिक क्या कह सक्ते हैं। वृन्दावन में व्यासवंशी गोस्वामीगणही इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। वे सब गोस्वामिगण माध्वगौडीय से सम्बन्ध रखते हैं तथा एसाहि तिलकादिकों का धारण करते हैं। उनकी दीक्षा, शिक्षा भी उसी रीति से होती है। व्यासजी की जीवनी व वाणी के बारे में हम अधिक नहीं कह सके। जिनको अधिक जानने की इच्छा हो तो वे व्यासघेरा वृन्दावन से आचार्य्य श्रीराधाकिशोर गोस्वामीजी के द्वारा प्रकाशित "व्यासवाणी" मगाकर देखें ॥ इति ॥

वैष्णव-दासानुदास कृष्णदास।

❀ श्री गौरहरिर्जयति ❀
प्रकाशक के द्वारा प्रकाशितग्रन्थ संख्या—१२८

❀ श्रीगोविन्दलीलामृतम् ❀

श्रीलश्रीकृष्णदासकविराजगोस्वामिविरचितम्

[प्रथमखण्डम्]

ज्येष्ठ पूर्णिमा
सम्वत् २०२२

प्रकाशक—
कृष्णदासबाबा

❀ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ❀

❀ श्रीगोविन्दलीलामृतम् ❀
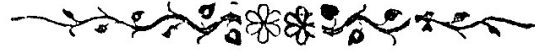
श्रीलश्रीकृष्णदासकविराजगोस्वामि—
विरचितम्

मुद्रणार्थ—अर्थसहायकः—
स्वर्गीय सेठ मामुचन्दसिघानिया के आत्मज,
सेठ मूलचन्दजी सिंघानिया

एवं

तत्पुत्र श्रीमान् हरिरामसिंघानिया
मु०—झारसुगुडा
जि०—सम्बलपुर [उत्कल]

प्रकाशक व मुद्रक—
कृष्णदासबाबा
कुसुमसरोवर (ग्वालियर मन्दिर)
गौरहरि प्रेस, राधाकुण्ड [मथुरा]

श्रीश्रीनित्यानन्दप्रभु-जयन्ती सम्वत् २०२१

न्योछावर [दोनों खण्ड]
पांच रुपया

समर्पणपत्रम्

भज—निताई गौर राधेश्याम ।
जप—हरे कृष्ण हरे राम ॥

(प्रकाशक की गुरुप्रणाली)

राधाकृष्णमिलितविग्रह श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु के अन्तरंग
परिकर बलरामावतार—

श्री नित्यानन्द प्रभु
श्री वीरचन्द्र प्रभु
श्री रामचन्द्र प्रभु
श्री किशोरीमोहन गोस्वामी
श्री राधाबल्लभ गोस्वामी
श्री राधारमन गोस्वामी
श्री राधामाधव गोस्वामी
श्री सत्यानन्द गोस्वामी
श्री राधिकाप्रसाद गोस्वामी
श्री कृष्णचैतन्य गोस्वामी
श्री नित्यराधा गोस्वामी
श्री शङ्करारण्य गोस्वामी
श्री राधारमन चरनदास बाबाजी
श्री रामदास बाबाजीमहाराज

कृष्णदास

❀ दो शब्द ❀

ग्रन्थकार श्रीकृष्णदास कबिराज गोस्वामी:—बर्द्धमान जिला ईष्टर्ण रेलवे व्याण्डेल-वारहारोया शाखा में काटोया स्टेशन है। जहाँ श्रीमन्महाप्रभुने केशब-भारती से सन्यास लिया था, वह स्थल पवित्र गंगातट पर मौजूद है। वहाँ से सालार स्टेशन, वहाँ से दो माइल दूर पर व गंगाटिकुर से तीन माईल दूर पर भामटपुर है। उस पवित्र स्थान में वैद्यवंश में आप का जन्म हुआ है। पिता का नाम भगीरथ, माता का नाम सुनन्दा एवं भ्राता का नाम श्यामदास है। पिता जी की चिकित्साबृत्ति थी। कविराज-गोस्वामि की छै वर्ष अवस्था में पिताजी ने देह-रक्षा की अतः दोनो भ्राता पितृष्वसा(बूआ)के निकट प्रतिपालित हुए। बाल्य-काल से ही कविराजगोस्वामि के हृदय में प्रवल वैराग्य व उत्कटभक्ति का उदय हुआ था। वयः प्राप्त हो जाने पर आप भ्राता के हाथ में समस्त विषय अर्पण कर निरन्तर भगवद्भजन में उन्मत्त रहे। अनन्तर श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु के स्वप्नादेश प्राप्त कर बृन्दाबन के लिये चल दिये एवं वहाँ ही शेष-जीवन तक निबास किया। श्रीरघुनाथदासगोस्वामी जी आप के गुरु थे ऐसा प्रेमबिलास से जाना जाता है।

संस्कृत शास्त्र में कविराज गोस्वामि की प्रगाढ़ व्युत्पत्ति थी वह उनके विरचित गोबिन्दलीलामृत के अध्ययन से ज्ञात होती है। आपने विल्वमङ्गल रचित कृष्णकर्णामृत की "सारङ्गरङ्गदा" नामक टीका भी की थी उससे आप की रसज्ञता का परिचय मिलता है। बंगभाषा में भी आप की प्रबल अभिज्ञता थी वह

छल पूर्वक अन्यरसों से करना भावावह व उचित है। इस ग्रन्थ में ठीक ऐसा किया गया है। कहीं तो वीररस में कहीं अद्भुत-रस में कहीं वा अन्य रसों में। साहित्य बासना युक्त विद्वज्जन इस का अनुभव कर सकता है। अस्तु इस समय इस के प्रकाशन की आवश्यकता है। प्रारम्भिक अबस्था में जब मैं कुसुम-सरोबर में रह कर गोबिन्दलीलामृत के श्लोकों को कण्ठस्थ करता था तब मन में प्रबल अभिलाषा होती थी कि इस का वंगाक्षर में तो प्रकाशन हो गया है परन्तु देवाक्षर में हो जाय। तभी से हमारी भीतर की चेष्टा रही। एक बार इसी लिये हम बम्बई गये, वहाँ निर्णयसागर प्रेस के अधिकारियों से इसको-प्रकाशन के लिये प्रार्थना की, परन्तु सफल प्रयन्त नहीं हुये। यह कार्य्य बडा लम्बा व कष्टसाध्य था इस लीये प्रारम्भ करने का साहस नहीं होता था। कभी कभी हताश हो जाता था। अत्यधिक परिश्रम के करण मस्तिष्क में कमजोरी व शरीर में रुग्णता ने घर वना लिया। अभी भी जिन ग्रन्थों का देवाक्षर में प्रकाश करने की लालसा है उन ग्रन्थों का प्रकाशन न हो रहा है इस लिये मन में बडी चिन्ता हो जाती है। न हमारे पास धन का सम्बल है और न जन सहयोग ही। अस्तु—कुछ दिन पहले हमारे परमस्नेही भक्तिपरायण राधामाधब के सेबानिष्ठ, झारसुगुडा निबासी श्रीमान् सेठ मूलचंदजी राधाकुण्ड में आये थे। मैंने उन से इस के प्रकाशन के लिये आग्रह किया, उन्होंने आर्थिकसहायता के लिये सम्मति दे दी। बड़े उत्साह के साथ मैंने इस का प्रारम्भ कर दिया। उन्ही की आर्थिकसहायता से ही अब यह कार्य्य फलोन्मुख हुआ। सेठ जी वर्त्तमान में उडीशादेश के सम्बलपुर जिले में झार-सुगुडा में निवास करते हैं वहाँ पर उन्होंने भक्तियाजन का केन्द्र बना लिया। जिस से आस पास के भक्ति समाज व

मारवाडी समाज में बड़ा प्रभाव पडा हुआ है। वहाँ उन्होंने राधा-माधव का मन्दिर बनबाया है जिस में राधामाधब की सेबा है। मैं एकबार वहाँ गया था कुछ दिन वहाँ उन्हीं के पास रहा भी। मैने उनकी सेवा—परिपाटी देखी कि वे निरन्तर सेवा में तल्लीन रहते हैं। पुजारी वगैरा रहते हुए भी आप स्वयं ही अपने हाथों से राधामाधव की सेवा करते हैं। वे दीर्घजीवी हों यह प्रभु से प्रार्थना है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन में निर्दिष्ट समय से कुछ अधिक समय लग गया है। इस लिये मैं सब से क्षमा चाँहता हूँ। सेठ जी के भी कई उत्कंठा पूर्ण पत्र आये थे। परन्तु कई कारणों से प्रकाशन कार्य्य में बिलम्ब हो गया। परिशेष में हम उन दोनों सज्जनों को धन्यवाद देते हैं कि जिन्होंने इस ग्रन्थ का अनुवाद प्रस्तुत कर हमें यथा समय प्रदान किया। प्रथमखण्ड(प्रथमसर्ग से ग्यारहसर्गतक)के अनुवाद करने वाला-श्रीमान रघुवरदयाल जी एवं दूसरा खण्ड के (द्वादशसर्ग से शेषतक) मेरे बन्धुवर श्रीयुक्त प्रेमानन्द जी।

मैं ग्रन्थ मुद्रण प्रारम्भ में अस्वस्थ हो गया था अत: प्रथमखण्ड के अनुवाद शोधनादि होकर ठीक रूप से न होने पाया। द्वितीय संस्करण में हम इस पर ध्यान देंगे। इस में सब से अधिक त्रुटी यह रह गयी कि टीका के साथ यह ग्रन्थ प्रकाशित न होने पाया। इस ग्रन्थ के टीकाकार श्रीवृन्दाबन-चक्रबर्त्ती महोदय हैं और टीका का नाम सदानन्दविधायिनी है, जिस की रचना समाप्ति १७१२ शकाब्द मार्गशीर्ष पूर्णिमा है। बंगाक्षर में यह टीका छप चुकी है। देबाक्षर में इस का प्रकाशन होना परमाबश्यक है। मूल का भाव इसी से प्रस्फुटित हुआ है। इति-

कृष्णदास—

❀ महाभगवते श्रीगौरचन्द्राय नमः ❀

❀ प्रार्थना ❀

श्रीलनरोत्तमदासठाकुर महाशय की

(१) आचार्य्य श्री बालकृष्णगोस्वामिजी विरचित
हिन्दीभाषापद्यानुवाद ।

(२) श्रीलनरोत्तमदासठाकुर महाशय की
मूल प्रार्थना (बंगभाषापद्य में)

(३) श्रीप्रियाशरणदासजीविरचित
हिन्दी भाषापद्यानुवाद

(प्रथमावृत्तिः १०००
श्रीरामनवमी)
संवत् २०१४

प्रकाशक :
कृष्णदास,
(कुसुमसरोवर वाले)
(मथुरा)

भज--निताइ गौर राधेश्याम।

जप--हरे कृष्ण हरे राम॥

परमाराध्य, संकीर्त्तन प्रचारक, प्रेममयविग्रह, श्रीराधा-
रमणचरणदासदेव (बड़े बाबाजी) के अनुगत,
नित्यधामगत, श्रीगुरुदेव बाबाजिमहाराज
१०८ श्री बाबा (रामदासजी) के
पुनीत स्मरण में यह ग्रन्थ
समर्पित है।

'प्रार्थना' पर दो शब्द !

प्रस्तुत मूल पुस्तक'प्रार्थना'ग्रन्थ के रचयिता श्रीनरोत्तमदास ठाकुर महाशय का जन्म शकाब्द १४४५ माघ पूर्णिमा में कायस्थ कुल-भूषण श्रीमान् कृष्णानन्ददत्त जी के घर में जो राजशाही ज़िलान्तर्गत गोपालपुर के परगनाधिपति थे, श्रीनारायणी देवी के गर्भ से हुआ था। गोपालपुर की राजधानी पद्मावती नदी के तट पर खेतड़ी नामक स्थान में थी। आप बाल्यकाल से ही श्रीगौराङ्गदेव के अनुरक्त थे; इनको एक बार स्वप्नादेश हुआ कि वृन्दावन में अमरघाट पर श्रीलोकनाथ जी गोस्वामी महाशय का शिष्यत्व ग्रहण करो। इस पर यह गृह त्याग करके आवेश पैदल चलकर बहुत कष्ट सहते हुए वृन्दावन आकर श्रीगोस्वामिपाद के सम्मुख उपस्थित हुए और अपने स्वप्नादेश की बात कहकर शिष्यरूप में उन्हें स्वीकार करने की प्रार्थना की। श्रीलोकनाथजी महाराज ने भी अपनी गुप्त प्रतिज्ञा प्रगट करते हुए कहा कि आजन्म किसी को शिष्य ग्रहण नहीं करूँगा तथा श्रीमहाप्रभु ने तुम्हारे प्रति हमें कोई स्वप्नादेश नहीं दिया है। अतः श्रीनरोत्तमजी पास के ही एक जंगल में छिपकर रहने लगे और अपने मनोनीत भावी गुरुदेव की पुरीषादि उठाकर फेंकना तथा मार्गमार्जनादि की नीचसेवा गुप्त रूप से एक वर्ष तक करते रहे। अन्त में श्रीगुरुदेव की दृष्टि एक बार उन पर पड़ ही तो गई, इनकी गुप्त सेवा से अति द्रवीभूत होकर अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर इन्हें अपना शिष्य रूप से वरण कर लिया। वृन्दावन में यह कुछ दिन तक श्रीगुरुदेव पास उनकी सेवा में रहे।

शकाब्द १५०४ में जब श्रीजीव गोस्वामी जी की आज्ञानुसार श्रीश्रीनिवासाचार्य्य व श्रीश्यामानन्द प्रभु, "गोस्वामी-गण विरचित ग्रन्थों" को बंगदेश में प्रचारार्थ ले जाने लगे, तब श्रीनरोत्तमदास जी ठाकुर महाशय भी उनके साथ ही बंगदेश को लौट गये। तत्पश्चात् बंगदेश में खेतड़ी से एक कोस पर इन्होंने अपना आश्रम बनाया, जो अभी भी 'भजन-टोली' नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ आपने श्रीगौराङ्ग,

श्रीवल्लभीकान्त, श्रीकृष्ण, श्रीब्रजमोहन, श्रीराधामोहन तथा श्रीराधाकान्त नाम के छः विग्रह स्थापित किये। श्रीललोकनाथ गोस्वामी तथा श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशय दोनों की समाधि श्रीगोकुलानन्द मन्दिर वृन्दावन में उपस्थित हैं।

इनके रचे हुए 'प्रेमभक्तिचन्द्रिका' व 'प्रार्थना' गौड़ीय वैष्णव समाज में अति प्रसिद्ध हैं। इन दोनों ग्रन्थों को प्रत्येक वैष्णव कंठ करके रखता है एवं उत्सवादि तथा नित्य कीर्त्तनादि में श्रीठाकुर महाशय की प्रार्थना तो अवश्य ही गान की जाती है। यह छोटीसी पुस्तक वास्तव में माध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदाय की शुद्ध रागानुगा भजन-मार्ग-दर्शिका (प्रैक्टिकैल गाइड) ही है। संक्षेप में गौड़ीय-भजन प्रणाली का सार इसमें प्रस्तुत किया गया है। एक-एक पद के पाठ मात्र से ही पाठक का मनः स्तर क्रमशः ऊँचा हो उठता हुआ प्रतीत होता है—वास्तव में यह वैष्णवों का कण्ठहार ही है। इस पुस्तक की उपादेयता निम्न उद्धरण से भली प्रकार सिद्ध होती है:—

ऐसा कहते हैं कि महात्मा श्रीशिशिरकुमार घोष (अंग्रेजी अमृत-बाजार तथा बंगीय आनन्द बाजार पत्रों के सम्पादक-अध्यक्ष) ने नवद्वीपस्थित सिद्ध बाबा श्रीचैतन्यदासजी महाशय से एक बार पूछा कि 'भक्ति कैसे हो ?' इस पर श्रीबाबाजी महाराज ने उत्तर दिया कि 'भक्ति तो दो पैसे में लाभ होती है' यह सुनकर शिशिरबाबू ने कहा कि—यह क्या बात ? आप तो मुझ से हँसी करते हैं। बाबाजी ने कहा 'हरेकृष्ण !' मैं उपहास नही करता, ठीक ही कहा है—दो पैसा देकर बटतल्ला की छपी श्रीनरोत्तम ठाकुर की प्रार्थना मोल लेकर पढ़ो, जिससे भक्ति लाभ होगी।'

इस प्रकाशन में मूल (बँगला) पाठ के साथ दो सज्जनों द्वारा उसका हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे पाठकवृन्द मूल का रसास्वादन करते हुए हिन्दी रूपान्तरों द्वारा भली प्रकार वस्तु लाभ

कर सकें—एक रूपान्तरकार नित्यधाम प्राप्त आचार्य्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी, श्रीराधारमण मन्दिर बृन्दावन के हैं। दूसरे लेखक श्री डा० पूर्णचन्द्र शर्मा आगरा निवासी को हम प्रायः १० वर्ष से जानते हैं। प्रारम्भ में हमने बाबाजी महाराज (श्रीपूज्यपाद श्रीश्रीरामदासजी महाराज ममाराध्य गुरुदेव महाशय) द्वारा प्रकाशित बँगला साधक-कंठ-माला की एक प्रति देकर उसे ध्यान से पाठ करने को कहा था तथा हो सके तो उसमें श्रीठाकुर महाशय की 'प्रार्थना' का हिन्दी रूपान्तर करने पर जोर दिया था—श्रीगुरुदेव को यह पुस्तक बहुत ही प्रिय थी, घर छोड़ने पर यही एक मात्र पोथी उनके साथ थी। श्रीडाक्टर साहिब इस साधक-कण्ठ-माला में से बहुत कुछ हिन्दी रूपान्तर तथा उल्था करने में सफल हुए हैं। यह दूसरा रूपान्तर उन्हीं की मूल-हस्त-लिपि से दिया जा रहा है, इसमें विशेषता यह है कि प्रत्येक पद श्रीठाकुर महाशय के भाव को उन्हीं के छन्द व शब्दों में हिन्दी में देते हुए, उसी प्रकार गान तथा पाठ किया जा सकता है। वर्त्तमान में लेखक, वेष लेकर झाड़ूमण्डल बृन्दावन में श्रीप्रियाशरणदास नाम से निवास कर रहे हैं। इनके वेष-गुरु श्रीश्रीराधारमणदासजी शास्त्री पंचतीर्थ महाशय के प्रोत्साहन से यह रूपान्तर हम प्रकाशित कर रहे हैं।

परिशेष में हम कालीदह निवासी बाबा श्रीकिशोरीदासजी महाराज के अनुगत शिष्य लाला प्रेमनाथजी के सुपुत्र श्रीमान् शिवनाथजी 'भगतनिवास' मौहल्ला बागवेगमसमरु, चाँदनी चौक (देहली)' को धन्यवाद देते हैं कि आपने इस पुनीत कार्य्य में अर्थ सहायता देकर महाप्रभु की बड़ी भारी सेवा की। शुभं भूयात्।

श्रीकृष्णदास बाबाजी,
कुसुम सरोवर वाले,
(मथुरा)

राम-जन्मोत्सव
चैत्र शुक्ल ६ सं० २०१४ वि०

❀ श्रीश्रीगौराङ्गविधुर्जयति ❀

अन्तिम आशा !

★

विधूय-ज्ञान-विज्ञानं दयां कुरु दयानिधे !
सहामि नो तस्य भारं न पश्यामि निजं हितम् ॥१॥

श्रीगौरांग दयासिन्धो दीनबन्धो गुणाकर !
शेषाभिलाषामेकां मे पूरयस्व निजादया ॥२॥

कीर्तने मण्डले स्वीये स्थित्वा निजगणैः सह।
भावमग्नां प्रेमसिक्तां दर्शयन्कनकच्छटाम् ॥३॥

सुशिक्षयन्भक्तियोगं देहि प्रेमधनं परम्।
अन्याभिलाषा नो काचित् विद्यते हि ममाशये ॥४॥

दासाधमः—

श्रीगोवर्द्धनपूजनोत्सव,
संवत् १९९७
(श्रीधाम वृन्दावन)

यह कृति आचार्य्य श्री वालकृष्ण गोस्वामी महाराजजी की है। उनके सुपुत्र, चित्रकलाकोविद श्री जगदीश गोस्वामी जी महाराज से प्राप्त।

❀ श्रीश्रीगौरांगमहाप्रभुर्जयति ❀

श्रीगौरनामरसचम्पू

तथा

लघुगोपालचम्पूभाषा

卐

रचयिता—कृष्णकवि

प्रकाशक—
कृष्णदासबाबाजी
(कुसुमसरोवर वाले)
मथुरा।

सम्वँत् २०१५
मार्गशीर्ष कृष्णा चतुर्दशी
न्यौछावरी ।।=)

प्रस्तुत श्रीगौरनामरसचम्पू ग्रंथ के रचयिता संस्कृत के धुरन्धर विद्वान, श्री राधादामोदरजी के अनन्य रसिक महात्मा, श्रीपादजीवगोस्वामीजी के प्रधान शिष्य श्री कृष्णकवि हैं। आप संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान होते हुए भी ब्रजभाषा के महान् पण्डित थे। आपने श्रीजीव गोस्वामीजी की गोपालचम्पू के आधार पर संक्षेप रूप से द्वादश अध्यायात्मक लघुगोपालचम्पू की रचना की। श्री राधादामोदरजी के मन्दिर में हस्तलिखित प्राचीन ग्रंथों की लाईब्रेरी में एवं बड़ौदा विश्वविद्यालय की हस्तलिखित लाईब्रेरी में इसकी कापी मौजूद है। आपने ब्रजभाषा में भी गौरनामरसचम्पू के अतिरिक्त लघुगोपालचम्पू-भाषा एवं लघुगोपालचम्पू की एक विस्तृतभाषा की रचना की। बाबा श्रीकृष्णदासजी की चेष्टा से 'गौरनामरसचम्पू' एवं 'लघुगोपालचम्पू की भाषा' ये दो ग्रन्थ मुद्रित होकर रसिक भक्तों की सेवा में उपस्थित हैं। श्रीगौरनामरसचम्पू के लिखने का समय सम्बत् १७४२ तथा लघुगोपालचम्पू का समय १७४७ से कुछ पहले अनुमान किया जाता है। क्योंकि उक्त दोनों ग्रन्थ की परिशेष समाप्ति में प्रतिलिपि का समय गौरनामरसचम्पू में सम्वत् १७४२ एवं लघुगोपालचम्पू में सम्वत् १७४७ दिया गया है। जबकि इस समय से पहले ही उन ग्रंथों की प्रसिद्धि हो गई थी। गौरनामरसचम्पू में ब्रज के तीर्थों का महत्वपूर्ण भावमय स्वरूप परिचय एवं प्रेमभक्तिजिज्ञासुओं का अपने श्रेय का परिपूर्ण ज्ञान, अनन्यता, उपास्य तथा उपासनातत्वादि का ओज पूर्ण वर्णन हैं। लघुगोपालचम्पू की भाषा में नित्यधाम गोलोक में श्रीकृष्ण की की हुई अष्टयाम लीला का गोपालचम्पू के आधार पर वर्णित है। बाबा-कृष्णदासजी ग्रन्थकार के अन्यग्रन्थों का अनुसन्धान में हैं। आप अब तक लगभग संस्कृत एवं ब्रजभाषा के ८० प्राचीन ग्रन्थ का प्रकाशन कर चुके हैं आगे इसी कार्य्य में व्रती हैं। केवल श्री गौरचन्द्र की सेवा भावना से आप इस महत्वपूर्ण कार्य्य में अग्रसर हैं। आपका समय इसी कार्य्य में व्यतीत होता है। आप सर्वदा विरक्त रूप में रहते हैं, न आपने कोई धन का संचय किया है। उनके कठोर परिश्रम का हम सराहन करते हैं, एवं प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि प्रभु उनको दीर्घ जीवित करें ॥इति॥ श्री गोवर्धनभट्ट (छोट्टनभट्ट) वृंदावन

श्रीमद्भगवद्गीता

श्रीपादविश्वनाथचक्रवर्त्तिमहोदयविरचित-
सारार्थवर्षिणीटीकया एवं श्रीयुत-
बलदेवविद्याभूषणमहोदयविरचित-
गीताभूषणभाष्येण
समलंकृता

प्रकाशक—
कृष्णदास बाबा

॥ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ॥

प्रकाशितग्रन्थसंख्या— १३६

❁ श्रीमद्भगवद्गीता ❁

श्रीपादविश्वनाथचक्रवर्त्तिमहोदयविरचित-
"सारार्थवर्षिणी" टीकया एवं श्रीयुत-
बलदेवविद्याभूषणमहोदयविरचित
"गीताभूषण" भाष्येण
समलंकृता

सम्वत्— २०२३
न्यौछावर— ४ रु ५० पैसे

प्रकाशक—
कृष्णदासबाबा
कुसुमसरोवर
राधाकुण्ड
(मथुरा)

गौरहरिप्रेस, कुसुमसरोवर, राधाकुण्ड (मथुरा)

श्रीमद्भगवद्गीता

श्रीपादविश्वनाथचक्रवर्त्तिमहोदयविरचित-
सारार्थवर्षिणीटीकया एवं श्रीयुत-
बलदेवविद्याभूषणमहोदयविरचित-
गीताभूषणभाष्येण
समलंकृता

प्रकाशक—
कृष्णदास बाबा

॥ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ॥

प्रकाशितग्रन्थसंख्या— १३६

❀ श्रीमद्भगवद्गीता ❀

श्रीपादविश्वनाथचक्रवर्त्तिमहोदयविरचित-
"सारार्थवर्षिणी" टीकया एवं श्रीयुत-
-बलदेवविद्याभूषणमहोदयविरचित
"गीताभूषण" भाष्येण
समलंकृता

प्रकाशक—
कृष्णदासबाबा
कुसुमसरोवर
राधाकुण्ड
(मथुरा)

सम्वत्— २०२३
न्यौछावर— ४ रु ५० नपैसे

गौरहरिप्रेस, कुसुमसरोवर, राधाकुण्ड (मथुरा)

धन्यवादपत्रम्

श्रीमान् डाक्टर चन्द्रशेखरपाण्डे, देवास, (इन्दौर) निवासी को एवं श्रीमान् शंकरलाल तिवारीजी (वृन्दावननिवासी) को हम हार्दिकधन्यवाद देते हैं कि दोनों ने इस गीता के प्रकाशन में सर्वप्रकार से सहायता देकर परम उत्साहित किया है, हम प्रभु से दोनों की शुभकामना चाहते हैं।

भूमिका—

जगत्प्रसिद्ध इस गीताशास्त्र में निष्काम कर्मयोग, ज्ञानयोग, अष्टांगयोग एवं भक्तियोग आदि समस्त विषयों का उपदेश है, वक्ता भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण, श्रोता रणविमुख सखा अर्जुन। जब युद्धभूमि में अर्जुन की युद्ध करने की इच्छा न हुई तब भगवान ने युद्ध में प्रवृत्त कराने के छल से इस गीता का उपदेश दिया। "समस्त उपनिषद् गौओं के दुग्ध रूप इस गीतामृत के दोग्धा श्रीकृष्ण, सुधिगण भोक्ता तथा धनुर्धारी अर्जुन वछड़ा है" ऐसा बतलाया गया है। वे वेद समूह त्रिकाण्डात्मक हैं कर्म्म, ज्ञान एवं भक्ति। उपनिषदों में भक्तितत्त्व निगूढ भाव से निहित है। उन उपनिषदों का साररूप गीताशास्त्र है तथा उपनिषदों का निगूढ़ भक्तिधन गीताशास्त्र में निहित है। तात्पर्य—उपनिषदों के सार रूप इस गीताशास्त्र में भक्तिधन निगूढतया सन्निवेश है।

अर्थात् महामूल्य भक्तिरूप परम निधि के रत्नमण्डित सम्पुट रूप यह गीता शास्त्र है। इस के प्रथम छै अध्याय में निष्काम कर्म्मयोग एवं तीसरे छै अध्याय में ज्ञानयोग है, परन्तु महानिधि के कारण तथा अत्यन्त रहस्य के कारण एवं परमदुर्ल्लभता के कारण भक्तियोग बीच में रखा गया है जो कि कर्म्म एवं ज्ञान दोनों का संजीवक रूप से अभिहित होता है।

श्रीलविश्वनाथचक्रवर्त्ती जी महोदय गौड़ीय—सम्प्रदाय के महान् आचार्य्य, विद्वद्शिरोमणि, महान् रसिक माने गये हैं। ऐसा कि गौड़ीयवैष्णव समाज ने उन को श्रीरूपगोस्वामी के पुनः प्राकट्य होना घोषित किया है। उनकी रसिकता श्रीमद् भागवत की "सारार्थदर्शिनी" टीका से व्यक्त होती है। उन्होंने इस गीताशास्त्र की टीका में रस संयुक्त सिद्धान्तामृत का प्रचुर वर्षण करा कर गीतानुभवी जनता का महान् उपकार किया है। यदि कोई

भावपूर्ण, रससंपृक्त गीताशास्त्र का भावास्वादन करना चाहें तो चक्रवर्त्तीजी की इस टीका का अवश्य अवलोकन करें। उन की रसिकता यहाँ स्पष्ट ही व्यक्त होती है कि—उन्होने टीका का सम्पूर्ण निर्म्माण कर कहीं रखा था, परन्तु उस में से चूहों ने शेष के दो पत्र खा गये। वे पुनः लिख भी सकते थे परन्तु लिखा नहीं-आप शेष ७४ से ७८ श्लोकों की टीका के बारे में कहते हैं—"अतः परं पञ्च-श्लोकव्याख्या सर्वगीतातात्पर्य्यनिष्कर्षेऽन्तिमश्लोका यत्र वर्त्तन्ते, तां पत्रद्वयीं विनायकः स्ववाहनेनाखुनापहृतवानित्यतः पुनर्नालिखम्। तां तन्मात्रवादाम्, स प्रसीदतु तस्मै नमः। इति श्रीमद्भगवद्-गीताटीका "सारार्थवर्षिणी" समाप्तीभूता सतां प्रीतये स्तादिति"

अर्थात्--"इसके आगे समस्त गीतार्थ-तात्पर्य निष्कर्षरूप अन्तिम् पांच श्लोक की व्याख्या जहाँ रक्खी हुई थी, उन दो पत्रों को विनायक अर्थात् गणेश जी ने अपने वाहन अखु अर्थात् चूहों से हरण करा लिया, भावार्थ-चूहे दो पत्र खागये। इसमें गणेश जी का क्या आशय था नहीं कह सकता, इसलिये मेंने पुनः उन पांच श्लोकों की टीका नहीं लिखी। वे गणेशजी प्रसन्न हों उनको नमस्कार" ऐसा कहकर उन्होंने अपनी सारार्थवर्षिणी टीका को समाप्त किया। कलिकत्ता "गौड़ीयमिशन" ने बडा भारी उपकार किया कि उस मिशन ने चक्रवर्त्तिजी को "सारार्थवर्षिणी" टीका का बंगाक्षर में प्रकाशन कर विद्वन्समाज के प्रत्यक्षीभूत किया। श्रीहृषीकेशशील, वि, ए, ने चक्रवर्त्तीटीका का अनुसरण से एक मर्म्मानुवाद प्रस्तुत कर छपवाया। श्रीमद्भक्तिसिद्धान्तसरस्वती जी महोदय का सम्पादकत्व में श्रीकुञ्जविहारिविद्याभूषण के प्रकाशकत्व में श्रीपाद बलदेवविद्याभूषण महोदय का "गीताभूषणभाष्य" बंगाक्षर में सानुवाद प्रकाशित हो चुका है। अस्तु मुद्रणादि में प्रेस सम्बन्धी त्रुटियाँ रह गई होंगी तो उस लिये क्षमा चाहते हैं। (कृष्णदास)

❀ श्री राधामाधवो जयति ❀

श्रीगीतगोविन्द काव्यकर्त्ता रसिकाचार्य गो०श्रीजयदेवजी के वंशज
श्री ब्रह्मगोपाल गोस्वामि प्रणीता

श्रीहरिलीला

संशोधक—

तदीयवंशज आचार्य्य गोस्वामी
श्रीयमुनावल्लभजी शास्त्री

जिसको बरसाना (कोसी) निवासी परमभक्त लाला चतुर्भुजजी
(चेतरामजी) ने द्रव्य की सहायता
देकर मुद्रित कराया।

ता:—१४ सोमवार
श्रीगौर पूर्णिमा
सं० २००५
प्रथमा वृत्ति १०००

प्रकाशक—
श्री श्री चैतन्यचरनानुचर
कृष्णदास।
मूल्य दो आना।

॥ प्राक्कथन ॥

जय रूप सनातन भट्ट रघुनाथ। श्रीजीव गोपाल भट्टदास रघुनाथ॥
भज-निताई गौर राधेश्याम। जय हरेकृष्ण हरेराम ॥

करुणामय श्री गुरुदेवजी की असीम कृपा से हम अनेक प्राचीन दुर्लभ ग्रन्थों को प्राप्त करने में समर्थ हुए हैं। तात्पर्य यह है कि श्री माध्व गौडेश्वर सम्प्रदाय में अनेक ग्रन्थ विराजमान हैं, जिनकी इयत्ता करने में कोई व्यक्ति किसी काल में समर्थ नहीं है। परन्तु यह वृहत् ग्रन्थ भंडार संस्कृत तथा वंग-भाषा में होने के कारण एतद्देशीय वैष्णवों के लिये अगम्य है। अब रही व्रजभाषा ग्रन्थों की बात सो उसकी भी कोई इयत्ता नहीं है। कुछ अल्प परिचित सज्जनों का कहना है कि माध्व गौड़ेश्वर सम्प्रदाय की व्रजभाषा में कोई बाणी विशेष नहीं हैं। परन्तु यह बात सर्वांश में सार हीन है। गंभीर खोज करने पर हमें अनेक रसिक शिरोमणि महात्माओं की बाणी व्रजभाषा में प्राप्त हुई हैं, जिनको हम क्रमशः प्रकाशित कर रहे हैं।

सम्प्रति प्राप्त वाणियों में से यह अमूल्य दुर्लभ श्रीराधामाधव लीला-रस संपुटित "हरिलीला" नामक ग्रन्थ गीतगोविन्द-कार श्रीजयदेव गोस्वामी वंशज श्री ब्रह्मगोपालजी की कृति है जो प्रायः साढ़े तीन-सौ वर्ष से भी प्राचीन है। आज बड़े सौभाग्य से उक्त श्रीजयदेव गोस्वामी वंशज श्री गो० यमुनाबल्लभजी महोदय की कृपा से यह अमूल्य ग्रन्थ रत्न प्राप्त हुआ। श्रीयुत पूज्य परम रसिक वर बाबा श्री गौरांगदासजी महाराज के कृपापात्र, वरसाना (कोसी) निवासी श्री लाला वनखण्ड आत्मज श्री लाला चतुर्भुज (चेतराम) जी के सम्पूर्ण धनसहाय से इस ग्रन्थ को मुद्रित कराने में हम समर्थ हुए हैं। भगवान् श्री श्री चैतन्य महाप्रभु आपका मंगल करें तथा भविष्य में अन्य सद्-ग्रन्थों को भी प्रकाशन करने में समर्थन करें।

विनीत प्रकाशक—

गौर-पूर्णिमा
सं० २००५ वि०

श्री बाबा कृष्णदास
कुसुम सरोवर पोस्ट राधाकुण्ड
जिला-मथुरा

श्रीश्रीगौराङ्गविधुर्जयति ।

ग्रन्थकर्ता का परिचय

श्रीमद्गीतगोविन्द काव्य कर्ता रसिक मुकुटमणि भगवान् श्रीजयदेव कविराज गोस्वामीजी को कौन नहीं जानता । आपके ही वंश में रसिकराज श्रीब्रह्मगोपाल गोस्वामि प्रभु का प्रादुर्भाव हुआ था ।

भगवच्छ्री कृष्णचैतन्य महाप्रभुजी के साथ शेषावतार श्रीमन्नित्यानन्द प्रभुजी हुए । आपके कृपापात्र परमहंस चूड़ामणि श्रीरामराय गोस्वामीजी के लघुभ्राता श्रीप्रभुचन्द्रगोपाल गोस्वामीजी श्रीचित्रासखी का अवतार हुए । आपके ही पोते इस ग्रन्थ के बनाने वाले श्रीब्रह्मगोपाल गोस्वामीजी हैं ।

वि० सं० १६ शताब्दि में फाल्गुन शुक्ला १३ गुरुवार को श्रीवृन्दावन में वंशीवट के निकट श्रीराधिकानाथ गोस्वामीजी की धर्मपत्नी सौभाग्यवती श्रीमूर्त्तिबहुजी से आपका प्रादुर्भाव हुआ । पिताजी ने स्वयं ही आपको पढ़ाया यज्ञोपवीत कराकर श्रीगोपालमंत्रराज की दीक्षा दी और अनुष्ठान कराया ।

गो० श्रीब्रह्मगोपालजी महाराज का विवाह आगरे (अग्रवन) निवासी पं० मोहनलालजी भोजेपोत्रे की पुत्री श्रीरासेश्वरीजी के साथ हुआ था । विवाह के थोड़े समय पीछे ही आपके पिता श्रीराधिकानाथ प्रभु नित्यलीला में पधार गये ।

कुछ वर्ष पीछे ही श्रीयमुनाजी की बाढ़ में आपका घर प्रवाहित होगया । तब आप सपत्नीक श्वसुर गृह में आगरे रहने लगे और

यहाँ एक मकान खरीद लिया, किन्तु एक दिन श्रीवृन्दावन की भारी स्मृति हुई और आप हिलकी भरकर रोने लगे।

पं० मोहनलालजी ने यह सब हाल देखकर कहा कि चलो श्रीवृन्दावन में दूसरी जगह ठीक करादें। इधर-उधर बात चलाने से मालूम हुआ कि श्रीवृन्दावन में गवालियर महाराज की भी ज़मीन है आप श्रीब्रह्मगोपालजी को साथ ले गवालियर पहुँचे।

जब राज दरबार में सिपाही से खबर कराई कि कोई पंडित मिलने आये हैं तो महाराज ने सिपाहो से कहा कि अभी यज्ञ में बहुत विद्वान् बुलाये थे लेकिन—"कोई भी जल की वर्षा न करा सका, अब पंडितों से मिलकर क्या करें प्रजा तो अनावृष्टि के कारण मर रही है अगर कोई चमत्कारी हों तो बुलालाओ।

सिपाही ने सारा समाचार आपको आकर सुनाया, पं० मोहन लालजी सुनकर चुप हो गये परन्तु श्री ब्रह्मगोपालजी ने हँस कर आज्ञा दी कि हम एक वार मिलना चाहते हैं।

जब राजा साहब से मुलाकात हुई तो वही प्रसंग सामने आ श्री गोस्वामीजी ने वर्षा के लिये वचन दे दिया कि आज रात १२ बजे वर्षा हो जावेगी। राजा ने आपको महल में ठहरा लिय रात आते ही वही वर्षा का समय आया, भक्तवत्सल भगव श्री राधामाधवजी ने अपने भक्त का वाक्य सत्य करने के लिये ऐ वर्षा की जो चार घंटे में समस्त प्रजा के लोग आनन्द में निम हो गये। और श्री गो० ब्रह्मगोपाल जी महाराज का जय ज कार हुआ।

गवालियर नरेश ने बहुत सा द्रव्य आपकी भेट किया औ आपको हाथीपर सवार कर श्री बृन्दावन लाये। बहुत से स्था दिखलाये किन्तु आपने श्री वृन्दावन के हरे वृक्ष न कटवाने पड़ें इ कारण एक ऊजड़ जगह के लिये आज्ञा देदी। भूपति ने वही आप भेट कर दी और कहा कि इसमें एक स्थान बनवादें इस पर आप

राजा को श्री सनातन गोस्वामीजी के भोट कम्बल की कथा सुनाकर उत्कट वैराग्य का परिचय दिया राजा ने कहा सत्य है श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुजी के सेवक ऐसे ही होते हैं यह कह आपकी आज्ञा ले गवालियर को विदा हुए।

श्रीब्रह्मगोपाल प्रभु ने श्री वृन्दावन के समीपवर्ती ग्रामों से अपनी जाति के सारस्वत ब्राह्मणों को बुलाकर शिष्य किया, और उनके ३२ घर बसाकर उस स्थान का नाम—"श्री राधामाधवजी का घेरा" रख दिया। किन्तु श्रीमान के उन ब्राह्मण सेवकों ने आपके नाम से ही उस स्थान का नाम "ब्रह्मपुरी विख्यात किया जो आज पर्यन्त विद्यमान है।

आपके वंशोद्भव श्रीमद्‌भागवतचन्द्रमा श्रीनन्दकिशोर गोस्वामीजी ने लिखा है।

श्लोक—

येन "ब्रह्मपुरी" द्विजेन्द्रवसतिवृन्दावने स्थापिता
द्वात्रिंशद्‌गृहमध्यगश्चविदितो भट्टोपनामा क्वचित्
राधामाधवमन्दिरं विरचयन्. श्रीराधिकानाथजो
गोस्वामिप्रभुवर्य एव शुशुभे श्री ब्रह्मगोपालकः (१२)
(वंश वैजयन्ती उत्तरार्द्ध)

अर्थात् जिन्होंने श्रीधामवृन्दावन में सारस्वत ब्राह्मणों की पुरी पेत की और ३२ घरों के बोच में श्रोराधा माधवजो का मन्दिर या। जो कभी भट्टजी नाम से भी विख्यात हुए वे श्रीराधिकानाथ के पुत्र गो० श्रीब्रह्मगोपालजी महाराज परमशोभायमान हुए।

आप प्रति वर्ष वैष्णवों को साथ लेकर श्रीब्रजयात्रा चार महीने री किया करते थे, और नित्य श्रीमद्भागवत की कथा द्वारा लीला ों का माहात्म्य सुनाते थे।

आपकी पद गायन में बड़ी रुचि रहती। श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभुजी के पौत्र गो० श्रीगोकुलनाथजी महाराज आपसे बहुत प्रेम करते थे इस कारण बहुत समय श्रीगोकुल में विराजमान रहे।

आपने श्रीराधा माधव भाष्य पर "वस्तु वोधिनी" टिप्पनी लिखी है जिसका कुछ अंश प्रकाशित हो चुका है और भी कितने ही ग्रन्थ हैं जिनमें से ब्रजभाषा का एक ग्रन्थ श्रीहरिलीला आपके हाथ में है।

इसमें अष्टयाम सेवा श्रीप्रियाप्रियतमजू की अष्ट सखियों की कुंजों में क्रम से वर्णन की है जो आजतक किसी वाणी में देखने में नहीं आई।

एक समय बुन्देलखंड के छतरपुर नरेश महाराजा श्रीविश्वनाथ सिंहजी के महलों में एक मास हमारी श्रीमद्भागवत कथा हुई थी। महाराजा ने यह पुस्तक हमको भेट में दी और भी हमारे घर के ग्रन्थ उनके यहाँ थे किन्तु उनके देहावसान के पीछे फिर हमारा जाना नहीं हुआ।

रसिकजन एवं गौडीय वैष्णवों से अत्यन्त आग्रह है कि वे ३ से ऊंचे साधन में इस साध्यग्रन्थ का नित्य सेवन करें और अपने अपने मन्दिरों में इसकी पदावली से सेवा करावें।

इतना ही लिखना पर्याप्त है कि छिपा हुआ यह अति प्राचीन ग्रन्थ रत्न आप सबको सहज ही प्राप्त हो गया है यही श्रीराधामाधव जी की अनन्य कृपा है।

अन्त में कुसुम सरोवर वाले परमहंस श्रीकृष्णदास बाबाजी महाराज को धन्यवाद है जो आजकल पुरातन ग्रन्थों के प्रकाशन में ही अपना अमूल्य समय दे रहे हैं। तथा उनके प्रयास से ही यह ग्रन्थरत्न प्रकाशित हो रहा है।

लेखक—

श्रीजयदेवचरणानुचर

आचार्य श्रीयमुनावल्लभगोस्वामी शास्त्री

ब्रह्मपुरी—(विहारीपुरा—श्रीवृन्दावनधाम)

मुद्रक—राजनरायन अग्रवाल बी० ए०, मॉडर्न प्रेस, आगरा।

❀ श्री श्री गौरांगविधुर्जयति ❀

भज–निताइ गौर राधेश्याम ।
जप–हरेकृष्ण हरेराम ॥

श्री श्री चैतन्यचन्द्रामृतं

परिव्राजकचूड़ामणि

श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतिपाद

विरचितं

पाटना निवासि गोस्वामि श्रीकृष्णचैतन्य

महोदयेन अनुवादितं

अर्थ सहायक—

वैष्णवदासानुदासी–राणीसरस्वतीदेवी

राजवाटी (मुंगेर)

प्रकाशकः—

बाबा कृष्णदास

कुसुमसरोवर (गोवर्द्धन) मथुरा ।

सम्वत् २००८

रथयात्रा

भूमिका

आज करुणाकरुणालय, राधा-राधारमण मिलित विग्रह, प्रेमदाता, प्रेमावतार, संकीर्तन के पिता, भगवान् श्री गौरांग महाप्रभु की कृपा रूपी महामाधुर्य्य कादम्बिनी (मेघमाला) घन घटा दिशा विदिशा समस्त भुवन में छा रही है। जिस वर्षा के प्रारम्भ मात्र से ही नवीन भक्ति शस्य समूह जीवित हो रहे हैं तथा नाना प्रकार के काम-दग्ध जगज्जीवों का तप्त हृदय शीतल हो रहा है और विश्वरूपी नदियाँ जिससे भर कर उल्लसित हो हो उछल रही हैं। इसी संबंध में कविवर मनोहरजी ने कहा है—

देखोरी इक गौरमेह ! नख सिख तें मानो धरयौ है देह॥
नृत्य करत मानो प्रेम पवन वश। नैन झरत मानों बर्षा घनरस॥
बरण बरण आभूषण राजत। मानहु विछ्लल माला साजत॥
बिच २ अट्टहास मानों गर्जनि। थरहरातहि डरी मम श्रुति शुनि॥
सींचत सजल वेलि मानों उलही। भनत मनोहर नाहिं न तुलही॥

जगत् प्रसिद्ध, जगदाधार, जगन्निवास, भगवान् गौरांग-देवजी की तथा उनके भक्तगणों की कृपा से चलायमान होकर और उनहीं प्रभु की कृपा शक्ति का स्मरण करके हम इस कराल कलिकाल के कवल में कवलित जीवों के त्राणार्थ श्रीपाद प्रबोधा-नन्द सरस्वती महोदय द्वारा विरचित "श्रीचैतन्य चन्द्रामृत" तथा "संगीतमाधव" नामक रसिक हृदय आल्हादकारी गीति-काव्य सानुवाद प्रकाशित कर भक्त तथा रसिक समाज में उप-स्थित कर सकें। यह सर्व विदित है कि श्रीकृष्णचन्द्र ने गौरांग अवतार लेकर किस प्रकार अपार करुणा का प्रकाश किया और प्रेमवन्या में जगत् को डुबाया। ऐसा किसी युग में किसी अवतार में नहीं दिखने में आया है।

हम जगाई-मधाई उद्धार के समय इस बात की साक्षी दे सकते हैं कि दोनों ने तो प्रभुवर श्री नित्यानन्दजी को प्रहार किया किन्तु आपने उनको ब्रह्मा दुर्ल्लभ निज प्रेम धन को प्रदान करने के लिये महाप्रभु से प्रार्थना की हैं। इस अवतार में अस्त्र शस्त्र का धारण तो दूर रहा किंतु अस्त्र शस्त्र का प्रहार खाकर जग दुर्ल्लभ हरिनाम दिलाया (विलाया) गया। श्री गौरांगदेव की कृपा महिमा में अनिवार्य्य अद्भुत शक्ति है। साधारण भोले भाले मनुष्यों को किसी मार्ग में ले आना कठिन नहीं है परन्तु कठिनाई तो इस बात की है कि जो लोग विद्या बुद्धि से संसार के भूषण स्वरूप हैं उन व्यक्तियों को अपने मत में लाया जाय। प्रभु की करुणाशक्ति इस प्रकार की है कि बिना यत्न द्वारा ही सहज रूप से वे सब विद्या बुद्धि सम्पन्न मनुष्यगण अन्य विषयों से मन को हटा कर प्रभु के श्रीचरण में लगाकर अपने को प्रेम धन के धनी बना कर परम कृतार्थ और जगत् प्रसिद्ध हो गये। जो जगत् भूषण महापुरुष गण श्री गौरांग महाप्रभु के चरण कमल का आश्रय लेकर जगत् उद्धार करने में परम सामर्थ्यवान् सिद्ध हुए थे उन सबमें श्री प्रबोधानन्द सरस्वती महोदय भी हैं।

वे काशीधाम में सन्यासी वेष में विराजमान थे। उनके बाल्यकाल का इतिहास विशेष ज्ञात नहीं हैं। वे बाल्यकाल से ही अपनी असाधारण कुशाग्र बुद्धि द्वारा परम पण्डित बन गये थे तथा कालक्रम से कठोर ज्ञान (ब्रह्मानुसन्धान) और योग के साधन बल से सिद्ध होकर सन्यासी मण्डली का शिरोमुकुट होगये थे। उनका सन्यासी-आश्रम का नाम प्रकाशानन्द सरस्वती था। यह सरस्वती सम्प्रदाय सन्यासी सम्प्रदाय में प्रधान माना जाता है। इस प्रकार सरस्वती महाशय अपने

विद्या, ज्ञान और योगबल से सर्वत्र प्रसिद्ध एवं परम आदृत हो गये। उनके प्रभाव से उस समय काशी धाम शास्त्र-शिक्षा का प्रधान केन्द्र हो गया था उनके पास भारतवर्ष के नाना प्रदेशों से नाना प्रकार के छात्र समूह आकर कोई स्मृति, कोई दर्शन, कोई वेद वेदांत का शिक्षा पाकर बड़े बड़े पण्डित हो जाते थे। अन्यान्य स्थानों से हजारों विद्वान सन्यासी आकर सरस्वती जी से वेदान्त का अध्ययन करते थे। यात्रीगण भी विश्वेश्वर जी के दर्शन के उपरान्त सरस्वतीजी का चरण दर्शन कर अपने को परम पवित्र तथा कृतार्थ मानते थे।

विद्वन्मण्डली उनके साथ शास्त्रलाप का अवसर मात्र प्राप्त होने पर अपने को सफल मनोरथ तथा परम कृतार्थ मानती थी। सरस्वतीजी के साथ शास्त्र विचार करना तो दूर रहा यदि किसी दिग्विजयी का काशीधाम में आगमन होता था तो वह उनके दर्शन तथा प्रताप के श्रवण मात्र से ही अप्रतिभ और निस्तेज हो जाता था। समस्त शास्त्रों के साथ साथ वेदान्त शास्त्र में सरस्वती का विशेष पाण्डित्य था। उस समय उनके जैसे और न्याय वेदान्त के पण्डितों में भारत वर्ष भर में केवल "सार्वभौम-भट्टाचार्य्य" अतिरिक्त और कोई न था। उस समय के ये दोनों ही सर्वश्रेष्ठ अद्वितीय दार्शनिक पण्डित माने जाते थे। उन में से सार्वभौमभट्टाचार्य्य महोदय तो पहिले से ही प्रभु के शरण में आगये थे, परन्तु यह दार्शनिक सिद्धान्त शंकर मत के सम्पूर्ण आधार पर था जगत् को मिथ्या जानना, उपासनातत्व को द्वैत प्रपञ्च रूप समझना, अपने को ब्रह्म रूप मानना हो मुख्य साधना थी। इस प्रकार श्रीप्रकाशानन्द जी काशीधाम में अपने परिकर वर्ग के साथ मायावाद वेदान्त चर्चा में समय बिताते हुए बिराजमान थे। इधर ठीक ऐसे हि समय पर

श्रीनन्दनन्दन श्रीकृष्ण अपनी प्रेयसी श्री-राधिका के भावरस का आस्वादन करने के लिये तथा निज अनर्पित प्रेम धन का जीव मात्र में वितरण करने के लिये (जो कि अपने में नहीं होता था) साथ ही साथ कलियुग का परम धर्म्म नाम संकीर्त्तन प्रचार करने के लिये मधुर गौरांग रूप से श्रीधाम नवद्वीप में प्रकट हो कर २५ वत्सर वयः क्रम में ही जीव मंगलार्थ सन्यास ले कर माता की आज्ञानुसार नीलाचल धाम में विराजमान हो रहे थे। श्रीहरि नन्दनन्दन आप राधिका-भाव से विभावित तथा राधाकान्ति से ढक जाने के कारण श्यामता के स्थान पर गौरांग रूप परम मनोहर हो कर अवतीर्ण थे। भीतर तो श्यामल नन्दनन्दन और बाहर में तप्त कांचन गौरांग वर्ण यह परम मनोहर झाँकी अति अद्भुत है। कभी तो प्रेम के बेग में हाथ पाँव सिकुड़ जाने का कारण कूर्म्माकृति हो जाते थे और कभी अंग प्रत्यंग की सन्धियाँ छूट जाने पर दीर्घकार हो जाते कभी तो तप्त सुवर्ण पिण्ड के बराबर हो जाते कभी अपने कमल नयनों से अश्रुधारा इस प्रकार बहाते कि धरती कीचड़ होकर पनारे रूप से बहती थी उस के सामने जलयत्र पिचकारी तो कुछ नहीं है कभी अश्रुधारा से बड़े बड़े गढ़े भर जाते थे इस विषय में भक्तमाल के टीकाकार श्रीप्रियादासजी कहते हैं कि "आवै कभू प्रेम हेम पिण्डवत तन होत कभूं संधि संधि छुटि अंग वढ़ि जात हैं, और एक न्यारी रिति आंसू पिच कारी मानों उभै लाल प्यारी भाव सागर समात है। ईशता वखान करौं सो प्रमाण याकौ कहाँ जगन्नाथ क्षेत्र नेत्र निरखि साक्षात है, चतुर्भुज षटभुज रूपलै दिखाय दियो दियो जो अनुपहित वात वात पात है"—भक्तमालटीका देखिये।

श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी जीने श्रीचैतन्य चरिता

मृत ग्रन्थ में जो वर्णन किया है ठीक उस का उल्था रूप सुन्दर श्याम महोदय विरचित ब्रजभाषा के चैतन्यचरितामृत में—जो हाल में प्रकाशित हो चुका है—

प्रभुके उद्भट नृत्य मधि अद्भुत आहि विकार ।
आठौं सात्विक भाव जे उदै भयौ इक बार ॥
मांम छिद्र सह रोम कै वृन्द सुपुलकित सोई ।
जानौं सेहड कौ सुतरु कंटक आवृत होय ॥
एक एक रद कंप लखि लागे हिय भय जोय ।
खसि परि हैं सब रदन यौं जानैं सबही लोय ॥
सबै अंग प्रस्वेद करि चलै रक्त की धार ।
ज ज क्र क्र ज ज ज गगद गद सुवचनजु कंठ मभार ॥
जनु धारा जलयंत्र की वहै अश्रु जल सोय ।
सब के भीजे अंग सकल आस पास जे लोय ॥
गौर कांति वपु देखिये कबहूँ अरुण निदान ।
कबहुँ कान्ति सुदेखिये मल्ली कुसुम समान ॥
स्तब्ध होय कबहूँ सुप्रभु परे भूमि पर सोय ।
हाथ पाँव नाहिन चलैं सुष्क काष्ठ सम जोय ॥
कबहूँ परिकै भूमि प्रभु होय स्वास विन आहि ।
प्राण क्षीन सब जननि के होय देखि करि जाहि ॥
कबहूँ नासा नेत्र जल परै वदन तैं फैन ।
अमृतधारा मानौ बहै चन्द्रबिम्ब तें ऐन ॥

मध्यलीला १३ परिच्छेद ।

श्रीलकविकर्णपूर महोदय ने अपने "श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक" ग्रन्थ में वृन्दाबन में प्रभु की प्रेमोन्माददशा का वर्णन इस प्रकार किया है ।

क्वचन च यमुनाबनान्तलक्ष्मीमवकलयन्ननुरक्तिमुक्तकंठम् ।
बिलपति परिरभ्य लोभ्यबाहुः प्रतिलतिकं प्रतिसाखि सोऽखिलेशः॥

मदमुदितमयूरकंठकान्तद्युतिमभिवीक्ष्य कुतश्चिदप्यकमात् ।
स्खलति लुठति वेपते विरौति द्रवति विषीदति हन्त मूर्च्छतीशः ॥
क्वापि वत्सकुलमुच्चलपुच्छं धावमानमनुवीक्ष्य बनान्तः ।
कंटकावलिनि वर्त्मनि सद्यो वीक्षितांगमभितः स्खलतीशः ॥
कुञ्जसीमनि कदापि यदृच्छा मूर्च्छया निपतितस्य धरण्यां ।
आलिहन्ति हरिणा मुखफेणानापिबन्ति शकुना नयनाम्भः ॥

वृन्दाबन में किशोरीभावाविष्ट, अखिलेश, श्री गौरहरि कभी तो यमुनातट बनों की शोभा देख प्रत्येक वृक्ष, लता को आलिङ्गन कर विलाप कर रहे हैं। कभी तो मदमत्त मयूर की रमणीय कंठशोभा देख गिरते हैं, लोटते हैं, कांपते हैं, चिल्लाकर रोते हैं, भागते हैं, मूर्च्छित हो जाते हैं। पूँछ उठाकर धावमान वत्सगण को देख कभी तो, कंटक मार्ग में गिरते हैं, जिससे समस्त अङ्ग-प्रत्यंग क्षत-विक्षत हो जाता है। कभी तो कुञ्ज प्रांत में मूर्च्छित होकर धरती पर पड़े रहते हैं। उस समय हरिणगण आकर मुख के भाग और पक्षिगण नयन जल पान करते हैं।

इस प्रकार यह प्रेमवन्या नवद्वीप से उठी और देखते-देखते हिमालय से कुमारिका तथा सिन्धुनद से मणिपुर पर्य्यन्त समस्त भूभाग इसमें डूब गया। इसकी शीतलता से पृथिवी के जीव मात्र प्रेम के पात्र बन गये। कर्म्म, ज्ञान, योगादि के सुदृढ़ दुर्ग समूह इस प्रेमवन्या में बह गये। नास्तिक, तार्किक, अधर्म्मी, परनिन्दक, मिथ्या प्रचारक प्रभृति दुष्ट जलचर न जाने कहाँ छिप गये। इस प्रेमवन्या के स्रोत में पड़कर भक्त हंस निरन्तर कलोल करने लगे। कोई भासने लगे, कोई डूबने लगे, कोई महानन्द से तैर कर श्रीवृन्दाबन अभिमुख चलने लगे। इस प्रेमवन्या का सरस जल पान कर कोई पागल की तरह नाचने और कोई उन्मत्त की तरह गानादि करने लगे। कोई हँसने कोई रोने

लगे। यहाँ तक कि तार्किकादि दुष्ट जलचर समूह सरस बनकर प्रेम के पात्र बन गये। इस प्रकार इस प्रेमवन्या ने समस्त विश्व को प्लावित कर दिया,केवल महान् तिमीरूप एक प्रकाशानन्द सरस्वती जी का ही अधिकार इस काशी राज्य में न था। अभी मानो उनका प्रवेश वर्जित था। काशी धाम सरस्वती जी के प्रभाव से अटूट था, भारत के समस्त सम्प्रदाय गौरांग प्रेम में उन्मत्त हो गये। परन्तु स रिकर सरस्वती महाशय ही बाकी रह गये। उनने अपने परिकर वर्ग को अपनी आपत्त में रखने के लिये नाना प्रकार की चेष्टाओं का आश्रय लिया। सर्वदा शिष्यों को कहने लगे कि शिष्यगण। गौरांग का भाव कालि (वूचरू की भाव) काशी में नहीं बिकेगा। देखो गौराङ्ग संन्यासी होकर संन्यासी धर्म्म-वेदान्त पाठादि बिलकुल विसर्ज्जन करके भावुक की तरह केवल लोक प्रतारण करता हुआ नाँच कूद करता घूम रहा है। कुछ निरीह भोले भाले लोगों को भुला कर संकीर्त्तन में नचाना क्या संन्यासी का धर्म्म है? बड़ी आश्चर्य की बात है कि सार्वभौमभट्टाचार्य सा जगत् विजयी विद्वान्, परम प्रामाणिक, वृद्ध, पूज्य, एक बालक संन्यासी के मत में आकर पागल हो रहा है। तुम सबको सावधान किए देता हूँ कि किसी भी प्रकार गौराङ्ग की चतुराई में मत पड़ना। उसका मत अत्यन्त असार तथा शास्त्र विरुद्ध है। इस प्रकार जैसे २ गौराङ्गदेव की महिमा ऐश्वर्य्य-अद्भुत कार्यकलाप जनता में फैलने लगे वैसे ही वैसे सरस्वती जी का ईर्षानल दाँब २ कर जल उठने लगा। अब केवल प्रभु की निन्दा चर्च्चा ही नित्यक्रिया रूप मान लिया। सर्वदा उनकी चेष्टा बह रही कि एक बार चैतन्य का साक्षात् हो बस उसे परास्त कर अपने मत में करलूँ, जिससे भ्रान्त उनके साथीगण भी उसका मत छोड़ कर मेरे मत

में आय जावेंगे, अन्त में सरस्वती जी ने धैर्य्य शून्य होकर पत्र द्वारा ही विचार विनिमय प्रारम्भ कर दिया। उसमें जब वे परास्त होने लगते तो अन्त में क्रोधान्ध होकर पत्र द्वारा गाली देने लगे। प्रेमावतार प्रभु ने गाली का कुछ उत्तर नहीं दिया। सरस्वती जी का उद्धार करने के लिये भक्तों ने प्रभु से बहुत कुछ कहा किन्तु प्रभु मन्द हँसी से मुस्काने लगे।

अब करुणावरुणालय श्रीप्रभु गौराङ्गदेव श्रीबृन्दाबन यात्रा के लिए काशीधाम में उपस्थित हुए, तपनमिश्र के घर में आपकी स्थिति हुई। प्रकाशानन्दजी से बहुत कुछ निन्दावाद सुनना पड़ा। वहाँ के भक्तगण भी अधैर्य्य होने लगे। उनके उद्धार के लिये भक्तों ने बहुत कुछ प्रभु से प्रार्थना की। किन्तु उनके उद्धारके लिये शुभ समय नहीं आया था और प्रभु वृन्दाबन के लिये चल दिये। लौटते हुए भगवान चैतन्यदेव बृन्दाबन से प्रयाग होकर काशीधाम में आये और फिर वहाँ कुछ दिवस निवास करने लगे।

प्रभु के किसी भक्त ने किसी उत्सव के उपलक्ष में समस्त सन्यासीगण तथा सगण महाप्रभु का भी आह्वान किया। यद्यपि अब तक प्रभु ने काशी में किसी संन्यासी मण्डल का निमन्त्रण नहीं ग्रहण किया था तो भी आज सरस्वती जी के उद्धार का शुभ समय जानकर निमन्त्रण मान लिया। संन्यासी समाज इकट्ठे हुए। अब श्री सरस्वती जी संन्यासी मण्डली के बीच तारायों में चन्द्रमा की तरह ऊँचे आसन पर बैठ कर गौराङ्गदेव की प्रतीक्षा करने लगे। सगण प्रभु हरिबोल बोलते हुए वहाँ पर आये तथा सबसे नीचा स्थान जहाँ कि संन्यासीगण पाँव धोते हुए थे वहाँ बैठने लगे। उनका कोटिसूर्य्य सदृश तेज तथा तप्त-कांचन अङ्ग छटा को देख कर सरस्वती जी निरुत्तर, निरुत्साह,

और निस्तेज होगये। साथ ही साथ इस प्रकार दीनता भाव को देखकर आश्चर्य चकित भी हो गये। उनका ऊँचा अभिमान पर्वत डह गया। गौरव, गाम्भीर्य्य रूपी शिखर गिरने लगे। वे भीतर ही भीतर कांपने तो लगे, परन्तु गौरव शिखर को बड़ी चेष्टा के साथ रोकने लगे। अन्त में उन्हें ऊँचा आसन से उठना पड़ा। आपने उठकर प्रभु से कहा श्रीपाद! ऊँचे आसन पर आइये। प्रभु ने कहा—मैंने तो भारती सम्प्रदाय में संन्यास वेष लिया है। भारती सम्प्रदाय सबसे नीचा है। मेरा बैठने का स्थान यही है। तब सरस्वती जी ने हाथ पकड़ कर प्रभु को उठाया एवं ऊँचा आसन दिया। दोनों में शास्त्र विचार हुआ। प्रभु ने मायावाद विवर्त्तवाद का दूषण देकर परिणाम बाद की ही स्थापना की। परिशेष में सरस्वती जी को पराजित होना पड़ा। अब तो प्रभु "हरिबोल" "हरिबोल" कहकर भुजा उठाकर नृत्य करने लगे। अन्त में सरस्वती जी भी भुजा उठाकर नाचने लगें। साथ ही साथ संन्यासी मण्डली भी "हरिबोल-हरिबोल" कहकर नाचने लगी। इस प्रकार काशी नगरी आज तुमुल हरि संकीर्त्तन से गूंज उठी। आज महाप्रभु श्रीकृष्ण-चैतन्यदेव ने प्रकाशानन्द सरस्वती जी पर परिपूर्ण कृपा की। अब तो कृपाशक्तिवन्या के भँवर में पड़कर श्रीसरस्वती जी डूब गये। प्रेमोन्मत्त होगये। मेरा उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये, कहकर प्रभु के श्रीचरण पकड़ कर वे रोने लगे। प्रभु ने यथेष्ठ कृपा कर उन्हें चिरकाल के लिये अपनाया। वे भी चिरकाल के लिये सगण प्रभु चरण में वीक गये। काशी दुर्ग जय हुआ। उन्हें प्रभु ने प्रकाशानन्द के स्थान पर प्रबोधानन्द नाम देकर वृन्दावनके लिये भेज दिया। इस विषयमें विशेष जानने कीइच्छा हो तो चैतन्यचरितामृतादि ग्रन्थ देखें। श्रीपाद सरस्वतीजी व्रज-

लीला में तुङ्गविद्या सखी माने जाते हैं। यहाँ शंका हो सकती है कि वे प्रभु विमुख होकर मायावादमें किस प्रकार आगये। इसका समाधान यह है कि यह सब प्रभु की इच्छा से ही हुआ। इस प्रकार विपरीत भाव देकर इनके द्वारा असंख्य मायावादीयों का उद्धार करना प्रभु का गूढ़ आशय था। जगत में सब कोई इस बात को जानेंगे कि प्रभु ने सरस्वती जी के बराबर मायावाद के अद्वितीय विद्वान् का उद्धार कर असंख्य मायावादीयों को निज प्रेमामृत पान कराया है। यह प्रभु की एक लीला है। इस लीला की पूर्त्ति के लिये भक्त भी विपरीत भाव का आश्रय लेता है। जय विजय के प्रसंग में हम यह सब बात अनुभव कर सकते हैं। जब प्रभु की युद्ध लीला करने की इच्छा हुई तथा जब आपने अपने प्रतिद्वन्दी किसी को नहीं देखा तब कुछ प्रभु में अपूर्त्ति भाव आया। क्योंकि इच्छा शक्ति की पूर्त्ति न हो सकी। इस अपूर्ति भाव को दूर करने के लिये केवल प्रभु सुख में तात्पर्य्य रखने वाले जय विजय ने अपने अनुकूल भाव को छोड़ कर प्रतिकूल दैत्य भाव का ग्रहण किया जिससे प्रभु का सुख हो, नहीं तो जय विजय से प्रभु पार्षद कदाचित् दैत्य नहीं बन सकते थे। ऋषि श्राप तो छल मात्र है, बैकुण्ठ में उसका संपूर्ण अभाव है। जब सरस्वतीजी अपने पूर्व स्वरूप में आगये तो उनका ढका हुआ पूर्व भाव जाग्रत होने लगा। वे अपने प्राणाधार प्रभु को पहचान गये। तुरन्त ही सबको तिलाञ्जलि दे वह केवल प्रेम पथ के हो पथिक बन गये। प्रभु की प्रेम-मदिरा पीकर वे हँसने लगे, रोने लगे, नाचने लगे, कूदने लगे, उन्मत्त होने लगे। उस प्रेमोन्माद दशा में आकर प्रभु के गुण महिमा सूचक श्लोकों का वर्णन करने लगे, जो "श्रीचैतंन्यचन्द्रामृत" करके प्रसिद्ध है, व्यासजी की समाधि भाषा होने के कारण

श्रीभागवत जिस प्रकार सर्वोपरि माना जाता है, प्रेमोन्मत्त अवस्था में गाने के कारण जैसा कि विल्बमंगल का कृष्णकर्णामृत सर्वोपरि ऊंचा ग्रन्थ माना जाता है, ठीक उसी प्रकार प्रेमोन्मादन अवस्था में आकर गान करने के कारण "यह चैतन्यचन्द्रामृत" भी सर्वोपरि ग्रन्थ माना जाता है। यों तो गौड़ीय आचार्य्यों में किसी ने ब्रज की उत्कर्षता किसी ने राधा की उत्कर्षता किसी ने महाप्रभु की उत्कर्षता दिखायी है। परन्तु सरस्वतीचरण ने एकाधार सब की उत्कर्षता दिखायी है। उनके द्वारा विरचित "वृन्दाबन शतक" देखने से पता चलता है कि ब्रज उत्कर्षता वर्णन करने में वे सर्वोपरि सिद्ध रूप हुए। ब्रज महिमा वर्णन करने में—"वृन्दाबन शतक" छोड़ कर न अब तक कोई ग्रन्थ हुआ न होगा। सुनते हैं कि वृन्दाबन शतक की संख्या १०० है। उनमें से नवद्वीप धामवासी श्रीयुक्त हरिदासदास बाबाजी महाराज कर्तृक सत्तारह शतक सानुवाद बंगाक्षर में प्रकाशित हो चुके हैं। अवशिष्ट शतकों का कोई पता नहीं है। सरस्वती जी केवल गौरनिष्ट व ब्रजनिष्ठ ही न थे, आप राधिकानिष्ठा में भी महान् हुए। मधुसूदनदास अधिकारी "श्रीवैष्णवसंगिनी" कार्य्यालय-एलाटी पोस्ट-जेला हुगली महोदय द्वारा बंगाक्षर में प्रकाशित राधारससुधानिधि ग्रन्थ का अनुवाद देखने से इस बात का पता चलता है।

आप ग्रन्थकार भी चैतन्यचन्द्रामृत में कहते हैं कि—

यथा यथा गौरपदारविन्दे विन्देत भक्तिं कृतपुण्यराशिः।
तथा तथोत्सर्पति हृद्यकस्माद्राधापदाम्भोजसुधाम्बुराशिः॥

कृत्य पुण्यपुञ्ज फल से श्रीगौराङ्ग पदारविन्द में भक्ति लाभ होता है। गौराङ्गभक्ति जिसकी यादृश परिमाण से उदय होती है उधर उसकी तादृश परिमाण में प्रेमसुधासागर राधाचरण कमल का उच्छ्वास हृदय में उदय होता है। —कृष्णदास.

❀ श्री श्री गौरांगविधुर्जयति ❀

भज–निताइ गौर राधेश्याम ।
जप–हरेकृष्ण हरे राम ॥

श्री श्री सङ्गीतमाधवम्

परिव्राजकचूड़ामणि

श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतिपाद

विरचितं

वृन्दाबन निवासि गोस्वामी श्री रासबिहारी शास्त्री
नव्यव्याकरणाचार्य्य, काव्यतीर्थ,
आयुर्वेदाचार्य्य महोदय द्वारा
अनुवादितं

—❀—

अर्थ सहायक—

वैष्णवदासानुदास–रघुनन्दनप्रसादसिंह

(राजा, सर) के टी०
राजवाटी (मुंगेर)

प्रकाशकः—

बाबा कृष्णदास

कुसुमसरोवर (गोवर्द्धन) मथुरा ।
सम्वत् २००८
रथयात्रा

दो शब्द

आज गुरुगौराङ्ग की कृपा से श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वतीजी के द्वारा विरचित "श्रीसङ्गीतमाधव" नामक गीतिकाव्य भी अनुवाद के साथ प्रकाशित कर रसिक प्रेमीजनों के समक्ष उपस्थित कर सका हूँ। अवश्य ही इस बात को सब कोई स्वीकार करेंगे कि ग्रन्थकार सरस्वती महोदय-युगल केलि निकुञ्ज विलास-वैभव वर्णन करने में परम सिद्धमुख हुए। इनके द्वारा विरचित यह "सङ्गीतमाधव" नामक गीतिकाव्य देखने से पता चलता है कि इन्होंने सचमुच ही अपने पूर्वाचार्य्य श्रीजयदेव गोस्वामी विरचित "गीतगोविन्द" काव्य को ही सामने रखकर ठीक उसी के समान दूसरे गीतगोविन्द की रचना कर दिखायी। विद्वान् समाज में यदि किसी की धारणा है कि गीतगोविन्द सा दूसरा काव्य नहीं बन सकता है तो उनसे प्रार्थना है कि वे इस "सङ्गीतमाधव" ग्रन्थसे गीतगोविन्द को तथा गीतगोविन्दसे सङ्गीतमाधव को मिलाकर देखलें तथा हृदयबद्ध भूल धारण को भूल जावें। अधिक क्या कहें–विद्वानोंके आगे ग्रन्थ प्रस्तुत है। यह गीतिकाव्य गीतगोविन्द के अनुकरण पर रचा होने पर भी स्थल विशेष पर अपनी रचना परिपाटी और शब्दविन्यास-प्रणाली में अधिक सुललित तथा चित्त चमत्कार रूप है। यह ग्रन्थ पहिले हमारे गुरुस्थान "श्रीराधारमणबाग-समाजबाड़ी-श्रीधाम नवद्वीपसे बंगानुवाद के साथ बंगाक्षर में प्रकाशित हो चुका है। सम्प्रति-गौरनिष्ठ, राजा रघुनन्दन प्रसादसिंह, मुंगेर निवासी के आग्रह से तथा उन्हीं के सम्पूर्ण आर्थिक सहायता से अब यह ग्रन्थ हिन्दी

अनुवाद के साथ देवाक्षरों में प्रकाशित हो रहा है। परिशेष में वृन्दाबन निवासी श्रीयुक्त मान्यवर, गोस्वामी श्री रासबिहारी शास्त्री महोदय के हम परम आभारी हैं कि आपने अपने समय को इस ग्रन्थ के अनुवाद कार्य्य में लगा कर तथा प्रकाशनार्थ ग्रन्थ का सम्पूर्ण अनुवाद करके हमें चिर बाधित किया। निकुञ्ज विलास-वैभव का सम्पूर्ण अनुभव तब तक नहीं हो सकता है जब तक महाप्रभु में सम्पूर्ण न अनुराग हो। इसलिये ही हमने चैतन्यचन्द्रामृत तथा यह सङ्गीतमाधव ग्रन्थ दोनों एक संग ही प्रकाशित करके एक ही जिल्द में ग्रथित कर दिये हैं—यद्यपि श्रीसङ्गीतमाधव ग्रन्थ निकुञ्ज-विलास रहः केलि-विलास वर्णन के कारण सर्वसाधारणके पाठके लिए नहीं है तो भी हमारी प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाशन कार्य्य में मग्नबुद्धि इस दुरूह ग्रन्थ रत्न का प्रकाशन करने में प्रवृत्त हुई। आशा है रसिक समाज इस अद्भुत ग्रन्थरत्न को कंठहार रूप से ग्रहण करेंगे। बाबा केशवदासजी, भागवत निवास, वृन्दाबन के द्वारा-श्री गोस्वामी बनमालीलाल महोदय की लाइब्रेरी से प्राप्त "हरि-नामव्याख्या" तथा "कुञ्जकेलि-स्तोत्र" नामक दो वस्तू ग्रन्थन कर दिये गये हैं। सरस्वती महोदय द्वारा विरचित "आश्चर्य्य-रासप्रबन्ध" और कामगायत्रीव्याख्या भी हैं।

—कृष्णदास
कुसुम सरोवर।

❀ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ❀

क्षणदागीतिचिंतामणि

कविवर—

श्रीमनोहरदासजी कृत (संकलित)

卐

सम्वत् २०१७
गौरपूर्णिमा
(फाल्गुनी)

प्रकाशक—
बाबा कृष्णदास,
गवालियर मन्दिर, कुसुमसरोवर
पो॰ राधाकुंड (मथुरा)

❀ उत्सर्ग-पत्र ❀

परम माननीय, परमविरक्त, श्रीगौरगोविन्दचरणै-
कनिष्ठ, भजनपरायण, गिरिराज तरहटी पूँछड़ी
निवासी श्री बाबा गौरगोविन्ददासजी के पुनीत
स्मरण में उन्हीं के प्रिय शिष्य श्री छगन-
लालजी चौपइया वाला, गोघाट, मथुरा
निवासी की अर्थसहायता से यह
ग्रन्थरत्न प्रस्तुत होकर समर्पित
हुआ है।

—बाबा कृष्णदास
गौरपूर्णिमा (सं० २०१७)

दो शब्द !

प्रस्तुत ग्रंथ के रचयिता भक्तमाल के टीकाकार श्रीप्रिया-दासजी के गुरु कविवर मनोहरदासजी हैं। आप ने अपने इस संकलन ग्रंथ में लगभग ब्रजलीला के ४७ महानुभाव [illegible]यों के पदों का संग्रह रख कर अपने हार्द ब्रजलीला का [illegible] महत्व दिखलाया है। श्रील बिश्वनाथचक्रवर्तीजी ने भी [illegible]धर अपने पूर्वाचार्य्य महानुभावों के पदों का संग्रह कर वंग-[illegible]भाषा के पदों को महत्व दिया। दोनों ग्रंथ ही क्षणदागीतिचिंतामणि नाम से प्रसिद्ध हुए। चक्रवर्त्ती जी का संग्रह पश्चिम विभाग नाम से ख्यात है। रात्रिकाल में लीलास्मरण करने के लिये ये दो ग्रंथ लीलास्मरणकारी गौड़ीय व अन्य वैष्णवों के जीवन रूप माने जाते हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में निकुंज विहार को क्रोड़ीकृत करते हुए राधागोविन्द के शृंगार सम्बन्धी ब्रजलीला का सरस वर्णन है। यह ब्रजलीला ही सर्वोपरि तथा निकुञ्ज विहार व नित्य-विहार का प्राण रूप है इसे सुदृढ़ बनाने के लिये ग्रंथकार ने नाना कवियों के पदों का उद्धरण देकर अपने ग्रंथ को सरस बनाया है। कवि ने हर क्षणदा के पहले अपने उपास्यदेव भग-वान् श्रीगौरचन्द्र महाप्रभु के वन्दना रूप मंगलाचरण किया है जो कि गौड़ीय सम्प्रदाय की परिपाटी है जिसे "गौरचन्द्र" कहा जाता है।

पूर्वविभाग की क्षणदा में—

कृष्णा प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा पर्य्यन्त तीस क्षणदा हैं जो कि श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती जी के द्वारा संकलित है। इस में क्रमशः (१) संक्षिप्तसम्भोग, (२) वयः सन्धि, (३) मुग्धा-नायिका, (४) रूप-विरह, अभिसार, (५) संक्षिप्त-सम्पूर्ण सन्धि,

मुग्धता मध्यता सन्धि, (६) मुग्धा, (७) मध्या, (८) मध्या, (९) मध्या के संकीर्णसम्भोग, (१०) मध्या के सम्पूर्ण सम्भोग, (११) विरह्-मिलन, (१२) मिलन, (१३) मिलन, (१४) विरह-मिलन (१५) विरह्-मिलन, (१६) पूर्वराग-रूपादिवर्णन, (१७) प्रगल्भा, (१८) विरह, (१९) वासकसज्जा, (२०) मान, (२१) सखी के द्वारा भाव दशा पूछने पर नायिका के द्वारा उसका वर्णन, (२२) प्रगल्भा, (२३) सखी द्वारा कृष्णाग्रे राधा-विरहदशा तथा राधाग्रे श्रीकृष्णदशा वर्णन, (२४) मान, (२५) प्रगल्भा, (२६) मिलन, (२७) मिलन, (२८) सखीद्वारा अभिसार, (२९) अभिसार, मिलन, रास, निकुञ्जविलासादि, (३०) रास, इन विषयों का क्रमशः वर्णन है।

प्रस्तुत इस पश्चिम विभाग की तरंगदा में—

क्रमशः (१) अभिसार, रास-विहार, (२) रास, (३) अनुराग-सखीप्रेरणा, कुञ्जविहार, (४) अभिसार-कुञ्ज में मिलन, (५) श्रीकृष्ण के साथ मिलने के लिये सखी प्रेरणा-मिलन, (६) श्रीकृष्णरूपवर्णन, सखीप्रेरणा, मिलन, (७) मिलन, (८) मान, श्रीकृष्ण के द्वारा मान-मनावनी, कुञ्जविलास, (९) श्रीरूपवर्णन, सखीप्रेरणा, कुञ्जविलास, (१०) कृष्णरूपवर्णन, अभिसार, शय्याविहार, (११) कृष्णानुराग, सखी प्रेरणा, अभिसार, मिलन, शय्याविहार, (१२) सखी के द्वारा भाव-पृच्छा, अभिसार के लिये प्रेरणा, मिलन, (१३) कृष्णभाववर्णन, (१४) कृष्णरूप, सघन निकुञ्ज में विलास, (१५) मान, श्रीकृष्ण के द्वारा मनावनी, सुरतसमर, (१६) श्रीकृष्णानुराग, राधाभिसार, कुंजविलास, (१७) श्रीकृष्णभाववर्णन, सखी के द्वारा प्रेरणा, शरदविहार, (१८) व्रजरस-राधाभिसार, गहवरवन में विलास, (१९) श्रीकृष्णरूप, सखीप्रेरणा, वनक्रीड़ा, (२०) अपने मनोगत भाव

वर्णन, अभिसार, मिलन, (२१) श्रीकृष्णरूप-सखीप्रेरणा, अभिसार, कुंजविहार, शय्याविहार (पुष्प) (२२) श्रीकृष्णरूप, सखी प्रेरणा, अभिसार, गह्वरवन में निकुंजविलास, (२३) नायिका के द्वारा मनोगत भाववर्णन, मिलन, रास, कुंजविहार, (२४) कुंजविलास, (२५) वंशीध्वनि, अभिसार, मिलन-रास (व्रजयुवतियों के साथ) (२६) पुलिनविहार, रास, ललिता के द्वारा लताभवन में दोनों का शृंगारादि, (२७) सखीप्रेरणा, नृत्यविलास-रास, (२८) रासक्रीड़ा, (२९) रात-नृत्य-मण्डलीनृत्य, (३०) शरदरास।

इस पश्चिमविभाग की वाणदा में—

मनोहरदासजी के २१, चतुर्भुजदासजी के १०, कृष्णदास के १५, हरिवल्लभ के ६, गोपाल के १, नन्ददास के १४, बिहारिणीदास के ४, गोविन्दप्रभु के १३, स्यामसखी के १, नागरीदास के २, सूरदास के ६, सूरदास मदनमोहन के १७, मुरारीदास के ६, दामोदरहित के ४, हितहरिवंशजी के २४, कुंभनदास के ५, स्वामी हरिदास के ५, सदानन्द प्रभु के ३, हितमोहन के १, परमानन्द के ७, व्यासजी के ३, चतुरबिहारीजी के १, वल्लभजी के ६, विद्यापति श्रीगोपाल के २, गिरिधर के १, जादोप्रभु के १, विठलविपुल के ३, गदाधरप्रभु के ४, श्रीरामरायजी के ४, हरिनारायण श्यामदास के १, गोवर्द्धनेश के १, जगन्नाथ कविराय के ४, बनवारी के २, नरवाहन के १, सीलचन्द्र के १, कविमण्डन के १, हितभगवान के १, किशोरदासजी के २, नवलसखी के २, मथुराहित के १, नामदेव के २, हितअनूप के १, जनहरिया के १, हितब्रजलाल के १, इस प्रकार कुल पद २२३ हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में ग्रन्थकार ने यह दिखलाया है कि-ब्रजरस ही राधा के साथ श्रीकृष्ण-विहार का महान हृदय है। यह ग्रन्थ ब्रज-लीला को लेकर चला है। सब ही आचार्य्य ब्रजलीला के उपासक हैं इस बात को सुदृढ़ एवं अपने इस व्रज उपासना को परिपुष्ट के लिये ही ग्रन्थकार ने बहुत महानुभावों के पदों का उद्धरण किया है। इस में अभिसार, खण्डिता आदि नाना भावों का वर्णन है जोकि नित्य-विहार के महान पोषक हैं। प्रथम क्षणदा में-मनोहरजी के पद में "करत सिंगार चली वर भामिनी कौन गनै काहू की वरजनि" "मति कबहूँ लखि पावै गुरजनि" (दूसरा पद) कृष्णदास जी के पद में-"रास रंग लाल संग नृत्यत ब्रजभामिनी" (चौथा पद) "नृत्यत रास में गोपाल संग मुदित घोष नारी" (पांचमा पद)। द्वितीयक्षणदा में-नन्ददास के पद में-"इन बाँसुरी माई सबै चुरायो हरि तो चुराये होते एक ले चीर। असन वसन अरु श्रवण नैन मन लोक लाज कुल धरम धीर" (दूसरा पद)।

तृतीय क्षणदा-दूसरे पद में "तूतौ बार बार नन्द घर उझकत कत आवत जात। संध्या समय फिरि फिरि पाँव धरत जानो न जात यह भेद बात" (चतुर्भुज प्रभु), तीसरे पद में-"काछनि काछि गायनि पाछें मध्य मंडली आवैं"। (गोविंददास)

चौथा पद में अभिसार वर्णन है "निसि के शत्रु सब तेरेरी भामिनी मुखर नूपुर लेउ उतारी" (कृष्णदास प्रभु),' आठमाँ पद में—"नदनन्दन वृषभानुनन्दिनी नेकु न चाह छुटी" (सूरदास जी)।

चतुर्थी क्षणदा में- "लाल वैठ मग जोवत" "तातें छाडि दै निठुराई" यहाँ मान है। (तीसरे पद)। चौथे एवं पंचम पद

में मान वर्णन है। पंचमी क्षणदा में-तीसरे पद में-"मोपै हिलग हिये में हूली कहा करे कुलकानि" (सूरदासजी)।

पांचमा पद में-"ता बिनु कुंवरि कोटि वनिता युत मथत मदन की पीर" (हरिवंशजी)

षष्ठी क्षणदा-चौथा पद में-"कान्ह बोलावति सुन मृगनैनी राधा ब्रजभामिनी" (कृष्णदासजी)।

सप्तमी क्षणदा दूसरे पद में पूर्वराग वर्णन है। "जा दिनतें देखें इन नैननि ता दिनतें मोहि अधिक चटपटी"(परमानंदजी)। चतुर्थ पद में-"अति विह्वल ह्वै परे धरणि धुकि तरुण तमाल पवन के जोर। कहुँ मुरली कहुँ लकुट मनोहर कहुँ पट कहुँ चन्द्रिका मार (सूरदासजी)। पाँचमा पद में-"आकुल भई सुनि पिय की पीर"(वल्लभजी)। इन पदों में विरह का वर्णन है।

अष्टमी क्षणदा-छठा पद में—"जदपि वहु नायक कहु न मन अटके तेरे गुण रूप मोहै तोही सों री भाँवरि" (गोविंद प्रभु)। दशमी क्षणदा—दूसरा पद है-"जद्यपि मात पिता मोहे त्रासत महरी भवन में हूँ त्रण हूँ तें हरई" (सूरदास) यहाँ परकीया स्पष्ट है। पांचमा पद में-"जो तु अंग दुराय चली सग मेरे। मुख मौन ब्रत ले अधर ओट करि दसन दामिनी प्रकट तेरे" (चतुर्भुजजी)। ग्यारहवीं क्षणदा में-तृतीय पद में-"निलज भई कुल लाज गंवाई तिनसों कहा वसाई"(सूरदासजी)। चौथे पद में-"चल सखि मदनगोपाल बुलावे" (परमानंदजी)। तेरहवीं क्षणदा-प्रथम पद में-'निसि दिन तोहे जपत प्राणपति' 'छाडि दियो सब कुंजविलास विहार विहारी' (गोविंदप्रभु)। चौथे पद में-'वृन्दावन बैठे मग जोवत वनवारी (सूरदास मदनमोहनजी) पन्द्रहवीं क्षणदा—चारों दों में मान वर्णनहै।

(शुक्लाक्षणदा)—

प्रथम क्षणदा—तीसरे पद में-'जिनकैं लिये लोक निंद्रा सब मैं ले दूरि धरी" यहाँ परकीया स्पष्ट है (सूरदासजी)। चौथे पद में—'हों तो अपने ते नहि टरि हों जग उपहास करो बहुतेरो' (सूरदासजी)

छटमाँ पद में-राधा अभिसार वर्णन है (मनोहरजी)।

तृतीय क्षणदा—पहला पद में--"व्रज की खोरि सांकरी"। "जित जित हौं मग रोकत टोकत डगर तजति पग गढ़त कांकरी (सूरदासमदनमोहनजी)। दूसरे पद में—"आजु मिलें पिय सांकरो गली" (गोविन्दप्रभु)। चतुर्थ पद में—'राधा अभिसार' (वल्लभ)। पांचमा पद में-'गहवर गिरि साँकरी गली' (नागरी दासजी), पंचमी क्षणदा—'घर घर यही चवावो व्रज में मोही सो वैर सुनि सुनि श्रवणनि दुख दहिये' पहला पद में (सूरदासजी), षष्ठी क्षणदा—पाँचमा पद में—राधिका अभिसार वर्णन है। सप्तमी क्षणदा—चौथा पद में--'राधिका अभिसरति विपिन कुंजे'। "सतत गुरुलोक डर चकित आंकों भरत पथ विपथ देखत न सखिन संगे"। यहाँ परकीया स्पष्ट है।

अष्टमी क्षणदा—पहला पद में--"हौं तौ भई बाङरी मनमोहन वेगि मिलावरी" (सदानन्दप्रभु)।

अष्टम क्षणदा से पन्द्रहवीं क्षणदा पर्य्यन्त रास का वर्णन है। राधावल्लभी सम्प्रदाय के आचार्य्य हितहरिवंशजी विशुद्ध व्रजरस के उपासक हैं यह दिखाने के लिये ग्रन्थकार ने उनके पदों का उद्धरण अधिक संख्या में दिया है। इस ग्रंथ में जिन महानुभावों के पदों का उद्धरण दिया गया है उन में अधिक संख्या गौड़ीय आचार्यों की है।

कविवर मनोहरदासजी श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीजी की शिष्य परम्परा में श्रीराधारमण जी के सेवक हुए, जोकि वृन्दाबन में उस समय परम रसिक शिरोमणि करके माने जाते थे। ऐसा है कि बड़े बड़े महानुभाव आकर उनके संसर्ग से रसिक बन जाते थे। इनके विषय में प्रियादास जी ने अपने भक्तमाल-टीका के परिशिष्ट में कहा है-"रसिकाई कविताई जाहि दीनी तिन पाई" "रसिक समाज में विराज रसराज कहै" (क०६२७) श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी जी के शिष्य श्रीनिवासाचार्य्यजी, उनके श्रीरामचरण चक्रवर्त्तीजी, उनके रामसरणचट्टराजजी, उनके ग्रन्थकार कविवर मनोहरजी हैं। इनके बनाये हुए राधारमण-रससागर, सम्प्रदाय वोधिनी, रसिक जीवनि, प्रस्तुत क्षणदा-गीतिचिंतामणि ये चारि प्राप्त हैं। राधारमण रससागर का रचना काल सम्वत् १७५७ है। इससे कवि का समय स्पष्ट हो जाता है। श्रीराधारमण रससागर सम्वत् २००८ में हमारे द्वारा प्रकाशित हो चुका है। हाल में सम्प्रदाय वोधिनी भी प्रकाशित हो गई है। क्षणदागीतिचिंतामणि की हस्तलिखित प्राचीन प्रति वहु स्थानों पर मौजूद हैं। उन सब प्रतियों को मिला कर यथा साध्य प्रकाशन किया गया है। आशा है रसिक समाज इसका अनुशीलन व कंठहार कर हमारे परिश्रम का सार्थक्य करेंगे।

इति।

कृष्णदास

卐

श्री श्री गौरांगविधु र्जयति

भक्तिरसतरंगिणी

श्रीमन्महाप्रभुपार्षदप्रवर श्री श्री गदाधर पण्डित गोस्वामीजी के शिष्य श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारीजी उनके शिष्य, "श्रीजी" तथा "श्रीबलदेवजी" प्रकटाचार्य, रासलीलानुकरण का मूलाचार्य, ब्रजाचार्य, ब्रजोद्धारा-चार्य, माध्वगौड़ेश्वराचार्य्य, श्रीनारदावतार श्रीनारायण भट्टाचार्य्य विरचिता।

अनुवादक व प्रकाशक

कृष्णदास

कुसुमसरोवर (गोवर्द्धन) मथुरा

प्रथमावृत्ति १०००

झूलन तीज श्रावण शुक्लपक्ष सम्वत् २००४

मूल्य १)

गर्ग प्रिंटिंग प्रेस, हनुमान का रास्ता जयपुर।

श्रीगौरांगविधुर्जयति

दो शब्द

व्रजमाधुरी सागर का अनन्त लीलतरंग है। जिसमें प्रेम ही चिन्तामणि तथा भक्ति जलरूप है। जिस का एक ही कण रस-बादल रूप से परिणतपूर्वक कृपा पवन द्वारा प्रेरित हो कर अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड को शीतल करने में समर्थ है। करुणावरुणालय श्री किशोरकिशोरी मिलितविग्रह श्रीमन्महाप्रभु गौरांगदेवजी का प्रधान हार्द यह था कि इस महान् भक्तिरस को जो कि निरन्तर नित्यव्रज में अखण्ड भाव से विराजित है और जो नित्य व्रजविहारी किशोरकिशोरी का आत्मरूप है उस अमूल्य महाधन को जीव जगत में वितरण करें। आप श्रीराधिका भावकान्ति ग्रहणपूर्वक मनोहर गौरांगरूप से अभिन्न वृन्दावन श्रीनवद्वीप में अवतीर्ण हो कर ब्रह्मादुर्ल्लभ उस प्रेम महाधन को चराचर जीव जगत में वितरण करने लगे। आप वहुदिन से गुप्तप्राय निज क्रीड़ाभूमि श्रीव्रज को उद्धार (प्रकाश) कराने के लिये निजपार्षद श्रीरूपसनातन प्रभृति गोस्वामीगण को स्वशक्ति प्रदानपूर्वक व्रज को भेज दिये। श्री महाप्रभु का आदेश पाकर श्रीरूपसनातन प्रभृति श्रीव्रजभूमि में आकर लुप्ततीर्थों का उद्धार, तथा असंख्य भक्तिरस सिद्धान्त शास्त्र की रचना करने लगे। प्रभु की कृपा से प्रेरित हो कर महाप्रभावशाली श्रीनारायणभट्टगोस्वामी चरण ने भी व्रज में आकर उक्त दुरूह कार्य्य का समाधान प्रचुर भाव से किया। आपके विषय में भक्तमालकार श्रीनाभाजी कहते हैं कि:—

"गोप्यस्थल मथुरामण्डल जिते बाराह बखाने।
किये नारायण प्रकट प्रसिद्ध पृथ्वी में जाने॥
भक्तिसुधा को सिन्धु सदा सत्संग समाजन।
परमरसज्ञ अनन्य कृष्णलीला को भाजन॥"

टीकाकार प्रियादासजी:—

"भट्ट श्रीनारायण जू भये व्रज परायण, जाय जाहि ग्राम तहाँ व्रत करि ध्याये हैं। बोलि के सुनावे इहाँ अमुक स्वरूप है, जू लीला कुण्ड धाम श्याम प्रगट दिखाये है॥ ठौर ठौर रास के बिलास लै प्रगट किये, जिये यों रसिक जम कोटि सुख पाये है॥'

लडिलीदासजी का मगंल:—

"मुनि नारद को अवतार देह यह नर धरी।
मथुरा मण्डल गुप्त रीत प्रगट करी॥"
"रसविलास सुख लह्यो और सब छिन दियो॥"

आप के द्वारा साधित महत् कार्य्य समूह।

१। मथुरामण्डल में गोप्यतीर्थों का उद्धार।
२। रासलीलानुकरण का सर्व प्रथम प्राकट्य।
३। वनयात्रा व व्रजयात्रा का प्रारम्भ।
४। बलदेवजी का प्राकट्य (उच्चाग्राम)
५। श्रीजी का प्राकट्य (बरसाना)
६। बुढ़ीलीला का स्थापन (जो कि बरसाना में भाद्र सुदी सप्तमी से पूर्णिमापर्य्यन्त होता आरहा है)
७। भक्तिशास्त्र समूह का निर्म्माण।

आप श्रीमन्महाप्रभु गौरांगदेवजी के पार्षदप्रवर राधिकास्वरुप श्रीगदाधरपण्डित गोस्वामी जी के शिष्य श्रीइन्दुलेखा सखी का अवतार श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारी जी के प्रियशिष्य है। आपका जन्म समय सम्वत् १५८८ वैशाख शुक्लपक्ष नृसिंहजन्मदिवस दिवाभाग है। आप दक्षिणदेशस्थ मदुरा पत्तनवासी भृगुवंशी, श्रीवत्सगोत्री, ऋग्वेदी तैलंग ब्राह्मण है। पिता का नाम "भास्कर-भट्ट" माता का नाम "यशोमतीदेवी" है। लघु भ्राता गोपाल नाम से प्रसिद्ध है। अन्तर्द्धान का समय लगभग १७०० सम्वत् से कुछ पहिले अनुमान किया जाता है।

आपके द्वारा रचित ग्रन्थ समूह ।—

व्रजभक्तिविलास, व्रजप्रदीपिका, भक्तिरसतरंगिणी, व्रजभक्ति विलास, व्रजप्रदीपिका, व्रजोत्सवचन्द्रिका, व्रजमहोदधि, व्रजोत्सवाह्लादिनी, बृहत्व्रजगुणोत्सव, व्रजप्रकाश, व्रजदीपिका, भक्तिभूषणसन्दर्भ, व्रजसाधनचन्द्रिका, भक्तिविवेक, साधनदीपिका, रसिकाल्हादिनी (भागवत की टीका) प्रेमांकुरनाटक, लाडिलीलाल युगल पद्धति, लाडिलेयाष्टक प्रभृति ।

भक्तिरसतरंगिणी में साधन भक्ति, प्रेमाभक्ति, स्वरूपाभक्ति, भक्ति की सिद्धियाँ, विभाव, अनुभाव, व्यभिचारिभाव, स्थायिभाव, द्वादस रस का सम्यक् उदाहरण के साथ विचार है। इसमें पाञ्च अध्याय व उल्लास है। जो कि श्रीरूपगोस्वामी विरचित भक्तिरसामृत सिन्धु तथा उज्ज्वलनीलमणि का आधार पर है। जयपुर में स्थित श्रीगोविन्ददेवजी की लाइब्रेरी से एक हस्तलिपि मुझे सर्वप्रथम मिली थी। श्रीयुक्त प्रिय गोस्वामी प्रियालालजी के पास से द्वितीय कापी मिली। मन में बहु दिन से वासना थी कि एक ग्रन्थ प्रकाशित हो कर रसिकमण्डली में उपस्थित होय। श्रीगुरुकृपा से इस महान् कार्य्य का समाधान हुआ है। श्रीमन्महाप्रभु प्रचारित व्रज में परकीयाभावमयीउपासना, जो कि श्रीमद्भागवत, पद्मपुराणादिक प्राचीन ग्रन्थ में, तथा जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास, देव, बिहारी, केशवादिक कवियों कि पदावली में और सूरदास प्रभृति अष्टसखायों की वाणी में उपस्थित है जो सर्वोपरि है तथा श्रीरूपसनातन प्रभृति गोस्वामीगणों की हार्दिक उपासना है, काव्यप्रकाशादि तथा साहित्यदर्पण प्रभृति यावतीय अलंकारग्रन्थ जिसका साक्षी है वही परकीयाभावमयी उपासना यह भक्तिरसतरंगिणी में सन्निवेश है। श्रीयुक्त महामहिम विश्वनाथ चक्रवर्त्तीजी स्वकीय उज्ज्वलनीलमणी टीका में परकीया

भाव का स्थापन करते हुए भक्तिरसतरंगिणी का प्रमाण उठाये है तथाहि नारायणभट्टपादैरपि स्वकृतरसतरंगिण्यां

शान्ते ब्राह्मण एव स्यात्प्रीते दासः प्रकीर्त्तितः।
प्रेयसि स्युः सखायो हि इत्यारभ्य
करुणे वत्सवृद्धादिः जटिलाद्यास्तु रौद्रके।
गोवर्द्धनोऽभिमन्युश्च भयानक उदीरितौ इत्यादिक
न राधा भर्त्तारं क्वचिदपि च दृष्टवा गृहगतं
समद्राक्षीन्नित्यं तव सरसमूर्त्तिं विलिखती।
तवाप्येतद्वक्षो वहति रुचिरां तत्प्रतिकृतिं
ततः कृष्णप्रेम्णाहमपि विदधे दौत्यमखिलं इत्यादिक॥

श्रीगोविन्द चरण कमल मधु पानोन्मत्त रसिकभ्रमरगण यह ग्रन्थरत्न को अवश्य अपनायेंगे। क्योंकि रसरीति जनाने में यह ग्रन्थ अपूर्व आश्रयरुप होगा अलमधिकेन। इति।

कुसुमसरोवर,
राधाकुण्ड (मथुरा)

विनीत—
कृष्णदास

६२० ❀ श्री गौरांगविधुर्जयति ❀

श्री वाणी

श्रीवल्लभरसिकजी की

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द ।
हरे कृष्ण हरे राम राधे गोविन्द ॥
भज-निताई गौर राधे श्याम ।
जप-हरे कृष्ण हरे राम ॥

ज में मान्य गन्य परम रसिक बाबा श्रीगौरांगदासजी के कृपापात्र, वरसाना (कोसी) निवासी, लाला वनखण्डि के आत्मज, गौरनिष्ठ, लाला चतुर्भुज (हरिसम्बन्धिनाम चैतन्यदास प्रसिद्ध नाम चेतराम) जी के सम्पूर्ण आर्थिक सहाय से मुद्रिता

गौर पूर्णिमा
सं० २००५
प्रथमावृत्ति १०००
मूल्य ।=)

प्रकाशक
बाबा कृष्णदास
कुसुम सरोवर

श्रीवल्लभरसिकजी की परम्परा

श्रीमन्नारायण, श्रीब्रह्मा, श्री नारद, श्रीवेदव्यास, श्रीमध्वाचार्य्य, श्रीपद्मनाभ, श्रीनरहरि, श्रीमाधव, श्रीअक्षोभ, श्रीजयतीर्थ, श्रीज्ञानसिन्धु, श्रीमहानिधि, श्रीविद्यानिधि, श्रीराजेन्द्र, श्रीजयधर्म्म, श्रीब्रह्मण्य, श्रीपुरुषोत्तम, श्रीव्यासतीर्थ, श्रीलक्ष्मीपति, श्रीमाधवेन्द्र,

श्रीईश्वरपुरी

|

श्रीराधाकृष्ण मिलित विग्रह

श्रीकृष्ण चैतन्य

महाप्रभु

|

श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी

|

श्रीगदाधर भट्ट गोस्वामी

|

वल्लभरसिकजी (वाणीकार) रसिकोत्तंस (प्रेमपत्तनकार)

❀ भूमिका ❀

प्रेम पुरुषोत्तम कलि पावनावतार भगवान् श्री गौरङ्गदेव जी के कृपा पात्र छः गौस्वामी प्रसिद्ध हैं जिन्होंने ब्रज भूमि में आकर ब्रज का पुनरोद्धार तथा भक्ति-रस का प्रसार किया। श्री रघुनाथ भट्ट गोस्वामीजी महाराज का इन छः गोस्वामी वृन्द में विशेष स्थान हैं। आप श्रीमद्‌भागवत के अद्वितीय सरस वक्ता थे। इनके कृपा पात्र शिष्य श्री गदाधर भट्टजी अपनी वाणी द्वारा ब्रज में बड़े प्रसिद्ध हुए; आपकी भागवत कथा बड़ी आकर्षक तथा विमुग्धकारी होती थी। भक्तमाल में श्री नाभाजी ने आपके विषय में यथेष्ट परिचय दिया है। श्री भट्ट जी द्वारा प्रतिष्ठित श्रीमदनमोहनदेव जू का विग्रह अठखम्भा के पास (श्री राधावल्लभ जी के मंदिर के सामने) अद्यावधि विराजमान हैं और उनके वंशजों द्वारा सेवित हैं।

इन भट्ट जी के दो पुत्र रत्न (१) रसिकोत्तंस, (२) तथा वल्लभरसिकजी हुए, समय पाकर अपने पिताजी द्वारा दीक्षित होकर भगवत सेवा परायण तथा रसिक समाज सेवी हुए। श्री रसिकोत्तंस जी ने प्रसिद्ध "प्रेम-पत्तन" ग्रन्थ की रचना की तथा श्री वल्लभ रसिक जी ने ब्रज भाषा में अनेक प्रकार की पद रचना की। ब्रज में इनके पद बड़े चाव से गाये जाते हैं श्री पूज्य भ्राता बाबा गौराङ्गदासजी के मुख से अनेक पद सुनने का अवसर हमें मिला, तत् पश्चात् श्री वल्लभ रसिकजी की वाणी खोज करने का हमने प्रयास किया। श्री पूंछरी (गोबर्द्धन) निवासी श्री बाबा सुदामादासजी से

जो पद-संग्रह हमें मिला है उसे वर्त्तमान-वाणी रूप से प्रकाश करने में समर्थ हुए हैं। श्रीगदाधर भट्टजी के वंशज श्री गोवर्द्धनभट्टजी (श्री छुट्टनलालजी) ने इस ग्रन्थ के लिपी संशोधन में बिशेष परिश्रम उठाया है।

इस बाणी में पद-संग्रह निम्नोक्त रीति से विभाजित हैं:—

हिन्डोला, पवित्रा, वर्ष गाँठ, साँझी, दशहरा, दिवाली, होली, बसन्त, वसन्त की होली, फूलडोल, चन्दन-यात्रा, रथ-यात्रा, रास की माँझ, गुलाब कुंज की माँझ, जल-क्रीड़ा की माँझ, वर्षा की माँझ, वर्षा के बंगला की माँझ, सदा की माँझ, महल की साँझी, सुरत उल्लास (विहार-वर्णन), नित्य गान के पद, बारह बाट, अठारह पैंड़। श्री वल्लभरसिकजी की रचना अनुप्रास तथा यमक के लिये विशेष प्रख्यात है, और यमक की चमक तो ब्रजभाषा में अनूठी है जो अन्यत्र देखने को नहीं मिली यद्यपि जन-साधारण इन पदों के शब्द-विन्यास पढ़कर, कठिनता वश, भाव को समुचित रूपेण ग्रहण न कर सकें तो भी भाषा-मर्मज्ञ रसिक पाठक-वृन्द इस संग्रहावली से रस बिशेष का आस्वादन अवश्य करेंगे। जिसमें इस प्रकार की बाणियाँ काल पाकर लुप्त न हो जावें हमें बरसाना (कोसी) निवासी श्रीमान् लाला चतुर्भुज जी (चेतरामजी) से इस ग्रन्थ के प्रकाशित करने में प्रोत्साहन तथा आर्थिक सहाय मिली है श्रीमन् महाप्रभु आपका मंगल करें—

भवदीय

कृष्णदास

कुसुम सरोवर निवासी

* श्रीकृष्णचैतन्यः शरणम् *

सवृत्तिकं

श्रीश्रीहरिनामामृत-व्याकरणम्

प्रथम–खण्डम्

संज्ञा-सन्धि-विष्णुपद-आख्यात प्रकरणान्त–
'अमृता' 'बालतोषणी' टीकाद्वयोपेतम्
[धातुगणपाठादि परिशिष्ट सहितम्]

श्रीमन्माध्वगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायाचार्य वर्येण वेद-षड्दर्शनेतिहास-पुराण-
शब्दानुशासन-ज्योतिष-काव्यालङ्कार-सङ्गीत-छन्दः-शास्त्रादि-
पारावारपारीणेन महामहोपाध्यायाध्यापकनिकरैः
परमबृहत्तमसिद्धसङ्घैश्च निषेवितपदपङ्कजेन
वैष्णवसिद्धान्त राज्यरक्षणैक सेनापतिना
श्रीश्रील-सनातन-रूपानुगवरेण
परमहंसकुल मुकुट मणिना
श्रीश्रील–श्रीजीवगोस्वामि–चरणेन
विरचितम्

Amita-Krishna das

प्रकाशक
डालमिया जैन ट्रस्ट
नई दिल्ली

★

प्रकाशन तिथि
दीपमालिका, संवत् २०३१

★

मूल्य
प्रथम-खण्ड : ८) रु०
द्वितीय-खण्ड : १२) रु०
दोनों खण्ड एकसाथ : २०) रु०

★

प्रथम संस्करण
ग्यारह सौ प्रति

★

मुद्रक
हरीनाथ सारस्वत
श्री प्रेम हरी प्रेस, वृन्दावन।

प्रकाशकीय

श्री श्रीहरिनामामृत-व्याकरण नामक इस महान् ग्रन्थ के रचयिता श्री मन्माध्वगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायाचार्य वेद-षड्दर्शन-इतिहास-पुराण-शब्दानुशासन ज्योतिष-काव्यालंकार-संगीत-छन्दः-शास्त्रादि विशारद, वैष्णव सिद्धान्त राज्य-रक्षणैक-कुशल एवं विश्व-वैष्णव-राज-सभा-सभाजन, श्रीश्री रूप-सनातनानुग, परमहंसकुल-चूड़ामणि श्रील श्रीजीव-गोस्वामी-चरण हैं।

इस ग्रंथ का बंगाक्षर में कई स्थानों से प्रकाशन हो चुका है। परन्तु देव-नागरी लिपिमें यह अभी तक प्रकाशित नहीं हो पाया था। इस गुरुतर अभाव की ओर अनेक प्राचीन एवं अप्रकाशित गौड़ीय ग्रन्थों को देवनागरी लिपि में प्रकाशित करने वाले प्रकाण्ड विद्वान् गुरुपादपद्म कनिष्ठ, त्याग एवं तपोमूर्ति, कुसुम सरोवर निवासी (अधुना नित्यलीला प्रविष्ट) बाबा श्रीकृष्णदास जी महाराज का ध्यान गया और वे अशक्त, जीर्ण-शीर्ण कलेवर होते हुए भी प्रकाशन के लिये इसकी पाण्डुलिपि तैयार करने में जुट गये।

बाबा श्रीकृष्णदासजी महाराज उड़ीसा के कटक जिले के निवासी थे। उनका जन्म एक संभ्रान्त परिवार में हुआ था। बहुत चेष्टा करने पर भी उनके माता-पिता आदि का कोई परिचय प्राप्त नहीं हो सका है। वे बाल्यकाल से ही विद्यानुरागी, विरक्त-स्वभाव एवं भजन-निष्ठ थे। अपने ग्राम में छात्रवृत्ति-परीक्षा में उत्तीर्ण होकर वे कटक गये जहाँ उन्हें परम भागवत, वैष्णवाचार्य, कीर्तन-सम्राट श्रील श्रीमद् रामदास बाबाजी महाराज के दुर्लभ दर्शन एवं उनकी अहैतुकी कृपालाभ का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् वे घर पर न रह सके। पन्द्रह वर्ष की आयु में ही अपने प्रिय स्वजन एवं घर-बार का सदा के लिये परित्याग कर सीधे नवद्वीप पहुँचे। वहाँ गुरुदेव के श्रीचरणों में आत्म-समर्पण कर समाज-बाड़ी में उन्हें स्वनाम धन्या श्रीश्रीललिता सखीजी (सखी मां) का स्नेहासिक्त संरक्षण प्राप्त हुआ और वे उनके आदेशानुसार आश्रम के नाना प्रकार के सेवाकार्यों में संलग्न रहने लगे। नाम संकीर्तन में उनकी विशेष रुचि थी। वे संकीर्तन करते-करते भाव-विभोर हो जाते और उद्दाम नृत्य करने लगते।

समाजबाड़ी में वेषाश्रम ग्रहण कर वे अपने गुरुदेव के आदेशानुसार बीस वर्ष की आयु में ब्रजमंडल चले गये। वहाँ अनेक स्थानों में घूम-फिर लेने के पश्चात कुसुम-सरोवर पर रहने लगे। इन्हीं दिनों उन्होंने किसी विद्वान महात्मा से संस्कृत एवं भक्ति-ग्रन्थों का अध्ययन किया। बहुत प्रयत्न करने पर भी पता नहीं चल सका है कि उनके शिक्षा-गुरु कौन थे। वे अपने गुरु-भ्राता रसिक चूड़ामणि श्रील गौरांग दास बाबाजी महाराज एवं श्रील राधाचरण दास बाबा जी महाराज (श्री रजनीदास बाबाजी महाशय) के बड़े कृपापात्र थे। उन्हीं के चरण-प्रान्त में रहकर उन्होंने भजन-साधन सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त की।

श्री बाबा कृष्णदासजी महाराज बड़े उदार्चेता एवं परोपकार-निष्ठ महात्मा थे। वे यह देखकर बड़े दुःखी थे कि देवनागरी लिपि में गौड़ीय वैष्णव साहित्य का नितान्त अभाव है और व्रजभाषा में लिखित अनेकों ग्रन्थ एवं बाणियां या तो अनुपलब्ध हैं या अप्रकाशित हैं। अतः वे प्राणपण से इस अभाव की पूर्त्ति में जुट गये।

उन्होंने बड़ी लगन से अथक परिश्रम कर अनेक गोस्वामी-ग्रन्थों को देव-नागरी लिपि में और अधिकतर हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित किया। साथ ही व्रजभाषा के अनेकानेक ग्रन्थों एवं बाणियों का संग्रह और सम्पादन कर उन्हें प्रकाशित किया। इस प्रकार उन्होंने गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदाय की अनुपमसेवा की। जीवन की शेष दशा में उन्होंने श्रीश्रीहरिनामामृत व्याकरण को दो टीकाओं के साथ प्रकाशित करने का बीड़ा उठाया और बड़े परिश्रम से इस महान् ग्रन्थ की पाण्डुलिपि तैयार कर उसके मुद्रण की व्यवस्था की। इन दिनों वे वृन्दावन में

रमणरेती स्थित श्रीजयदयालजी डालमिया के बगीचे में निवास कर मुद्रण कार्य का निरीक्षण करते रहे। परन्तु दुर्दैववश अपने इस महान कार्य को पूरा होता न देख सके। घोर परिश्रम और कार्य करने की अपनी धुन में शरीर की आवश्यकताओं की ओर से उदासीनता के कारण उनका स्वास्थ्य बिगड़ता चला गया। इस ग्रन्थ के कुछ ही पृष्ठ छप पाये थे कि वे लगभग ६८ वर्ष की आयु में नित्य-लीला में प्रविष्ट हो गये।

हर्ष की बात है कि श्रीगौरांग चन्द्र के अनुग्रह से आज बाबा श्रीकृष्णदास जी द्वारा संकलित एवं संपादित, 'अमृता' और 'बालतोषणी' नामक दो टीकाओं सहित इस ग्रन्थ के देवनागरी लिपि में प्रकाशन के साथ उनका संकल्प पूरा हो रहा है। इस अद्वितीय व्याकरण ग्रन्थ का उचित सम्मान करना तथा इसके प्रचार एवं अध्ययनादि कार्य में विद्यार्थीवृन्द को प्रोत्साहित करना सभी धर्माचार्यों, संस्कृताध्यापकों एवं विद्यानुरागी सज्जनों का परम कर्तव्य है। इन सभी महानुभावों से सविनय निवेदन है कि इस पवित्र नाममाला सदृश व्याकरण ग्रन्थ के प्रचार में सहायक बनें और इसे भारत सरकार, राजकीय सरकारों, विश्व विद्यालयों आदि संस्थानों से मान्यता दिलवाने में अपना सहयोग प्रदान कर नित्य-लीला प्रविष्ट बाबा श्रीकृष्णदासजी के महान् परिश्रम को सार्थक बनायें।

हम आभारी हैं डालमिया-जैन-ट्रस्ट के जिनके अर्थानुकूल्य से इस विशाल ग्रन्थ का प्रकाशन संभव हो सका है, श्री फूलचन्द जी गुप्त के जिन्होंने ग्रन्थ के मुद्रण का भार अपने ऊपर लेकर प्रकाशन में सहायता की है, और वैष्णव-सम्प्रदायाचार्य श्रीरास बिहारी शास्त्री, एम. ए. व्याकरणाचार्य तथा श्रीहरिदास शास्त्री, न्यायाचार्य, काव्य-व्याकरण-सांख्य-मीमांसा वेदान्त तर्क-तर्क–तर्क-वैष्णव दर्शन–तीर्थ के जिन्होंने ग्रन्थ के प्रूफ देखने में अथक परिश्रम किया है। श्री हरिदास जी शास्त्री के हम ग्रन्थ की भूमिका लिखने और शुद्धि-पत्र तैयार करने के लिये भी विशेष रुप से आभारी हैं।

ग्रन्थ के मुद्रण में, विशेष रूप से प्रथम खंड के मुद्रण में जो अशुद्धियाँ रह गयी हैं उनके लिये क्षमा-प्रार्थना करते हुये हम पाठकों से अनुरोध करते हैं कि शुद्धि-पत्र की सहायता से उन्हें सुधार कर ही ग्रन्थ का उपयोग करनेकी कृपा करें।

विनीत

प्रकाशक